

नाट्य-२॥

ज० कलाशलाथ भटनगर



ी सीता की
 रथवा श
 चरित
 मे मका

संस्कृत-साहित्य अन्य कलाओं के समान नाटकीय क्षेत्र में भी अत्युत्तम
 भास, दिङ्नाग, कालिदास, भवभूति, शूद्रक, नारायण भट्ट
 विशाखदत्त आदि कई प्रसिद्ध नाटककार हुए हैं। खेद है कि हम
 कई नाटककारों के उत्पत्ति-काल और जन्म-स्थान आदि के विषय में,
 सत रूप से, कुछ कह नहीं सकते हैं। इन बातों के माव से
 उनकी कृतियों की रोचकता में न्यूनता नहीं आती।

कालिदास ने अपने नाटक 'म' में भास का उल्लेख
 प्रकार किया है—प्रयित-यः मल्लक-कविपुत्रादी है।
 प्रातःकर्म्य कर्मान-कवेः का सा कथायां कथं परिदोषण
 महान् यशस्वी भास, सै कविपुत्र आदि कविओं का
 साधारण जनता मान कवि कालिदास की कृति का अधिक
 न नहीं कर

नाम लेता है कथा-रूप
 सर विनुवाद हिंदी में उपलब्ध है ही किंतु पृथक्-पृथक् रूप से
 है। शकसि नाटक पढ़ना साधारण व्यक्ति के लिए आजकल कुछ
 सा की है भवभूति अतः मैंने इस 'नाट्य-सुधा' में संस्कृत के नाटकों की
 कालिदासस्य कृतिष्वपि संक्षेप में उपस्थित किया है।
 गोष्विव जर्त से ही सभें नाटककार की कथा को कथा-रूप में ज्यों की त्यों ही
 कियों के निरंतर संकेत रचन किया है। हाँ, भाषा की दृष्टि से अथवा कथा-रूप
 विषय की रूखा से कहीं-कहीं किंचित् परिवर्तन अवश्य हुआ है। परंतु
 भवभूति सिव आदि में किसी प्रकार का अंतर नहीं आने पाया।
 पराकाष्ठा त किसी अंक का कोई भी दृश्य नहीं छोड़ा गया है, क्योंकि
 है। उसमें संबंध मूल कथा के साथ रहता है। जहाँ-जहाँ किसी बढ़िया
 शब्दा तथा अन्य प्रकार के उत्कृष्ट वाक्य अथवा श्लोक मिले

उन्हें पुस्तक के विस्तार के अनुसार चुनकर उनका आशय दिया है। नाटककार की महत्ता केवल रोचक कथा पर ही नहीं रहती; उपमा आदि अन्य विषय भी देखे जाते हैं। अतः नाटककार के इन गुणों को भी पाठकों के सामने रखा है।

इस नये संशोधित संस्करण में प्रयत्न किया गया है कि एक नाटककार की सभी रचनाएँ एक स्थान पर आ जायें। अतः पहले भाग में कालिदास और श्रीहर्ष के तीन-तीन नाटकों की कथाएँ दे दी गई हैं। अंत में दिङ्नाग के कुंदमाला नाटक की कहानी जोड़ दी गई है। दिङ्नाग कालिदास के समकालीन माने जाते हैं। कुंदमाला परित्याग की कहानी है। अनुमान किया जाता है कि यह भवभूति के उत्तर-राम-चरित का आधार है।

दूसरे भाग में पहली कहानी भास की सर्वश्रेष्ठ रचना स्वप्नवासना की है। बाद में भवभूति के महावीर-चरित तथा उत्तर-रामचरित की कहानियाँ दी गई हैं। इन दोनों कहानियों का आधार रामायण की चौथी कहानी विशाखदत्त के नाटक मुद्राराक्षस की है। न ज्ञात विशाखदत्त ने किस आधार पर यह नाटक रचा था। ऐसी सामग्री इस समय नहीं मिलती। अंत में नारायण भट्ट के वेणी-संहार की कहानी सम्मिलित की गई है। इसका आधार महाभारत है।

अंत में मैं उन महानुभावों को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने इस पुस्तक को सम्मान देकर प्रोत्साहन प्रदान किया है। सन् १९३१ से अब तक इसके लगभग बीस संस्करण हो चुके हैं। इस संस्करण में कुछ कहानियों का क्रम बदल दिया गया है और भाषा सरल कर दी गई है। आशा है कि यह संशोधित तथा संवर्द्धित संस्करण और भी रुचिकर प्रतीत होगा।

36-7

3-2
मा 3-2 5-10

8-12
19

104

काद्ये

कर का

16

पहला भाग

My name is Mohan

Class B.A. 1st year

Hindu Karm me

vedanti

८

16 35

संहार

ਦੁਨੀ ਕੀ
ਮੋਹਨੀ
ਦੇ ਧਾਰੀ
ਮੁਖ ਫੇਰੀ

ਦੇ ਧਾਰੀ
ਮੋਹਨੀ

ਮਲਾਸ਼ਨਾ

कथा-सूची

पहला भाग

नाट्य-कथा

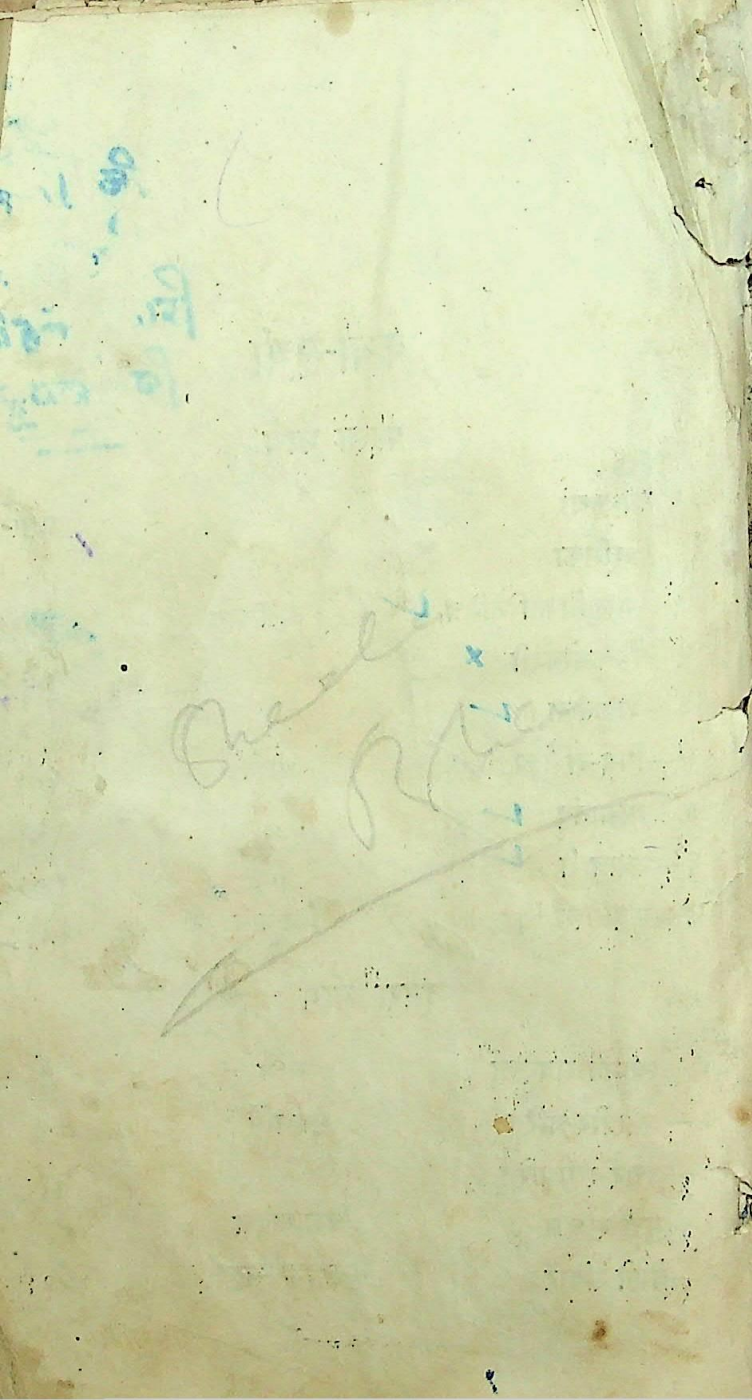
पृष्ठाङ्क

भूमिका

१—मालविकाग्निमित्र	कालीदास	१
२—विक्रमोर्वशी *	"	२५
३—शकुन्तला	"	५३
४—प्रिय-दर्शिका	श्रीहर्ष	१०१
५—नागानन्द	"	१२१
६—रत्नावली	"	१४७
७—कुन्दमाला	दिङ्नाग	१७१

दूसरा भाग

८—स्वप्नवासवदत्ता	भास	१
९—महावीर-चरित	भवभूति	२३
१०—उत्तर-रामचरित	"	६१
११—मुद्रा-राक्षस	विशाखदत्त	६६
१२—वेणी-संहार	नारायण भट्ट	१४१



मालविकाग्निमित्र

—* १ *—

विदिशा नगरी में अग्निमित्र नाम के एक राजा थे। इनकी दो रानियाँ थीं—धारिणी और इरावती। धारिणी के वसुमित्र नाम का पुत्र था और वसुलक्ष्मी नाम की कन्या थी।

महारानी धारिणी की सेवा में मालविका नाम की एक दासी थी। महारानी ने नाट्याचार्य गणदास को उसे संगीत आदि सिखाने के लिए नियत कर दिया।

महारानी की बकुलावलिका नाम की एक और दासी थी। एक दिन किसी काम से कहीं जाते हुए बकुलावलिका को मार्ग में कुमुदिका नाम की दासी मिल गई। वह महारानी की 'नाग-मण्डप' सुनार से लेकर जा रही थी। बकुलावलिका को देखकर कुमुदिका ने पूछा—सखी! कहाँ जा रही हो?

बकुलावलिका—महारानी धारिणी ने मुझे गणदास के पास यह पूछने को भेजा है कि मालविका उपदेश ग्रहण करने में कैसी है।

कुमुदिका—सखी! सुना जाता है कि संगीत-शिक्षा के बहाने आँखों से ओझल हुई मालविका को महाराज ने देख लिया। संगीत-शास्त्र के नियमानुसार महाराज अकेले तो वहाँ जा नहीं सकते।

वकुलावलिका—हाँ ! चित्र में महारानी के पास उसे आँखा
देखा था ।

कुमुदिका—सो कैसे ?

वकुलावलिका—चित्रशाला में महारानी एक बार चित्र
का ताजे भरे रंगों वाला एक चित्र देख रही थीं कि महारानी
भी वहाँ आ पहुँचे । वह चित्र महाराज ने भी देखा और मालविका
का चित्र देखकर पूछा—यह दासी तो नई है और महारानी के पास
इसका चित्र है । इसका क्या नाम है ? जब बार-बार पूछने पर
भी कोई न बोला, तब वसुलक्ष्मी ने बता दिया कि यह मालविका
है । तब से मालविका महाराज के सामने नहीं आने पाती ।

इतना सुनकर कुमुदिका ने अपना मार्ग पकड़ा । वकुला
वलिका भी गणदास को रंगशाला से बाहर निकलते देखकर उससे
पास पहुँच गई और महारानी का संदेश सुना दिया ।

गणदास ने संदेश के उत्तर में कहा—महारानी से निवेदन
करना कि मालविका परम निपुण और बुद्धिमती है । मैं जो-जो
प्रयोग उसे सिखाता हूँ, उस-उसको वह बढ़ा-चढ़ा कर माने
मुझे ही सिखाती है ।

नाट्याचार्य को ऐसी चतुर शिष्या के विषय में जानने
इच्छा हुई । उसने पूछा—महारानी के हाथ मालविका लगी है ?

वकुलावलिका—महारानी के एक भाई वीरसेन हैं, जो
महाराज ने नर्मदा तट के सीमावर्ती दुर्ग पर नियुक्त कर रखा है ।
उन्हीं ने “यह कन्या ललित-कला की शिक्षा के योग्य है,” ऐसा
विचारकर इसे बहन को भेंट में भेज दिया है ।

गणदास ने सोचा कि यह रूप से तो कोई उच्च कुल की
कन्या जान पड़ती है । फिर वकुलावलिका से कहा—इसे शिक्षा
देने में मुझे यश प्राप्त होगा । किसी ने कहा है कि जिस प्रकार

त का पानी समुद्र की सीप में पड़कर मोती बन जाता है, प्रकृति सुयोग्य पात्र में दी हुई गुरु की विद्या विशेष गुण-
लब्धी हो जाती है।

उधर राजा अग्निमित्र को मंत्री बाह्यतक इस समय विदर्भ-
राज का एक पत्र सुना रहे थे। उसमें लिखा था—“आपकी
आज्ञा है कि ‘आपका चचेरा भाई कुमार माधवसेन को जो विवाह-
संबंध की प्रतिज्ञा से हमारे पास आ रहा था, आपके सीमा-
द्वार के रक्षक ने मार्ग में ही आक्रमण करके पकड़ लिया है।
हमारे प्रति स्नेह के कारण आपको उसे, स्त्री तथा बहन
सहित, मुक्त करना उचित है। यह बात आपसे छिपी नहीं कि
मानव-वंश के राजाओं के साथ राजा लोगों का कैसा वर्तवि-
त्ता है। अतएव इस विषय में आपको तटस्थ रहना उचित
है। वह जो बहन है, वह तो पकड़-धकड़ की गड़बड़ में कहीं खो
गई है। मैं उसके ढूँढ़ने का प्रयत्न करूँगा। यदि अवश्य ही
उसे माधवसेन को छोड़ देना होगा तो आप भी हमारे साले मौय्य-
विध को मुक्त कर दें।”

इस अदले-बदले के उत्तर से अपना अपमान समझ कर
अग्निमित्र ने क्रोध दिखाते हुए वीरसेन को आज्ञा भिजवा दी कि
भरत को समूल नष्ट कर दो।

बाह्यतक मंत्री “तथास्तु” कहकर चला गया।

इसी समय राजा के पास उनका मित्र गौतम आ पहुँचा।
राजा ने उससे अपने काम के विषय में पूछा कि कोई उपाय
नहीं है। गौतम ने कान में कुछ कहा जिसे सुनकर राजा प्रसन्न
हो गया। उन्होंने समझा कि मेरा मनोरथ अब पूरा हो जायगा।

इसमें एक ओर से किसी के भगड़ने का शब्द सुनाई
दिया। कोई कह रहा था—बहुत आत्म-श्लाघा से क्या?

राजा के सामने ही हमारी छोटाई-बड़ाई का निर्णय हो जायगा।

राजा ने यह सुनकर गौतम से कहा—मित्र ! तुम्हारी सुंदर नीति के पेड़ में फूल खिलने लगे।

गौतम ने कहा—फल भी शीघ्र ही देखोगे।

इसी समय आचार्य हरदत्त और गणदास वहाँ आ पहुँचे। शिष्टाचार के अनंतर महाराज ने पूछा—उपदेश के समय दोनों आचार्य यहाँ कैसे आ पहुँचे ?

गणदास ने निवेदन किया—महाराज ! आज हरदत्त ने प्रधान सभ्यों के सामने मुझे यह कहकर कि मैं इसके चरण-रज-सा भी नहीं हूँ, मेरा घोर अपमान किया है।

हरदत्त—महाराज ! इन्हीं ने पहले मुझे बुरा-भला कहा है। ये कहते थे कि तुममें और हममें समुद्र और गड़ही का-सा अंतर है। अतएव आप शास्त्र और प्रयोग में हमारी परीक्षा लें। महाराज ही हमारे निर्णायक हों।

गौतम ने भी इस प्रस्ताव का समर्थन किया। परंतु राजा ने महारानी और योगिनी के सामने ही न्याय करना उचित समझा, नहीं तो महारानी इसमें उनका पक्षपात समझतीं। इसलिए महारानी और योगिनी को वहाँ बुलाया गया।

राजा ने अपने आपको और महारानी को पक्षपाती समझकर योगिनी को मध्यस्थ बनाने का प्रस्ताव किया। दोनों आचार्यों ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया। पहले तो योगिनी ने टालना चाहा, परंतु अंत में उसे मध्यस्थ बनना स्वीकार करना ही पड़ा। महारानी को तो यह भगड़ा ही पसंद नहीं था।

गौतम का उत्तर बड़ा विनोद-पूर्ण था। उसने कहा—रानी ! मेंदों की लड़ाई देखते हैं। इन्हें व्यर्थ का वेतन देने से क्या लाभ ?

राजा ने योगिनी से पूछा—इन दोनों का निणय कैसे किया जाय ?

योगिनी—कोई किसी कला में स्वयं निपुण होता है, और कोई दूसरे को उसकी शिक्षा देने में विशेष चतुर होता है। वास्तव में श्रेष्ठ गुरु वही है जिसमें ये दोनों गुण विद्यमान हों।

गौतम को तो इस विचार का समर्थन करना ही था, इसलिए वह तुरंत बोला—सुना, उपदेश देखकर निर्णय होगा।

हरदत्त और गणदास यह मान गये। धारिणी ने कहा—यदि मूर्ख शिष्या नाट्योपदेश बिगाड़ दे तो इसमें गुरु का क्या दोष ?

राजा—महारानी ! यह गुरु का ही दोष समझा जाता है। अयोग्य को शिक्षा देना ही गुरु की मूर्खता है।

महारानी प्रारंभ से ही सब समझ गई थीं। वे गणदास की ओर मुँह करके बोलीं—तुम्हारी शिष्या तो अभी थोड़े ही समय से शिक्षा पा रही है। उसे बुलाना नाट्योपदेश का अपमान करना है। परंतु गणदास न माना। उसने कहा—इसी लिए तो मेरा हठ है।

अब महारानी ने सोचा कि मेरी चाल नहीं चल सकती। उन्हें योगिनी पर क्रोध आता था। वे योगिनी के विषय में मन ही मन कहने लगीं कि यह मुझे जागती हुई को भी सोई हुई-सी समझती है। गणदास अब बहुत हठ करने लगा। विवश होकर महारानी को स्वीकृति देनी ही पड़ी। दोनों के उपदेश देखे जाने का निश्चय हुआ। उससे दोनों की छोटाई-बड़ाई विदित हो जायगी।

दोनों नाट्याचार्य संगीतशाला में प्रबंध करने चले गये। जाते समय उन्हें योगिनी ने आदेश दिया कि पात्रों को विरले

वस्त्र पहनाकर लाना, जिससे कि नृत्य के समय सारे शरीर का सौंदर्य प्रकट हो सके।

महारानी क्रोधाग्नि से प्रज्वलित हो रही थीं। राजा से कहने लगीं—यदि राज-कार्य में भी उपाय सोचने में महाराज की ऐसी चतुराई होती तो क्या ही अच्छा होता।

राजा—आप कुछ और बात न समझें। मैंने इसमें कुछ नहीं किया। प्रायः समान विद्यावाले एक दूसरे के यश से ईर्ष्या करते हैं। इतने में संगीत-शाला में से तबले की थाप सुनाई देने लगी। सब उधर चल पड़े।

—* २ *

संगीतशाला में राजा, गौतम, धारिणी, योगिनी आदि सब पधारे। जब मालविका ने नाट्याचार्य गणदास के साथ रंग-मंच पर प्रवेश किया, तब उसका रूप-लावण्य देखकर महाराज उस पर और भी लट्टू हो गये।

मालविका ने गाना आरंभ किया—

पीय-मिलन है कठिन छाँडु ताकी आसा हिय ।

फरकत वाई आँख सगुन केहिकर यहि मानिय ॥

अब फिर दरसन होय हाय कब, तरसत मो जिय ।

हाँ परवंस मैं परी हियो अरु भो तोसन पिय ॥

इतना गा चुकने पर मालविका ने भाव का भी अभिनय किया। सोने में सुगंध हो गया। राजा पर इस अभिनय का तीव्र प्रभाव पड़ा। वे समझ गये कि मालविका मेरे प्रेम में पड़ी है। योगिनी ने निर्णय किया कि जो कुछ देखा है, वह सब निर्दोष है। यही सम्मति राजा ने प्रकट की। उन्होंने कहा—हरदत्त के लिए हमारा अभिमान जाता रहा।

गणदास ने अपनी आचाय की उपाधि सफल समझी। वह मालविका को साथ लेकर चला गया और हरदत्त ने अपनी शिक्षा दिखाने के लिए आज्ञा माँगी।

राजा ने मन में कहा कि देखने का काम तो समाप्त हो गया। परंतु उससे प्रकट रूप में बोले—हाँ, हम उत्सुक हैं।

हरदत्त ने आज्ञा पाकर अपने आपको अनुगृहीत समझा। परंतु इसी समय वैतालिक के गान द्वारा सूचना मिली कि दोपहर हो गई।

‘दोपहर हो गई’ सुनकर गौतम बिना कुछ खाये कब चुप रह सकता था ? वह कहने लगा—ओह ! भोजन का समय हो गया। वैद्य कहते हैं कि ठीक समय पर भोजन न करना हानिकारक है। हरदत्त ! तुम क्या कहते हो ?

हरदत्त—यहाँ और कुछ कहने का अवकाश ही नहीं। राजा ने भी कह दिया—अच्छा, तो आपकी शिक्षा कल देखेंगे। अब विश्राम कीजिये।

सभा विसर्जित हुई।

३५

—* ३ *

एक दिन योगिनी ने समाहितिका नाम की अपनी दासी को महाराज की वाटिका से, रानी को उपहार देने के लिए, चकोतरा लाने भेजा। वहाँ मधुकरिका मालिन ने समाहितिका दासी से पूछा—दोनों नाट्याचार्यों में से योगिनी ने किसके उपदेश को बढ़िया बताया ?

समाहितिका—यश गणदास को ही मिला।

मधुकरिका—मालविका के विषय में कुछ अपवाद क्या सुना जाता है ?

समाहितिका—हाँ, वह अपवाद ठीक है। अवश्य ही महाराज उस पर आसक्त हैं; परंतु वे महारानी धारिणी का हृदय दुखाना नहीं चाहते, इससे वे अपनी प्रभुता नहीं दिखते। मालविका भी इन दिनों पहनी गई माला के समान मुरझा रही है। इससे अधिक मैं कुछ नहीं जानती। अच्छा, अब जाती हूँ।

मालिन भी साथ हो ली। वह महारानी से कहना चाहती थी कि रक्त अशोक वृक्ष के खिलने में देरी हो रही है। उसका मनोरथ पूरा करने का उपाय कर दीजिए। इस प्रकार दोनों वहाँ से चल पड़ीं। दासी तो कौशिकी योगिनी के पास चली गई, और मालिन महारानी धारिणी के पास।

इधर राजा मालविका के लिए व्याकुल थे। उनका किसी काम में चित्त नहीं लगता था। गौतम ने राजा को स्मरण कराया कि रानी इरावती ने निपुणिका द्वारा उन्हें रक्तशोक और दुःख की कलियों का उपहार भेजा था और कहलाया था कि “वसंत-उत्सव है, स्वामी के साथ भूला भूलने की मेरी इच्छा है।” यह संदेश पाकर आपने वहाँ पहुँचने के लिए वचन दिया था, सो वहाँ चलो। गौतम के साथ, राजा अब प्रमदावन को चल पड़े।

प्रमदावन की शोभा विचित्र थी। उस वन ने राजा लुभाने के लिए, युवती के वेष को लजाने वाले, वसंत-काल के फूलों को धारण कर रक्खा था। भौंति-भौंति के फूल खिल रहे थे।

महारानी धारिणी की आज्ञा से मालविका उस समय प्रमदावन में आई थी। सरकंडे के समान पीले गाल और थोड़े आभूषणों से मालविका, वसंत के कारण पीले पत्ते और इने-गिने फूलों वाली चमेली की लता के समान हो रही थी। महाराज ने उससे कहा था कि गौतम की चपलता के कारण मैं भूले पर से गिर

गई थी और पैरों में चोट आ गई है। सो उन्होंने उसे आज्ञा दी थी कि तुम जाकर रक्ताशोक का मनोरथ पूरा करो और यदि पाँच दिन के भीतर इसके फूल निकल आयेंगे तो मैं तुम्हारी इच्छा पूरी कर दूँगी। मालविका वकुलावलिका की प्रतीक्षा करने लगी। वह पाजेब आदि आभूषण लेकर पीछे-पीछे आ रही थी।

गौतम और राजा की दृष्टि मालविका पर जा पड़ी। दैवयोग से वे इसके निकट ही थे। वे मालविका के हार्दिक भावों को प्रकट करनेवाले वचनों को सुनने लगे। जब मालविका कह रही थी कि 'हे मन ! तू ऐसा आश्रय-हीन असीम मनोरथ छोड़ दे। मुझे दुखी करने से तुझे क्या लाभ होगा ?' तब राजा को निश्चय हो गया कि मालविका मुझसे प्रेम करती है।

कुछ समय के बाद महावर और पाजेब आदि लिये वकुलावलिका वहाँ आ गई और बोली—सखी ! महारानी ने तुम्हें इस कप में लगा कर ठीक किया है। अपना एक पैर इधर बढ़ाओ। मैं महावर लगा कर पाजेब पहना दूँ। महारानी उत्सुक हैं कि यह अशोक शीघ्र फूल जाय।

यह सुनकर राजा ने समझ लिया कि यह अशोक का मनोरथ पूरा करने का उपाय है।

इसी समय रानी इरावती भी दासी ^{प्रियवती} निपुणिका के साथ वहाँ आ गई। निपुणिका ने देखा कि अशोक की छाया में वकुलावलिका मालविका के पैरों में महावर लगा रही है। मालविका को वहाँ देखकर इरावती चकित हुई। परंतु निपुणिका ने उसे बताया कि रानी के पैरों में, भूले से गिर पड़ने के कारण, पीड़ा हो रही है, इसीलिए उन्होंने अशोक की दोहद-पूर्ति के लिए मालविका को भेजा है। इरावती को यह सुनकर ईर्ष्या हुई। उसने महाराज से मिलने का विचार छोड़ दिया; वहीं उस मामले की

तह तक पहुँचने का निश्चय किया। उसे किसी शंका ने घेर लिया। वे दोनों वहीं छिपकर उन दोनों को देखने लगीं।

उस समय बकुलावलिका मालविका के एक पैर पर महावर लगा चुकी थी। वह मालविका से पूछने लगी—कहो, महावर की रेखाएँ ठीक लगी हैं ?

मालविका—ऐसी चित्रकारी की शिक्षा तुम्हें किसने दी है ?

बकुलावलिका—महाराज ही मेरे गुरु हैं। तुम्हारा पैर तो लाल कमल-सा जान पड़ता है। अब तुम सब प्रकार से महाराज की गोद में बैठने के योग्य हो गई हो।

रानी इरावती ने ये वचन सुन लिये; उसने निपुणिका की ओर देखा। बकुलावलिका निःशंक होकर और ऐसी ही बातें करती रही जिससे मालविका को विश्वास हो जाय कि राजा उसे चाहते हैं। रानी इरावती समझ गई कि यह कुटनी पहले ही से सिखाई हुई है।

बातों ही बातों में बकुलावलिका ने मालविका के दूसरे पैर में भी महावर लगा दिया। उसने अब पाजेब पहनाकर कहा—सखी ! उठो; अशोक के फूल खिला देने वाली आज्ञा को पूरा करो।

अब इरावती को निश्चय हो गया कि यह काम महारानी के आदेश से हुआ है। अशोक पर लात मार कर मालविका बोली—यह क्या हमारा मनोरथ पूरा करेगा ?

बकुलावलिका—सखी ! इसमें तुम्हारा कुछ दोष नहीं। यदि तुम्हारे पैरों से आदर पाकर भी न खिले तो यह अशोक ही निर्गुण होगा।

यह सब लीला देखकर राजा का मन मुग्ध हो गया और अपने मित्र गौतम से, उसके पास चलने के लिए, कहने लगे। गौतम ने भी कहा—हाँ, चलकर कुछ हँसी-ठट्टा करना चाहिए।

मालविका की ओर बढ़े। निपुणिका ने इन्हें देख लिया और रानी इरावती से कह दिया कि महाराज आ गये। इरावती पहले ही समझ रही थी कि महाराज यहीं कहीं होंगे।

गौतम ने आगे बढ़कर मालविका से कहा—तुम्हारे लिए यह ठीक था कि महाराज के अशोक वृक्ष को बायें पैर से कराओ।

मालविका और वकुलावतिका दोनों टिठक गईं।

गौतम ने वकुलावतिका को डाँटकर कहा—क्यों री, तूने इसका अभिप्राय जानकर भी इस अनुचित काम से इसे हीं रोका ?

मालविका डर गई। वकुलावतिका ने कहा—इसने तो महारानी की आज्ञा का पालन किया है। इस काम में यह पराधीन महाराज इसे क्षमा करें।

ऐसा कहकर दोनों महाराज के चरणों पर गिर पड़ीं।

राजा—यदि ऐसा है तो तू निर्दोष है। उठ !

राजा ने मालविका का हाथ पकड़कर उठाया और कहा—अशोक-वृक्ष पर लात मारने से तुम्हारे कोमल चरण में चोट तो हीं आ गई ?

मालविका लज्जित हो गई। उधर इरावती ने डाह से कहा—हाह ! मेरे स्वामी का हृदय मक्खन का बना है।

मालविका वकुलावतिका से बोली—वकुलावतिका ! आओ, मैं महारानी से निवेदन कर दूँ कि उनकी आज्ञा का पालन दिया।

वकुलावतिका ने कहा—महाराज से आज्ञा ले ले।

राजा—तो जाओगी ? अच्छा, पहले हमारी प्रार्थना सुन लो। अब पूरी भी कामना पूरी करना। मैं और किसी स्त्री को नहीं चाहता।

रानी इरावती ने यह सब सुन लिया। वह तुरंत बोली—हाँ, हाँ, पूरी करो; अशोक वृक्ष में तो केवल फूल यहाँ फल-फूल दोनों होंगे।

रानी इरावती को देखकर सब व्याकुल हो गये।

इरावती ने राजा को भला-बुरा कहा। बाद में उसने माला और बकुलावलिका को भी डाँट बताई। वे तो यह कह चलती बनीं कि हम भला कौन हैं, जो महाराज का हम पर अनुग्रह हो।

इरावती ने राजा से फिर कहा—पुरुष विश्वासघाती हैं। भूला-भूलना आदि ठगने वाले तुम्हारे वचनों को समझकर मैंने निःशंक हो यह तुम्हारा कपटाचरण न जाना जैसे शिकारी के गीत में अनुरक्त निःशंक हरिणी (अविपत्ति) नहीं जानती।

राजा ने कुछ बहाना करना चाहा। कुछ और न सूझते उन्होंने यही कह दिया—रानी ! मालविका से मुझे क्या कम तुम्हारे आने में देरी हो रही थी, इसलिए मैंने उससे तनिक म विनोद किया था।

इरावती—आप तो विश्वास के योग्य हैं। मुझे पता था कि आपको मनोविनोद के लिए कोई ऐसी वस्तु मिल गई है तो मैं अभागिन यहाँ न आती।

क्रुद्ध होकर रानी जाने लगी। राजा ने क्षमा माँगी उसका पारा चढ़ा हुआ था, उसने राजा की एक न वह कहने लगी कि मुझे तुम्हारा विश्वास नहीं रहा। राजा ने उसके पैर तक छुए, किंतु वह बहुत बिगड़ रही ही गई।

—* ४ *—

रखा मालविका के लिए डरने लगे। गौतम को उन्होंने मालविका का वृत्तांत जानने के लिए भेज रखा था और अब उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

गौतम ने आकर कहा—उसका वृत्तांत तो वैसा ही है जैसा विल्ली के पंजों में पड़ी कोयल का होता है। उसे महारानी ने वंदी-गृह में डाल रखा है। योगिनी ने मुझसे कहा है कि कल महारानी इरावती, वड़ी महारानी धारिणी के पास, उनके दुःख रहे पैरों का हाल पूछने गई थी। महारानी धारिणी ने जब पूछा कि क्या महाराज ने तुम्हें दर्शन दिये ? तब इरावती ने कहा कि “यह पूछना व्यर्थ है; क्या क्या आप नहीं जानतीं कि उनका प्रेम-भाव तो दासियों पर चला गया है ?” महारानी ने बार-बार पूछकर इरावती से सब वृत्तांत जान लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि मालविका और वकुलावलिका को वेड़ी पहने, पाताल में नाग-कन्याओं के समान, अंधरे स्थान में रहना पड़ रहा है। महारानी ने माधविका को आज्ञा दे रक्खी है कि मेरी नागमुद्रा देखे बिना इन चुड़ैलों को न छोड़ना।

यह सुनकर महाराज बड़े दुःखित हुए। वे ठंडी साँस लेकर कहने लगे कि क्या कुछ उपाय नहीं है ? गौतम ने कहा—उपाय मैं आपके कान में कहता हूँ, जिससे कोई सुन न ले।

गौतम ने महाराज के कान में कुछ कह दिया। उपाय सुनकर महाराज की बाँछें खिल गईं। गौतम के बताये उपाय के अनुसार काम आरंभ कर दिया गया।

महाराज महारानी धारिणी का पैर देखने गये। कुछ ही समय के बाद यज्ञोपवीत से अँगूठा बाँधे गौतम व्याकुल-सा वहाँ आकर चिल्लाने लगा—“बचाइए, बचाइए। मुझे साँप ने डस लिया।”

यह सुनकर सब लोग व्याकुल हो गये । राजा ने दुःखित होकर पूछा—आप कहाँ घूम रहे थे ?

गौतम ने बताया—‘महारानी को देखना है’ इस कारण मैं फूल लेने के लिए प्रमदावन गया था ।....

धारिणी बीच ही में बोल उठी—हाय ! हाय !! मैं ही ब्राह्मण के जीवन-संकट का कारण हुई ।

गौतम फिर कहने लगा—अशोक वृक्ष के फूलों का गुच्छा तोड़ने के लिए मैंने ज्यों ही हाथ बढ़ाया त्यों ही कोटर से निकल कर काल-रूपी साँप ने मुझे डस लिया ।

गौतम ने साँप के काटने के दो निशान दिखाये । अब ध्रुवसिद्धि वैद्य को बुलाने के लिए जयसेना को भेजा गया । गौतम विष का फलना दिखाता था । वह कहता था—हाय ! मेरे अंग टूट रहे हैं । हाय ! मैं मरा !

धारिणी—हाय, साँप ने बहुत बुरा काटा । ब्राह्मण को सँभालो—सेवक जनों ने गौतम को सहारा दिया ।

गौतम राजा की ओर देखकर कहने लगा—महाराज ! मैं आपका बचपन का मित्र हूँ । उसका विचार करके मेरी निपूती माता का पालन करना ।

इतने में जयसेना ने लौटकर कहा कि वैद्य ध्रुवसिद्धि ने गौतम को वहीं बुला भेजा है । राजा ने गौतम को सेवकों द्वारा सहारा दिलाकर वैद्यराज के पास भेज दिया ।

जाते समय गौतम महारानी से कहता गया कि “महाराज की सेवा में मैंने आपके जो अपराध किये हों, उन्हें क्षमा करना ।” धारिणी ने उसे सौ वर्ष जीने का आशीर्वाद दिया ।

गौतम को देखकर वैद्य ने जल-कुंभ बनाने के लिए, जयसेना से कहा कि कहीं से नागमुद्रा मँगवाओ । जयसेना ने आकर

निवेदन किया। धारिणी ने यह सुनकर अपनी अंगुली से उतार कर नासुत्रा दे दी और वह दिया कि फिर इसे मुझे ही दे जाना।
 राजा ने भी कहा—जयसेना ! अपना काम करके नागमुद्रा शीघ्र लौटा जाना ।

कुछ समय के अनंतर जयसेना ने आकर सूचना दी कि गौतम का विष दूर हो गया । फिर उसने महाराज से निवेदन किया कि किसी राज-काज के कारण मंत्री आपके दर्शन करना चाहते हैं ।

राजा बाहर चले गये । जयसेना भी उनके साथ हो ली । दोनों ही गुप्त मार्ग से प्रमदावन को चले । मार्ग में गौतम मिल गया । उसने महाराज से कहा—बधाई हो ! आपका कार्य सिद्ध हो गया ।

अब महाराज ने जयसेना को लौटा दिया । उन्होंने गौतम से पूछा—माधविका तो बड़ी चतुर है । क्या उसने यह नहीं पूछा कि इन दोनों बंदिनियों को मुक्त करने का कारण क्या है ? महारानी ने अपने सेवक को छोड़कर आपको क्यों भेजा ?

गौतम—उसने पूछा तो था; किंतु मैंने कह दिया कि महाराज को ज्योतिषियों ने बताया है कि आपके ग्रह अच्छे नहीं हैं । सब बंदी छुड़वा दीजिए ।” यह सुनकर इरावती के भावों की रक्षा के विचार से, धारिणी ने मुझे ऐसी आज्ञा दी है जिससे यह सब समझें कि राजा ने इनको छोड़ दिया है । माधविका ने इस कारण को ठीक समझकर मालविका और वकुलावतिका को छोड़ दिया । मैं उन्हें समुद्र-गृह में बैठा आया हूँ ।

महाराज ने गौतम की बड़ी प्रशंसा की और उसे सहर्ष छाती से लगा लिया । अब दोनों समुद्र-गृह की ओर चल पड़े । वहाँ पास ही इरावती की दासी चंद्रिका फूल चुन रही थी । उसे देखकर ये दोनों ओट में हो गये । वहाँ से राजा एक भरोखे से

यह देखने लगे कि कुंज में बैठी मालविका और वकुलवल्कि-
क्या सचमुच ही मेरी प्रतीक्षा कर रही हैं ।

उस समय वकुलवल्कि और मालविका दोनों ही चित्र
में महाराज को देखकर प्रणाम कर रही थीं । बाद में मालविका
ने कहा—सखी ! उस दिन महाराज के रूप-दर्शन से आज जैसी
तृप्ति नहीं हुई थी । आज भले प्रकार उन्हें निहार लिया । फिर
इरावती की ओर महाराज की स्नेह-दृष्टि देखकर मालविका
कुछ निराश-सी हो गई । वकुलवल्कि ने उसे और चिढ़ाने के
विचार से कहा—अरी ! यह महाराज की लाडली है ।

मालविका—तो फिर मैं क्यों दुःख सहन करूँ ? इतना कहकर
उसने क्रोध से मुँह फेर लिया ।

इसी समय राजा और गौतम भीतर चले गये । दोनों ने
राजा का स्वागत किया । तब गौतम तो, अशोक-वृक्ष को हरिण
से बचाने के बहाने, वकुलवल्कि को साथ लेकर, बाहर चले
गया, केवल मालविका और राजा भीतर रह गये ।

वकुलवल्कि कहीं पेड़ों के पीछे छिप गई । गौतम बाह्य
दरवाजे पर ठहर गया और शिला के सुखदायी स्पर्श के कारण
लेट कर सो गया ।

कुछ समय के बाद चंद्रिका से निपुणिका को विदित हो गया
कि गौतम समुद्र-गृह के दरवाजे पर सो रहा है । निपुणिका ने
यह वृत्तांत रानी इरावती से कह दिया । इरावती निपुणिका के
साथ, मृत्यु-संकट से बच गये गौतम को देखने के लिए, और
चित्रगत महाराज के प्रति आदर-भाव दिखाने के लिए, समुद्र-गृह
की ओर आ गई । इरावती के लिए हृदय-शून्य महाराज और
उनके चित्र में कुछ अंतर न था । इसलिए इरावती ने अपने
अशिष्टाचार का परिमार्जन करने के लिए महाराज का चित्र ही

पर्याप्त समझा। वहाँ पहुँच कर निपुणिका ने गौतम को समुद्र-गृह के दरवाजे पर सोते देखा। वह नींद में भी मालविका का नाम लेकर कह रहा था कि तुम इरावती से बढ़ जाओ !

निपुणिका ने गौतम को डराने के अभिप्राय से उस पर लकड़ी फेंक दी। गौतम शीघ्र उठकर चिल्लाने लगा—हाय रे ! मेरे ऊपर साँप गिर पड़ा।

यह सुनकर राजा शीघ्र बाहर निकल आये। महाराज को साँप के निकट जाने से रोकती हुई मालविका भी बाहर आ गई। बकुलावलिका ने भी प्रकट होकर संकेत-द्वारा राजा को रोका परंतु तब वे बाहर निकल चुके थे।

गौतम ने लकड़ी देखकर कहा—क्या ? यह लकड़ी है ? मैं तो समझा था कि केतकी के काँटों से जो मैंने साँप के डसने का-सा चिह्न बनाया था, वह सचमुच हो गया।

इरावती ने उन सबको देख लिया। उसने बकुलावलिका से कहा—कुटनी ! तूने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर ली।

(बकुलावलिका ने हाथ जोड़कर कहा—महारानी मेरे ऊपर प्रसन्न हों। मेंढकों के टराने से क्या इंद्र पृथ्वी को भूल जाता है ? नहीं, वह तो और भी अधिक वर्षा करके पृथ्वी के लिए अपना अनुराग प्रकट करता है।)

राजा ने बहाना किया कि उत्सव के दिन सेवकों को, अपराध करने पर भी छोड़ देना चाहिए। इसलिए मैंने इन दोनों को भी छोड़ दिया है। इसी से ये दोनों मुझे धन्यवाद देने आई थीं।

इसी समय जयसेना व्याकुल-सी वहाँ आई और कहने लगी—महाराज ! कुमारी वसुलक्ष्मी गेंद के पीछे दौड़ते समय बंदर से डर गई है। वह महारानी की गोद में बैठी भी काँप रही है; उसका चित्त स्वस्थ नहीं होता।

यह घटना सुनकर इरावती ने महाराज को वहाँ शीघ्र पहुँच कर उसे धीरज बँधाने को कहा । राजा शीघ्र ही कुमारी के पास चल दिये । इरावती, गौतम आदि सब चले गये । केवल मालविका और वकुलावली वहाँ खड़ी डर रही थीं । परंतु इसी समय उन्हें मालिन का शब्द सुनाई दिया कि अशोक पाँच दिन के भीतर ही खिल उठा है । यह सुनकर दोनों प्रसन्न हो गई और मालिन का शब्द पहचानकर उसके पीछे-पीछे ही चल पड़ीं ।

—* ५ *—

पुष्यमित्र ने अपने पुत्र अग्निमित्र को विदिशा का उपराज बना दिया था । पुष्यमित्र ने अश्वमेधयज्ञ के लिए घोड़ा छोड़ा और उसकी रक्षा के लिए कुमार वसुमित्र को नियुक्त किया । यह सूचना पाकर कुमार की दीर्घायु के निमित्त महारानी धारिणी दान-पुण्य करने लगीं ।

एक दिन धारिणी मंगल-गृह में बैठी थीं कि विदर्भ से आये अपने भाई के पत्र से उन्हें विदित हुआ कि महाराज की विजयी सेना ने वीरसेन की अध्यक्षता में, विदर्भ-राज को हरा दिया और माधवसेन मुक्त करा दिये गये ।

वीरसेन ने उस दूत को, जिसके हाथ पत्र आया था, अमूल्य रत्न आदि भेंट देकर, कला-निपुण दासियों सहित, महाराज की सेवा में भेजा था । वह अगले दिन महाराज के दर्शन करने वाला था ।

इस विजय के समाचार से सारे राज-भवन में प्रसन्नता छा रही थी । महारानी धारिणी की प्रसन्नता का एक और कारण भी था । गौतम को भी वह विदित हो चुका था । उसने राजा से कहा—मुझे जान पड़ता है कि आप शीघ्र ही बड़े सुखी होंगे ।
राजा—कैसे ?

गौतम—महारानी ने आज चतुर कौशिकी (योगिनी) से कहा है कि आपको शृंगार की चतुराई का गर्व है; सो मालविका के शरीर पर विवाह-काल का-सा शृंगार कर दीजिए। इस कारण मालविका विशेष आभूषणों से सजाई गई है। आशा है, महारानी आपका मनोरथ पूरा कर देंगी।

राजा—मित्र ! महारानी धारिणी सदा मेरे अनुकूल रही हैं। संभव है, मेरी ओर से ईर्ष्या-रहित होकर उसने ऐसा किया हो।

इतने में जयसेना ने आकर महाराज से निवेदन किया—
फूल खिलने के कारण रक्ताशोक की शोभा देखने के लिए महारानी ने आपको बुलाया है। आप वहाँ पधार कर उनके प्रयत्न को सफल करें। वे स्वयं वहाँ आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं।

अग्निमित्र ने प्रस्ताव स्वीकार कर जयसेना को भेज दिया और गौतम के साथ आप भी प्रमदावन की ओर चल पड़े।

राजा ने प्रमदावन पहुँचकर वहाँ की विचित्र शोभा देखी। वसंत अपने पूरे यौवन पर था। अशोक वृक्ष ने लाल फूलों की चादर ओढ़ रक्खी थी। मालविका का भी रूप-लावण्य आज खिल उठा था। यद्यपि वह अपने शृंगार का कारण जानती थी, तथापि उसे विश्वास नहीं होता था। कमल-पत्र पर जल की बूँद की नाई उसका हृदय काँप रहा था। परंतु वाई आँख फड़कने से उसे शुभ सूचित हो रहा था।

महाराज जब वहाँ पहुँच गये, तब महारानी धारिणी ने मालविका को पास खड़ी किये ही उनका स्वागत किया। महाराज अशोक वृक्ष की शोभा देखकर बैठे ही थे कि मंत्री ने सूचना भेजी कि विदर्भ से जो कला-निपुण दो स्त्रियाँ आई थीं, वे मार्ग के परिश्रम से थकी होने के कारण आपकी सेवा में नहीं भेजी गई थीं। अब वे आपकी सेवा के योग्य हैं। कहिए, क्या आज्ञा है ?

महाराज ने दोनों को बुला भेजा । उन्होंने आकर राजा और रानी को प्रणाम किया और महाराज की आज्ञा पाकर बैठ गई ।

राजा—तुम लोगों ने कौन सी कला सीखी है ?

दोनों—हम संगीत में कुशल हैं ।

राजा—महारानी ! इनमें से एक को तुम ले लो ।

धारिणी—मालविका ! इधर देखो । तुम्हें संगीत के समय कौन-सी सहकारिणी ठीक पड़ेगी ?

मालविका का नाम सुनकर आगंतुक दोनों स्त्रियों ने उसे पहचान लिया । वे हाथ जोड़कर खड़ी हो गईं । मालविका और ये स्त्रियाँ आँसू गिराने लगीं । सब लोग साश्चर्य देखने लगे ।

राजा ने पूछा—तुम दोनों कौन हो और यह कौन है ?

दोनों—महाराज ! यह हमारी राजकुमारी है !

राजा—कैसे ?

दोनों—महाराज ! सुनिए । विदर्भ देश के राजा को जीत कर आपने जिस कुमार माधवसेन को छुड़ाया है, उसी की यह छोटी बहन है ।

धारिणी सुनकर चकित हुई । बोलीं—ओह ! यह राजकुमारी है (मैंने चंदन जैसी लकड़ी को, खड़ाऊँ बनाकर, दूषित किया) ।

राजा ने इस अवस्था का कारण जानना चाहा । उन्होंने पूछा कि यह दशा कैसे हुई ? मालविका ने लंबी साँस लेकर मन-ही-मन कहा कि दैव-योग के कारण ।

राजा के उत्तर में दूसरी कला-निपुण स्त्री ने कहा—जब कुमार माधवसेन पकड़े गये, तब उनके मंत्री सुमति इन्हें, हम लोगों से छिपाकर, न जाने कहाँ ले गये थे ।

इसके आगे का वृत्तांत इस स्त्री को ज्ञात न था । तब

योगिनी ने कहा कि मुझसे पूछिए। योगिनी के शब्द से इन दोनों ने पहचान लिया कि यह कौशिकी है। योगिनी ने अब आगे का वृत्तांत कहना आरंभ किया—मेरे बड़े भाई सुमति माधवसेन के संत्री थे। जब उनकी यह दशा हुई तब आपके साथ संबंध करने की इच्छा से इनको मेरे संग लेकर वे विदिशा के कुछ यात्रियों के साथ चले। दिन की यात्रा समाप्त कर वन के बीच में ही वे विश्राम के लिए ठहरे। वहाँ धनुष-बाण लिये डाकुओं ने घेर लिया। सैनिकों ने कुछ समय तक उनका सामना किया, परंतु अंत में वे भाग गये। राजकुमारी की रक्षा करते हुए सुमति ने अपने प्राणों द्वारा स्वामी का ऋण चुका दिया।

इतना कहने पर योगिनी के आँसू निकल आये। वे दोनों कला-निपुण स्त्रियाँ भी दुःखित हुईं। राजा ने उन्हें धीरज बंधाया और योगिनी ने आगे कहना आरंभ किया—तब मैं मूर्च्छित हो गई। जब मुझे चेत हुआ तब इनका पता न था। मैंने भाई का दाह-संस्कार किया और गेरुआ वस्त्र धारणकर आपके राज्य में प्रवेश किया। यहाँ आकर मैंने देखा कि मालविका वीरसेन द्वारा डाकुओं के हाथ से बचकर महारानी के पास आ गई है। वस, यही इसकी कहानी का अंत है।

महारानी ने योगिनी से कहा—आपने अच्छा नहीं किया, जो मालविका के उच्च कुल में उत्पन्न होने का वृत्तांत मुझसे नहीं कहा।

योगिनी—इसका एक कारण था। जब इसके पिता जीवित थे, तब यात्रा से लौटकर एक सिद्ध ने मेरे सामने उनसे कहा था कि यह कन्या एक वर्ष तक दासी बनकर रहेगी और तब इसे अपने योग्य वर मिलेगा। आपकी सेवा में इसका कर्म-भोग कटता देखकर मैं समय की प्रतीक्षा करती रही।

इस समय कंचुकी ने आकर निवेदन किया—मंत्री जी कहते हैं कि विदर्भ के विषय में हमें जो निश्चित करना था वह कर लिया है। अब आप अपना मत प्रकट करें।

राजा—हमारी तो इच्छा है यज्ञसेन और माधवसेन को राज्य बाँट दिया जाय। वरदा नदी के उत्तर और दक्षिण के प्रदेश दो भागों में बाँट दिये जायँ।

कंचुकी ने यह आज्ञा मंत्री-परिषद् को जा सुनाई और फिर लौटकर कहा कि मंत्री-परिषद् इस आज्ञा का सहर्ष अनुमोदन करती है।

राजा—यही आज्ञा लिखवाकर वीरसेन के पास भेज दी जाय।

इतने में पुष्यमित्र का, उपहार-सहित, एक पत्र आया। ससुर का पत्र आया, सुनकर धारिणी को पुत्र के विषय में चिंता हुई। राजा ने पत्र पढ़ना आरंभ किया। पत्र से विदित हुआ कि “राजसूययज्ञ का घोड़ा यवनों द्वारा सिंधु नदी के दक्षिण तट पर पकड़ा गया था। उस पर बड़ा युद्ध हुआ था। धनुर्वीर वसुमित्र ने शत्रु-शूल को हरा दिया और घोड़ा छीन लिया। अंत में लिखा था, इसलिए आपको बिना समय खोये, क्रोध रहित हो, यज्ञोत्सव में स्त्रियों-सहित सम्मिलित होना चाहिए।”

कुमार की विजय पर सब को असीम हर्ष हुआ। प्रसन्न होकर राजा ने यज्ञसेन के साथे मौर्य-सचिव तथा अन्य बंदियों को छोड़ दिया।

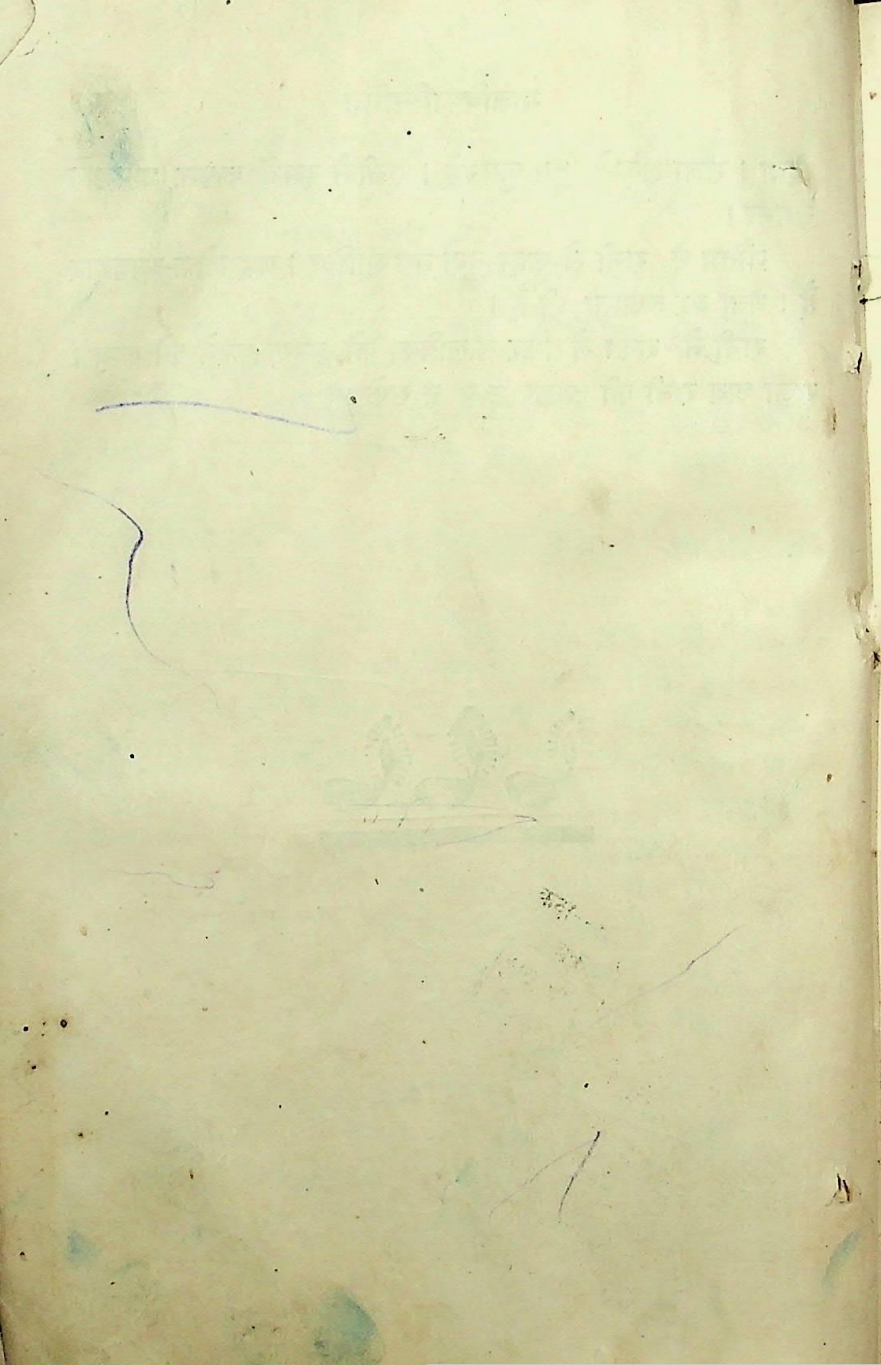
महाराणी धारिणी को तो अपार हर्ष हुआ। उन्होंने महाराज को मालविका सौंपने की इच्छा की। अब उसे राजकुमारी जानकर इरावती ने भी सहर्ष इस प्रस्ताव का अनुमोदन भेज दिया। धारिणी ने मालविका को दुलहिन बनाकर राजा को अर्पण कर

द्विया । राजा लजाते हुए चुप रहे । रानी ने इसमें अपना अपमान समझा ।

गौतम ने रानी से कहा बुरा मत मानिए । यह लोक-व्यवहार है । नया वर लजाता ही है ।

रानी ने राजा से फिर मालविका को ग्रहण करने को कहा । राजा अब रानी की आज्ञा टाल न सके ।





उस समय शकुंतला ने कहा—हाय ! मेरी दाहिनी आँख क्यों फड़कती है !

गौतमी—पुत्री ! अमंगल नष्ट हो । तेरे स्वामी के कुल-देवता तुझ पर सुख की वर्षा करें ।

परंतु शकुंतला जैसे-जैसे आगे बढ़ती थी, उसका हृदय काँपता जाता था ।

अभिवादन, आशीर्वाद तथा कुशल-प्रश्न के अनंतर शार्गरव ने कहा—राजन् ! महर्षि ने कुशल-प्रश्न के पश्चात् यह कहा है कि तुमने परस्पर प्रतिज्ञा कर मेरी इस कन्या से विवाह किया है । तुम दोनों के इस विवाह को मैंने प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया; क्योंकि तुम प्रशंसनीय पुरुषों में प्रथम माने गये हो और शकुंतला सत्कर्म की मूर्ति है । समान गुणवाले वर और वधू को मिलाकर प्रजापति चिरकाल की निंदा से बच गया । सो अब इस गर्भवती को, अपने साथ धर्माचरण के लिए, स्वीकार करो ।

फिर गौतमी ने कहा—राजन् ! मैं कुछ कहना तो चाहती हूँ, पर कहूँ क्या ? क्योंकि न तो इसने गुरुजनों की अपेक्षा की है, और न तुमने इसके बंधुओं से पूछा है ।

यह सब सुनकर दुष्यंत ने कहा—यह क्या कहा जा रहा है ?

शकुंतला को ये शब्द आग-से प्रतीत हुए ।

शार्गरव—हैं ! यह क्या ?

दुष्यंत—क्या मैंने इसके साथ विवाह किया था ?

यह सुनकर शकुंतला ने दुःख से मन-ही-मन कहा—हृदय ! तेरी शंका ठीक ही थी ।

शार्गरव ने फिर कहा—क्या पहले किये गये कार्य के लिए खीझ होने से राजा को धर्म से विमुख होना चाहिए ?

दुष्यंत—इस असत्य कल्पना का प्रसंग कहाँ से आया ?

शार्ङ्गरव क्रोध से बोला—ऐश्वर्य से उन्मत्त पुरुषों में प्रायः ऐसे विकार भरे होते हैं ।

अब गौतमी ने शकुंतला से कहा—पुत्री ! लज्जा मत कर । तेरा घघट हटाती हूँ, जिससे तेरा पति तुझे पहचान ले ।

परंतु उसका मुँह देखकर भी दुष्यंत पहचान न सके । थोड़ी देर तक देखकर कहने लगे—विचार करने पर भी मुझे स्मरण नहीं आता कि इसे मैंने कब स्वीकार किया था । अब इस गर्भवती को कैसे ग्रहण करूँ ?

शकुंतला ने दुखी होकर मन में कहा—हाय ! स्वामी को विवाह में ही संदेह है । अब मेरी बढ़ी हुई आशा कहाँ गई ?

राजा का उत्तर सुनते ही शार्ङ्गरव बोल उठा—न ग्रहण करो । बलपूर्वक स्पर्श की गई कन्या का अनुमोदन करनेवाले मुनि का तिरस्कार तुम्हें करना ही चाहिए । वह चुराई गई अपनी वस्तु चोर को दान कर रहे हैं ।

शारद्वत—शार्ङ्गरव ! बस चुप रहो ।—शकुंतला ! हमें जो कहना था सो कह दिया । महाराज जब ऐसा कहते हैं तब तुम्हीं इन्हें उत्तर दो ।

शकुंतला ने सोचा कि पहले का अनुराग जब इस अवस्था में आ गया है तब स्मरण कराने से क्या लाभ ? अथवा मुझे तो अपनी आत्मा की शुद्धि का प्रयत्न करना ही चाहिए । फिर प्रकट में कहा—हे पौरव ! पहले तपोवन में स्वभाव से सरल हृदयवाली मुझको प्रतिज्ञाओं से ठगा और अब, सब कुछ जानते हुए भी, ऐसे वचन कहकर अस्वीकार करना तुम्हारे योग्य ही है !

राजा ने कानों पर हाथ रखकर कहा—हरे ! हरे ! मुझे पातकी बनाने के लिए, और अपने कुल को भी कलंकित करने

के लिए, तुम ऐसा यत्न कर रही हो, जैसे उमड़े हुए जल-प्रवाह से सिंधु नदी तट के वृक्षों को गिराती है और अपने निर्मल जल को भी गँदला करती है।

शकुंतला—अच्छा, पर-स्त्री की आशंका को तुम्हारे ही अभिज्ञान (निशानी) से हटाती हूँ।

दुष्यंत—यह अत्युत्तम है।

शकुंतला ने अँगुली देखी तो वहाँ अँगूठी का पता न था। उसने दुखी होकर गौतमी की ओर देखा।

गौतम—शक्रावतार के भीतर शची-तीर्थ के जल को प्रणाम करते समय अँगूठी गिर गई होगी।

दुष्यंत ने मुस्कराकर कहा—यह स्त्री की तुरंत सूझ कहलाती है।

अब शकुंतला समझ गई कि यह सब भाग्य का खेल है। उसने अब विविध प्रकार से तपोवन के कुछ दृश्यों की स्मृति करानी चाही। परंतु सब निष्फल था। राजा को कुछ भी स्मरण न आया।

दुष्यंत—अपना कार्य साधनेवाली ऐसी स्त्रियों के मधुर मिथ्या वचनों से विषयी लोग ही आकर्षित हो जाते हैं।

ये अपशब्द सुनकर गौतमी ने कहा—महाभाग ! ऐसा कहना तुम्हें उचित नहीं। यह तपोवन में पली हुई कन्या छल से सर्वथा अनभिज्ञ है।

दुष्यंत—वृद्धे ! मनुष्यों से भिन्न प्राणियों में भी, बिना ही शिक्षा पाये, स्त्री-जाति की चतुराई देखी जाती है। फिर बुद्धिमती स्त्रियों की क्या बात ? कोयल उड़ने योग्य न होने तक अपने बच्चों का पालन-पोषण दूसरे पक्षियों से कराती है।

अब तो शकुंतला को असीम क्रोध आ गया। वह कहने

लगी—अनार्य ! तुम अपने जैसा सबको समझते हो ! तुम धर्म का बाहरी वेष धारण करनेवाले तिनके से ढके हुए कूप की भाँति हो । भला तुम्हारा अनुकरण अब कौन करेगा ?

अब तो दुष्यंत को भी संदेह हुआ कि यह क्रोध निश्छल जान पड़ता है । परंतु वे ऐसा कह नहीं सके ।

दुष्यंत—दुष्यंत का चरित्र प्रसिद्ध है । उसकी प्रजा में भी यह बात नहीं दीखती ।

शकुंतला ने फिर क्रोध से कहा—पुरुवंश का विश्वास करके, मुख में मधु और हृदय में विषवाले के हाथों पड़कर, मैं यहाँ कुलटा कहलाई हूँ !

अब शकुंतला आँचल से मुँह ढककर रोने लगी । शार्गरव ने भी उसे डाटकर कहा—बिना सोचे-समझे किया हुआ चपलता का काम इसी प्रकार दुखी करता है । अतः भली प्रकार परीक्षा करके ही किसी से गुप्त प्रेम करना चाहिए । मित्रता अज्ञात हृदयों में शत्रुता बन जाती है ।

दुष्यंत—क्या इसका विश्वास करके ही हमें अपवाद लगाकर दुखी करते हो ?

शार्गरव—इसका उत्तर सुन लो । जन्म-काल से ही जो छल में अशिक्षित है उसका वचन तो प्रामाणिक नहीं, और जिन्होंने दूसरों को छलना विद्या की भाँति पढ़ा है, उनके वचन विश्वसनीय हैं !

शारद्वत—शार्गरव ! इन बातों से क्या लाभ ? चलो, हमने गुरु जी की आज्ञा का पालन कर दिया ।

फिर राजा की ओर देखकर उसने कहा—राजन् ! यह तुम्हारी स्त्री है; चाहे इसे रक्खो, चाहे निकाल दो । पति का स्त्री पर सब प्रकार का अधिकार है ।

अब गौतमी और दोनों तपस्वी, शकुंतला को वहीं छोड़कर, चले गये ।

शकुंतला ने कहा—इस कपटी ने मुझे ठग लिया । क्या तुम भी मुझे छोड़े जाते हो ?

शकुंतला उनके पीछे-पीछे जाने लगी । उसे देखकर गौतमी ठहर गई और शार्गरव से बोली—शकुंतला तो हमारे पीछे रोती चली आती है । पति से त्यागी हुई मेरी पुत्री अब क्या करे ?

शार्गरव ने क्रोध से लौटकर कहा—आः, दुष्टे ! स्वतंत्र हुआ चाहती है ?

शकुंतला भयभीत होकर काँपने लगी ।

शार्गरव—यदि तू वैसी ही है जैसा यह राजा कहता है तो तुम कुलटा से हमें क्या काम ? और यदि तू अपने पातिव्रत्य को जानती है तो पति के घर में रहकर सबकी सेवा करना भी अच्छा है । तू यहीं रह, हम जाते हैं ।

दुष्यंत—इसे क्यों धोखा देकर जाते हो ?

शार्गरव—राजन् ! किसी अन्य में आसक्ति होने से यदि पिछले वृत्तांत को भूल गये हो तो, हे धर्म-भीरु ! क्या अब स्त्री-त्याग का फल भोगोगे ?

दुष्यंत—इसका निर्णय आप ही कर दीजिए । या तो मैं मूढ़ हूँ, अथवा यह मिथ्या कहती है । मैं इस संशय में स्त्री-त्यागी बनूँ अथवा पर-स्त्री के स्पर्श के पाप का भागी ?

पुरोहित अपने आप कह उठा—बालक का जन्म होने तक यह स्त्री हमारे घर ठहरे । मैं यह इसलिए कहता हूँ कि ज्योतिषियों ने पहले बताया है कि आपको चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त होगा । वह—मुनि का नाती—यदि इन लक्षणों से युक्त होगा तो इसे प्रसन्न करके अंतःपुर

में रख लेना, अन्यथा इसके पिता के पास पहुँचवा देना निश्चित है।

दुष्यंत ने यह सम्मति मान ली। तब पुरोहित ने शकुंतला से अपने पीछे आने को कहा। शकुंतला रोती हुई, पुरोहित और तपस्वियों के साथ, चली गई।

पुरोहित ने तुरंत ही लौटकर महाराज से कहा—राजन् ! आश्चर्य है ! कण्व के शिष्यों के लौट जाने पर अपने भाग्य की निंदा करती हुई वह कन्या छाती पीट-पीटकर रोने लगी। इतने में स्त्री के आकार की एक ज्योति उसे उठाकर अप्सरा-तीर्थ की ओर ले गई।

यह वृत्तांत सुनकर सब विस्मित हो गये। व्याकुल हुए राजा अपने शयन-गृह को चले गये। वे सोचते थे कि यद्यपि मुझे इस लौटाई हुई मुनि-कन्या के पाणि-ग्रहण का स्मरण नहीं है, तथापि मेरा हृदय मुझे बलपूर्वक पीड़ित करता हुआ मानों उसका विश्वास दिला रहा है।

—* ६ *—

राजा दुष्यंत ने अपने साले को नगर-रक्षक नियुक्त किया था। एक दिन उस नगर-रक्षक ने एक धीवर को पकड़ लिया; क्योंकि वह राजा के नाम की रत्न-जड़ी अँगूठी बेच रहा था। जानुक और सूचक राजपुरुषों ने उसे पीटते हुए पूछा—अरे चोर ! तूने यह अँगूठी, जिसमें मणियों से महाराज का नाम अंकित है, कहाँ पाई ?

धीवर ने डरते हुए कहा—आप प्रसन्न हों ! मैं ऐसा काम करनेवाला नहीं हूँ।

जानुक—तो क्या तू कोई श्रेष्ठ ब्राह्मण है जो महाराज ने तुम्हें यह दान में दी है ?

धीवर—मैं शक्रावतार तीर्थ का रहनेवाला धीवर हूँ; मछलियाँ फँसाकर अपना कुटुंब पालता हूँ ।

नगर-रक्षक ने मुस्कराकर कहा—यह उत्तम जीविका है ।

धीवर—प्रभु ! ऐसा न कहिए । सुना है, जातीय व्यवसाय निंदित हो तो भी उसे छोड़ना न चाहिए । दयालु श्रोत्रिय (वैदिक यज्ञ करनेवाला) भी, पशु-हिंसा के कारण, भयानक ही कहलाता है ।

नगर-रक्षक—अच्छा, तब क्या हुआ ?

धीवर—एक दिन एक रोहू मछली को काटने पर मुझे उसके पेट में जगमगाते रत्नवाली यह अँगूठी मिली । इसके बाद मैं इसे बेचने को दिखा ही रहा था कि आपने मुझे पकड़ लिया ।

नगर-रक्षक उस धीवर को राज-भवन में पकड़ लाया । उसने सब वृत्तांत कहकर इस विषय में राजा से आज्ञा चाही । परंतु राजा के पास से लौटने पर और ही बात हो गई । नगर-रक्षक ने धीवर को छोड़ दिया । उसका अँगूठी पाना सर्वथा ठीक था । उसे अँगूठी का पूरा मोल तो मिला ही, ऊपर से पुरस्कार भी मिला ।

इतना धन देखकर राजपुरुष सूचक ने कहा—फाँसी से उतारकर हाथी पर चढ़ाया गया है ।

जानुक—वह अँगूठी अवश्य अधिक मोल की होगी ।

नगर-रक्षक—राजा ने मूल्य के कारण उस अँगूठी का अधिक मान नहीं किया । उसके देखने से उन्हें किसी प्रिय-जन का स्मरण आ गया, जिससे सहज गंभीर होने पर भी क्षण भर उनकी आँखें डबडबाने लगीं ।

राजपुरुष उस धीवर के भाग्य पर ईर्ष्या करने लगे । धीवर ने अपनी इच्छा से आधा धन नगर-रक्षक को दे दिया । इससे

नगर-रक्षक उस पर बहुत प्रसन्न हुआ और उसे साथ लेकर वह मनोविनोद के लिए मध्य-पान के लिए कहीं चला गया।

कुछ समय के बाद सानुमती नाम की अप्सरा आकाशमार्ग से धिमान में वहाँ आई। वह अप्सरा-तीर्थ के पास, सिद्ध पुरुषों के स्नान के समय तक, अपनी पारी से निपट चुकी थी और अब राजर्षि दुष्यंत की दशा देखने आई थी। मेनका के संबंध से शकुंतला उसकी आत्मीय हो गई थी। राज-भवन में वसंतोत्सव के समय भी उत्सव का आरंभ न देखकर उसे आश्चर्य हुआ। वह तिरस्करिणी विद्या द्वारा छिपकर इधर-उधर से इसके कारण का पता लगाने लगी। अंत में उसे विदित हो गया कि अँगूठी को देखकर, राजा को शकुंतला की स्मृति आ गई है। इसी से प्रबल उद्वेग के कारण उन्मत्त हुए राजा ने वसंतोत्सव रुकवा दिया है।

सानुमती ने जब राजा को माढव्य (विदूषक) और वेत्रवती (दासी) के साथ उद्यान में आते देखा तब वह अदृश्य ही रहकर उनका वार्त्तालाप सुनने लगी।

दुष्यंत चिंताग्रस्त होकर धीरे-धीरे चलते हुए कह रहे थे—यह पापी हृदय पहले मृग-नयनी शकुंतला के स्मरण कराने पर भी सोता रहा। अब पश्चात्ताप का दुख सहने को जागा है।

यह सुनकर सानुमती ने कहा—ओह ! तपस्विनी शकुंतला भाग्यशालिनी है।

राजा को चिंतित देख माढव्य ने सोचा, शकुंतला-रूपी व्याधि से ग्रस्त हुए राजा की न जाने कैसे चिकित्सा होगी।

राजा ने इस समय दासी के द्वारा मंत्री पिशुन को कहला भेजा—विलंब से उठने के कारण मैं आज धर्मासन पर बैठने में असमर्थ हूँ। आपने नगर का जो कार्य देखा हो, वह पत्र में लिखकर मेरे पास भेज दीजिए।

राजा—धीरज कैसा ? अब तो उर्वशी मिल गई समझनी चाहिए ।

राजा ने यह सोचकर कि अँगुलियों के पसीने से अक्षर मिट न जायँ, वह पत्र माणवक को सुरक्षित रखने के लिए दे दिया । राजा की सेवा के लिए उर्वशी जब तक अपने अधीर मन को स्थिर करने लगी तब तक चित्रलेखा को महाराज के पास विषय के अनुकूल बातचीत करने के लिए, भेज दिया ।

महाराज ने चित्रलेखा का स्वागत करके कहा—जो पुरुष पहले संगम-तीर्थ (प्रयाग) में गंगा-यमुना का संगम देख चुका हो, उसे जैसे संगम-रहित यमुना नहीं भाती, वैसे ही उर्वशी के बिना तुम मुझे आनंद नहीं देती ।

चित्रलेखा ने भी ठीक उत्तर दिया । उसने कहा—निःसंदेह पहले बादलों की पंक्ति दिखाई देती है, बाद में बिजली ।

क्षण भर में वहाँ उर्वशी भी प्रकट हो गई । राजा ने हाथ पकड़कर उसे आसन पर बिठा लिया ।

इसी समय देवदूत ने आकर चित्रलेखा से कहा कि उर्वशी को जल्दी भेजो । भरत मुनि ने जो आठ रसों से आश्रित और ललित अभिनय-युक्त नाटक आपको सिखाया है, आज उसे देखने को देवराज और लोकपाल उतावले हो रहे हैं ।

यह सुनकर उर्वशी को बहुत दुःख हुआ । महाराज से आज्ञा पाकर चित्रलेखा उर्वशी को साथ लेकर चली गई ।

राजा को अब अपनी आँखें निरर्थक प्रतीत होने लगीं । मनोविनोद के लिए उन्होंने माणवक से पत्र माँगा । माणवक ने वह पत्र कहीं खो दिया था । इससे उसने तुरंत बात बदल दी । परंतु राजा ने फिर पत्र माँगा । माणवक ने चारों ओर देखकर कहा—
हा ! शोक ! भोज-पत्र नहीं मिलता । मित्र ! दिव्य भोज-पत्र निःसंदेह उर्वशी के साथ स्वर्ग को चला गया है ।

जा खड़ी हुई और राजा को तब भी उदासीन देखकर चकित हो गई। परंतु चित्रलेखा ने हँसकर स्मरण कराया कि तिरस्करिणी विद्या को हटाये बिना ही तू राजा के सामने जा खड़ी हुई है; इसी कारण राजा ने तुझे देखा ही न होगा।

इसी समय महारानी औशीनरी आती दिखाई पड़ी। महारानी के साथ पूजा की सामग्री लिये हुए दासियाँ थीं। रानी ने चंद्रमा की ओर देखकर कहा—रोहिणी के संयोग से भगवान् चंद्रमा की शोभा अधिक बढ़ गई है।

दासी—निःसंदेह महारानी के साथ महाराज भी विशेष शोभित हो गये हैं।

तब सफेद दुपट्टा ओढ़े हुए, मांगलिक आभूषण पहने, अलकों में पवित्र दूर्वा-दल लगाये, महारानी राजा के पास आई।

राजा ने महारानी का हाथ पकड़कर बिठा लिया। महारानी ने कहा—नाथ! मुझे आपका पूजन करके एक विशेष व्रत पूरा करना है। इसलिए घड़ी भर यहाँ प्रतीक्षा करने का कष्ट स्वीकार कीजिए।

राजा—नहीं, कष्ट क्यों होगा? अनुग्रह कभी कष्ट नहीं हो सकता। भला, तुम्हारे इस व्रत का क्या नाम है?

महारानी ने निपुणिका की ओर देखा। निपुणिका ने कहा—महाराज! इस व्रत का नाम 'प्रिय-प्रसादन' है।

राजा—यदि ऐसा ही है तो, हे कल्याणी! इस कठोर व्रत से कमल-तंतु के समान कोमल अपने शरीर को तुम वृथा कष्ट दे रही हो। भला जो सेवक तुम्हें प्रसन्न करने के लिए स्वयं उतावला हो रहा है, उसे प्रसन्न करने के लिए तुम क्यों यत्न कर रही हो?

यह सुनकर उर्वशी ने चित्रलेखा से कहा—महाराज के हृदय में इस रानी के लिए बहुत सम्मान है।

चित्रलेखा—मूढ़ ! दूसरी स्त्रियों के साथ प्रेम रखनेवाले नागरिक अपनी स्त्रियों के प्रति बड़ा प्रेम दिखाते हैं, जिससे उन्हें संदेह न हो।

राजा का उत्तर सुनकर रानी ने कहा—महाराज ! यह इसी व्रत का प्रभाव है, जो आप ऐसा कहकर मेरा इतना मान कर रहे हैं।

इसके बाद रानी ने पूजा की सामग्री लेकर, राज-प्रासाद में आई हुई, चंद्रमा की किरणों की पूजा की और उपहार के लड्डू कंचुकी और माणवक को दिये। फिर राजा का पूजन किया और हाथ जोड़कर निवेदन किया—मैं रोहिणी और चंद्रमा दोनों देवताओं को साक्षी करके स्वामी को प्रसन्न करती हूँ। महाराज ! आज से लेकर आप जिस स्त्री की इच्छा करेंगे तथा जो स्त्री आपका समागम चाहेगी, उसके साथ मैं प्रीति का बर्ताव करूँगी।

उर्वशी इन शब्दों से रानी का अभिप्राय न समझ सकी। उससे चित्रलेखा ने कहा—सखी ! पतिव्रता महारानी ने तुम्हारे और राजा के समागम के लिए स्वीकृति दे दी है। अब तुम्हारे लिए कोई रुकावट नहीं रही।

रानी के वचन सुनकर माणवक ने महारानी के विषय में धीरे से कहा—लूले के सामने यदि कोई मरने के योग्य व्यक्ति भाग जाय तो वह कहता है कि 'जा, चला जा, धर्म होगा।' फिर महारानी से कहा—महारानी ! क्या पूज्य महाराज आपके प्रति उदासीन हैं ?

महारानी—मूर्ख ! मैं तो अपने सारे सुखों को न्यौछावर करके भी महाराज को सुखी करना चाहती हूँ। दस, इसी से तू हमारा आपस का प्रेम जान ले।

—* ३ *—

स्वर्ग में 'लक्ष्मी-स्वयंवर' नाटक के अभिनय में उर्वशी ने लक्ष्मी का रूप धारण किया और मेनका ने वारुणी का। मेनका ने उर्वशी से पूछा—लक्ष्मी ! लोक-पाल और विष्णु आदि तीनों लोकों के पुरुष पधारे हैं। इनमें से तू किसको हृदय से चाहती है ? उर्वशी के मुख से 'पुरुषोत्तम नारायण को' कहने के बदले 'पुरूरवा को' निकल पड़ा। इस पर रुष्ट होकर भरत मुनि ने उसे शाप दे दिया कि 'तूने मेरे उपदेश पर ध्यान नहीं दिया, इसलिए तेरा वास स्वर्ग में न होगा।' परंतु इंद्र को उर्वशी पर दया आ गई। उन्होंने कहा—उर्वशी ! जिसके साथ तेरा अगाध प्रेम है, और जो युद्ध में मेरी सहायता किया करता है, उस राजर्षि का मुझे कुछ प्रत्युपकार करना है। इसलिए तू पुरूरवा के पास जाकर अपनी इच्छानुसार उस राजा की तब तक सेवा कर जब तक वह तुझसे उत्पन्न संतान का मुँह नहीं देख लेता। इस प्रकार मुनि का शाप भी आशीर्वाद में बदल गया।

इधर जब रानी औशीनरी राजा से रुष्ट होकर चली गईं तब उन्हें स्वयं पश्चात्ताप हुआ। अंत में उन्होंने विचार किया कि प्रिय-प्रसादन व्रत किया जाय। इसके लिए निपुणिका और लातव्य कंचुकी द्वारा महाराज को संदेश भेजा गया। सायंकाल का समय था। लातव्य कंचुकी ने महाराज को माणवक के साथ बैठे देखकर निवेदन किया—महाराज ! महारानी प्रार्थना करती हैं कि चंद्र-देव मणि-प्रासाद से स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। इसलिए जब तक रोहिणी का संयोग चंद्रमा से होता है, तब तक महाराज मेरी प्रतीक्षा करें। राजा ने महारानी की बात मान ली।

कंचुकी के चले जाने पर राजा ने माणवक से पूछा—मित्र !
व्रत का वास्तविक कारण क्या है ?

माणवक—मेरा तो विचार है कि महारानी ने जो आपके
पैर छूने की उपेक्षा की थी, इसी से उनके चित्त में पश्चात्ताप
हुआ है और अब व्रत के बहाने वे आपसे मेल कर लेना
चाहती हैं ।

राजा ने समझा कि यही बात ठीक है ।

फिर निर्दिष्ट समय से पहले ही माणवक को साथ लेकर
राजा मणि-प्रासाद पर पहुँच गये । चंद्रोदय होने में अब देर नहीं
थी । पूर्व दिशा का मुँह कुछ-कुछ लाल हो रहा था । देखते ही
देखते चंद्रमा का उदय हो गया । माणवक ने प्रसन्न होकर कहा—
अहा ! मित्र ! खाँड के लड्डू जैसे चंद्र-देव का उदय हो रहा है ।

राजा ने मुस्कराकर कहा—पेटू मनुष्यों को सब जगह खाने
की ही वस्तु दिखाई देती है ।

चंद्रमा को देखकर रानी के आने में विलंब जानकर राजा
ने फिर उर्वशी की चर्चा छोड़ दी । राजा का हृदय उसके लिए
संतप्त हो रहा था । माणवक ने धीरज दिया । राजा को भी दाहिने
अंग के फड़कने से कुछ धैर्य तो बँधता था, परंतु इससे हृदय
की पीड़ा कम न होती थी ।

इस समय शाप-ग्रस्त उर्वशी, चित्रलेखा के साथ आकाश-
मार्ग से, रथ पर सवार होकर, पृथ्वी-लोक को आ रही थी । मार्ग
में प्रश्नोत्तरों की झड़ी लगी रही । दोनों जब राजा के पास पहुँचीं
तब वे, तिरस्करिणी विद्या से छिपकर, राजा की बातें सुनने लगीं ।

राजा को उर्वशी की स्मृति सता रही थी । अपने लिए राजा
का गहरा प्रेम देखकर उर्वशी ने अपने को धन्य समझा । उसने
अपना मनोरथ पूरा हुआ माना । वह जल्दी से राजा के सामने

राजा ने माणवक को इस असावधानी के लिए डाँटा और भोज-पत्र खोजने की आज्ञा दी ।

इससे कुछ समय पहले काशिराज की पुत्री औशीनरी महारानी, दासियों-सहित, वहाँ आ चुकी थीं । निपुणिका द्वारा रहस्य जानकर उन्हें ठीक-ठीक वृत्तांत जानने की इच्छा थी । महाराज को माणवक के पास बैठे देखकर वे गुप्त रूप से इनकी बातें सुनने लगीं । इतने में हवा से उड़ती हुई कोई वस्तु उन्हें दिखाई दी । वह वस्तु उड़कर महारानी के पैरों से आ लगी । महारानी ने उसे उठाकर देखा तो भोज-पत्र पर कुछ अक्षर लिखे पाये । निपुणिका ने पत्र पढ़कर बताया कि यह तो उसी लोकापवाद (अर्थात् उर्वशी और महाराज के प्रेम) का पत्र है । दासी ने पत्र पढ़कर सुना दिया ।

महारानी ने इस पत्र को साथ लेकर महाराज से मिलने का विचार किया । माणवक अब तब भोज-पत्र खोजने का व्यर्थ यत्न कर रहा था । महारानी ने वहाँ पहुँचकर वही पत्र महाराज के हाथ पर रख दिया । वहाँ अकस्मात् महारानी को आई देखकर राजा चकित हो गये और बोले—महारानी ! आपका स्वागत हो !

क्रोध-भरी औशीनरी ने कहा—मेरा स्वागत कहाँ ? अब तो मेरा दुरागमन हो गया !

राजा ने माणवक को ओर मुँह करके पूछा—मित्र ! अब क्या उपाय करना चाहिए ? उसने कहा—वही उपाय करो जो चोरी की वस्तु के साथ पकड़ा गया चोर करता है । राजा ने माणवक से कहा—मूर्ख ! यह हँसी का समय नहीं है ।

राजा ने महारानी से कहा—मैं इस भोज-पत्र को नहीं खोज रहा था । मैं तो मंत्रवाले एक और पत्र की खोज में था ।

महारानी ने ताने के ढँग पर कहा—ठीक है, अपने सौभाग्य की वस्तु छिपानी ही चाहिए ।

माणवक ने बात को हँसी में टालना चाहा । कहा—महारानी ! महाराज के लिए भोजन शीघ्र बनवाइए, जिससे इनका पित्त शांत हो और ये स्वस्थ हो जायँ ।

महारानी—निपुणिका ! ब्राह्मण ने अपने मित्र को अच्छा धीरज दिया है ।

माणवक—हाँ, देखिए, निस्संदेह महाराज को विचित्र भोजनों से धीरज हो गया है ।

राजा—मूर्ख ! तू व्यथ ही मुझे अपराधी बना रहा है !

महारानी—स्वामी ! आपका कुछ अपराध नहीं । अपराधिनी तो मैं ही हूँ, जो देखी जाने के योग्य न होने पर भी आपके सामने खड़ी हूँ । मैं यहाँ से जाती हूँ ।

इस प्रकार क्रोध प्रकट कर जब महारानी जाने लगीं, तब राजा ने कहा—महारानी ! मैं अपराधी हूँ । प्रसन्न हूँ । क्रोध छोड़िए । भला जब स्वामी क्रोधित हो तब सेवक निरपराध कैसे हो सकता है ?

अब राजा ने महारानी के चरण छू लिए, परंतु रानी ने कुछ ध्यान न दिया । वे वर्षा-ऋतु में उमड़ी हुई नदी के समान क्रोध से भरी हुई चली गई ।

उनके चले जाने के बाद राजा ने पहले तो सोचा कि स्त्रियों के हृदयों पर प्रिय जनों का, सच्चे प्रेम के बिना, केवल मधुर वचनों से; कुछ प्रभाव नहीं पड़ता । परंतु विचार ने फिर पलटा खाया । राजा ने अब कहा—चाहे मेरा मन उर्वशी में फँसा है फिर भी महारानी के लिए मेरा वैसा ही प्रेम है । चरण छूने पर भी उसने मेरी उपेक्षा की है । मैं भी अब अंतःपुर में न जाऊँगा ।

राजा ने भी कहा—देवी ! मुझे तुम चाहे किसी और स्त्री के हाथ सौंप दो, अथवा अपनी ही सेवा में रख लो । तुम समर्थ हो । मुझ पर तुम जैसी शंका करती हो, वैसा मैं नहीं हूँ ।

महारानी—नाथ ! तुम वैसे रहो या न रहो ! मैंने तो प्रिय-प्रसादन व्रत कर लिया । अब जाती हूँ ।

महारानी चली गई । तब माणवक ने महाराज से कहा—महारानी ने आपको, असाध्य रोगी के समान, त्याग दिया है ।

राजा फिर उर्वशी का स्मरण करने लगे । उन्होंने कहा—इस प्रासाद में उतरकर भय के कारण मंद-गति से चलती हुई उर्वशी को चतुर सखी बल-पूर्वक मेरे पास ले आवे । छिपी हुई वह अप्सरा पाजेबों का शब्द-मात्र ही मेरे कानों को सुना दे, अथवा पीछे से धीरे-धीरे आकर मेरी आँखों को कर-कमलों से मूँद दे ।

उर्वशी ने तुरंत पीछे जाकर राजा की आँखें मूँद लीं । राजा को रोमांच हो आया, सारा शरीर पुलकित हो गया । तुरंत हाथ फ़ड़ककर उर्वशी को अपने पास बिठा लिया । उर्वशी ने कहा—सखी ! देवी ने अपने महाराज को मुझे दे दिया है । इसलिए देवी की नाई, मैं भी इनकी अर्धांगिनी हो गई हूँ ।

राजा—यदि 'देवी ने दिया' इसलिए तुम मुझसे प्रेम करती हो तो इससे पहले किसकी अनुमति से तुमने मेरा मन हर लिया था ?

इस समय चित्रलेखा ने कहा—मित्र ! इसका उत्तर उर्वशी नहीं दे सकती । अब मेरी एक प्रार्थना है । वसंत-ऋतु के बाद ग्रीष्म-ऋतु में मुझे सूर्य भगवान् की सेवा करनी है । सो मुझे आज्ञा दीजिए । मेरी सखी के साथ आप ऐसा व्यवहार करें जिससे वह स्वर्ग जाने के लिए उतावली न हो ।

फिर सखी उर्वशी को गले लगाकर चित्रलेखा बिदा हुई । राजा पुरुरवा और उर्वशी का मनोरथ पूरा हुआ ।

—* ४ *—

चित्रलेखा को शोक में डूबी देखकर सहजन्या ने उसके दुःख का कारण पूछा । चित्रलेखा ने करुणा के साथ कहा—सखी ! उर्वशी और महाराज पुरुरवा, राज का भार अपने मंत्रियों के ऊपर डालकर, कैलास-शिखर के पास गंधमादन वन में घूमने के लिए गये थे । वहाँ एक दिन मंदाकिनी के तट पर बालू के टीलों पर खेलती हुई विद्याधर-कन्या उदयवती को राजा पुरुरवा ने टकटकी लगाकर देखा । इससे मेरी सखी उर्वशी विगड़ गई । उसने राजा का अनुनय-विनय भी स्वीकार न किया और क्रोधवश देवताओं के नियम को भूलकर उस कुमार-वन में चली गई, जहाँ स्त्रियों के लिए जाना मना है । प्रवेश करते ही वह उस वन में लता के रूप में बदल गई ।

यह सुनकर सहजन्या को भी शोक हुआ; वह कहने लगी—भाग्य के विरुद्ध कौन चल सकता है ? फिर क्या हुआ ?

चित्रलेखा—राजा पुरुरवा भी उन्मत्त होकर उसी गंधमादन वन में उर्वशी को ढूँढ़ते हुए शत-दिन एक कर रहे हैं ।

सहजन्या ने दोनों के समागम का कोई उपाय पूछा । चित्रलेखा ने कहा—इसका एक ही उपाय है । पार्वती के चरण-राग से उत्पन्न हुई संगम-मणि जो, फिर समागम कराने में समर्थ है ।

सहजन्या—मेरे विचार में तो समागम का कोई उपाय शीघ्र हो जायगा । ऐसे महापुरुष चिरकाल तक दुःख नहीं भोगा करते ।

इधर पुरुरवा की विचित्र दशा थी । व्याकुल पुरुरवा उर्वशी को इधर-उधर खोज रहे थे । उर्वशी के सिवा कुछ सूझता ही न था । सब वस्तुओं में उर्वशी के अंगों की समानता दिखाई देती थी ।

आकाश में बादल देखकर राजा को भ्रम हुआ कि यह कोई राक्षस है जो उर्वशी को लिये जा रहा है। क्रोध से मिट्टी के ढेले उठाकर उसे मारने लगे, परंतु बाद में विदित हुआ कि यह कोई अभिमानी राक्षस नहीं, बल्कि वर्षा ऋतु का नया बादल है और यह राक्षस का चढ़ाया हुआ धनुष नहीं, वरंच इंद्रधनुष है, तथा यह बाणों की वर्षा नहीं, वरंच सोने की चमकती हुई रेखा के समान बादल की बिजली है।

बादलों को देखकर राजा ने फिर सोचा—मुनि कहते हैं कि 'समय राजा के वश में है।' इसलिए इस वर्षा-काल को ही क्यों न रोकूँ। अथवा जाने दो, इस समय बादल भी तो मेरी ही सेवा कर रहे हैं। बिजली के कारण रंगविरंगा यह बादल मेरा छत्र है, निचुल पेड़ की मंजरियाँ मेरे चँवर हैं, वर्षा के आरंभ के कारण चतुर मोर स्तुति-गान द्वारा मेरे भाट और धारारूप से वर्षा करनेवाले बादल मुझे भेंट देनेवाले मेरे साहूकारों के समान हैं।

परंतु उर्वशी का पुनः स्मरण हो आने पर राजा फिर उसे खोजने लगे और एक स्थान देखकर प्रसन्न हुए। भ्रम-वश कहने लगे कि उर्वशी के ओठों पर होकर गिरने से लाल-रंग के आँसुओं की बूँदों से रंगी हरे रंग की यह चोली पड़ी है। राजा उसे उठाने लगे तो देखकर बोले—अहो ! यह तो बीरबहुटियों से भरी हरी घास है। हाय ! किस प्रकार प्रिय उर्वशी को ढूँँ ?

इसके बाद राजा एक शिला पर चढ़ गये। वहाँ गर्दन उठाये हुए एक मोर बोल रहा था। उसे भी पूछा—हे मोर ! इस वन में घूमते हुए तुमने क्या हंस के समान गतिवाली मेरी कमल-नयनी उर्वशी को देखा है ?

मोर ने कुछ उत्तर तो दिया नहीं, बल्कि प्रसन्नता से नाचने लगा। राजा उसके हर्ष का कारण सोचने लगे। कुछ सोचकर बोले—हाँ, तुम्हारी प्रसन्नता का कारण मेरी समझ में आगया। उर्वशी का नाश हो जाने से तुम समझते हो कि तुम्हारे सुंदर पंख निरुपम हो गये हैं। नहीं तो फूलों से सजे और खुले हुए सुकेशी उर्वशी के केश-पाश के सामने तुम्हारे पंखों को कौन पूछता ? खैर, और किसी से पूछता हूँ। यह दूसरे के दुःख पर प्रसन्न होनेवाला नाच है।

राजा अब सामने जामुन के पेड़ पर बैठी कोयल को देखकर कहने लगे—तू पक्षियों में चतुर मानी जाती है, इसलिए तुझसे पूछता हूँ। हे मधुर-भाषिणी ! प्रेमी जन तुझे कामदेव की दूती कहते हैं। तू या तो मेरी उर्वशी को मेरे पास ले आ, अथवा मुझे ही जल्दी वहाँ ले चल।

परंतु कोयल बात सुने बिना ही जामुन खाती रही। राजा ने कहा—हाँ, ठीक है, लोग दूसरे के भारी दुःख को भी हलका समझते हैं। अच्छा, ऐसा करने पर भी मेरी उर्वशी के समान इस मधुर-भाषिणी पर क्या क्रोध करना ?

राजा ने अब एक राजहंस से पूछा—मानसरोवर को जाने आले हे जलपक्षि-राज ! मेरा उद्धार करो। मैं उर्वशी का समाचार न मिलने से शोक-ग्रस्त हो रहा हूँ। सज्जन लोग परोपकार को स्वार्थ से श्रेष्ठ समझते हैं।

परंतु राजहंस ऊपर देखता रहा। इससे राजा ने समझा कि यह कहता है—मानसरोवर की ओर चित्त लगा रहने से मैंने तुम्हारी उर्वशी को देखा नहीं।

राजा अब अधिक खेद के कारण भारी उन्माद-वश हो राजहंस से फिर कहने लगे—यदि उसे तूने सरोवर पर नहीं

देखा तो, हे चोर ! उसकी चाल तूने किस प्रकार चुरा ली ! हे हंस ! ला, मेरी उर्वशी मुझे दे दे । उर्वशी को तूने ही चुराया है । चोरी गई वस्तु का एक भाग जिसके पास देखा जाय, उसी से वह सारी वस्तु ली जाती है ।

परंतु राजहंस उड़ गया । राजा ने समझा कि राजहंस यह सोचकर भयभीत हो उड़ गया है कि यह चोरों को दंड देनेवाला राजा है; कहीं मुझे भी दंड न देने लगे ।

राजा अब और किसी से पूछने के लिए आगे बढ़े और एक स्थान पर चकवे को देखकर उसे पूछने लगे कि क्या तुमने मेरी उर्वशी को देखा है ? राजा को ऐसा सुनाई पड़ा जैसे वह पूछता है 'तू कौन है ?' राजा ने कहा कि मैं वह हूँ जिसके नाना और दादा सूर्य और चंद्रमा हैं और जिसे उर्वशी तथा पृथ्वी ने अपना स्वामी बनाया है । परंतु चकवे को चुप देखकर राजा ने उलहना दिया—हे चकवे ! कमलिनी के पत्ते की ओट में बैठी हुई अपनी प्रिया चकवी को दूर समझकर तू निःसंदेह उतावला होकर रोता है, परंतु सचमुच अपनी प्राणप्रिया से बिछड़े हुए मुझसे तू क्यों नहीं बात करता ? जैसी अपनी पीड़ा होती है, वैसी ही दूसरे की भी माननी चाहिए ।

राजा यहाँ भी निराश होकर अपने दुर्भाग्य को कोसने लगे । फिर और कहीं एक भौरे को देखकर बोले—हे भौरे ! उस मतवाली कमल-नयनी उर्वशी का तुझे कुछ पता है ? कहीं उसे देखा तो नहीं ? जान पड़ता है, उसके मुख की सुगंध तूने नहीं सूँधी, नहीं तो इस तुच्छ कमल को तू क्यों चाहता ?

इसी समय पास ही एक गज-राज दिखाई पड़ा । राजा उससे पूछने लगे—तूने क्या पूर्ण-चंद्रमा की कांति को लजानेवाली

मेरी उर्वशी को देखा है ? तूने क्या चमेली के फूलों से सजी केशोंवाली किसी स्त्री को देखा है ?

राजा को उसके शब्द से कुछ धीरज मिला और प्रसन्न होकर बोले—हाँ, ठीक है । सहधर्मी होने से तेरे साथ मेरी बहुत प्रीति है । मैं राजाओं का राजा हूँ और तू हाथियों का राजा है । तू सदा मद की धारा बहाता है और मैं याचकों को सदा धन की विपुल राशि देता हूँ । स्त्री-रत्नों में उर्वशी मेरी प्रियतमा है और झुंड में यह हथिनी तेरी प्रियतमा है । इस प्रकार तुझमें और मुझमें बहुत समानता है, परंतु तुझे अपनी प्रिया के वियोग का अनुभव नहीं हुआ । यही एक अंतर है । इस कारण तू धन्य है । अच्छा, सुखी रह । हम जाते हैं ।

राजा का चित्त अब सामने रमणीय सुरभि-कंदर नाम के पर्वत की ओर गया और शीघ्र ही विचार उठा कि अप्सराएँ इसको अधिक चाहती हैं, कहीं उर्वशी इसी पर्वत के पास न हो । इसलिए पर्वत से पूछने लगे—उर्वशी यहाँ तो नहीं रहती ? परंतु जब कुछ भी उत्तर न मिला तब यह समझा कि दूर होने के कारण यह मेरी बात नहीं सुन रहा । राजा ने जब पास जाकर पूछा तो अपने ही शब्द की गूँज सुनकर निराश हो गये ।

राजा अब पास ही नदी-तट पर विश्राम करने लगे । परंतु वहाँ नदी के देखने से भी फिर उर्वशी का भ्रम हो आया और कहने लगे—यह क्रुद्ध उर्वशी ही नदी के रूप में बदल गई है जो शीघ्रता में ढीले वस्त्रों की तरह फेन को खाँच रही है और मेरे बहुत-से अपराधों को चित्त में धारण करके टेढ़ी-मेढ़ी चाल से जा रही है । तरंगों इसकी भौहें हैं और चंचल पक्षियों की पंक्ति इसकी कुरधनी ।

परंतु वहाँ भी कुछ उत्तर न पाकर राजा ने सोचा कि

यह नदी ही है, उर्वशी नहीं; क्योंकि उर्वशी मुझे छोड़कर समुद्र के पीछे क्यों जाती ? अच्छा, श्रेष्ठ वस्तुएँ सुगमता से नहीं मिलती । अब फिर उस सुनयनी को ढूँढ़ता हूँ, जहाँ वह आँखों से ओभल हुई थी ।

वहाँ जाकर राजा ने एक कदंब का पेड़ देखा । उन्हें स्मरण हो आया कि उर्वशी ने अपना केश-पाश सजाने के लिए इस पेड़ से अधखिले फूल तोड़े थे । राजा की दृष्टि वहाँ से दो चट्टानों के बीच एक बहुत गहरे लाल रंग के पदार्थ पर जा पड़ी, जिससे भ्रम हुआ कि यह सिंह से मारे हुए हाथी के मांस का टुकड़ा अथवा आग की चिंगारी तो नहीं है । परंतु फिर ध्यान आया कि अभी वर्षा हुई है, आग कैसे हो सकती है ! फिर निश्चय किया कि यह लाल रंग की मणि है, जिसे उठाने के लिए सूर्य मानों अपने किरण रूपी हाथों को फैलाये हुए है । राजा मणि को उठाने लगे तो ध्यान आया कि यह उर्वशी के केश-पाश के योग्य है । सो जब वही दुर्लभ है, तब इससे क्या लाभ ?

इसी समय राजा को सुनाई दिया—वत्स ! उठा लो, उठा लो ! महारानी पार्वती के चरण-कमलों से उत्पन्न हुई यह संगम-मणि है । इसे पहनने से वियोगी का मिलन होता है ।

यह सुनकर राजा ने सोचा कि कौन मुझे ऐसे उपदेश कर रहा है । चारों ओर देखकर कहा—क्या कोई मृग-रूप-धारी मुनि मुझ पर कृपा कर रहा है ? राजा ने उसी का उपदेश मान कर मणि उठा ली और कहा—हे संगम-मणि ! यदि तू मुझे उर्वशी से मिला दे तो मैं तुझे अपने मुकुट में लगा लूँगा ।

इसी समय राजा का ध्यान एक लता की ओर गया । राजा को अचंभा हुआ कि इस पुष्परहित लता पर मेरा प्रेम-सा क्यों हो रहा है; इसे छूने की इच्छा क्यों होती है ।

आँखें मूँदकर लता को छूने से राजा का चित्त शांत हो गया, ऐसा ज्ञात हुआ मानों उर्वशी का स्पर्श हुआ हो, परंतु अब विश्वास न हुआ, क्योंकि कई बार पहले धोखे में आ चुके थे और अब धोखा खाकर अपने मन की पीड़ा को बढ़ाना नहीं चाहते थे। परंतु जब धीरे से आँखें खोलकर देखा तब उर्वशी दिखाई पड़ी। उर्वशी ने इस कष्ट के लिए राजा से क्षमा माँगी।

राजा—इतनी देर तक तुम अकेली कैसे रही ?

उर्वशी—महाराज ! सुनिष् । कुमार कार्तिकेय ने आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण कर गंधमादन पर्वत के अकलुष नामवाले जल-प्राय प्रदेश में निवास किया था। उन्होंने यह मर्यादा बाँधी थी कि जो स्त्री इस स्थान पर आयेगी वह लता में बदल जायगी। पार्वती के चरण-राग से उत्पन्न मणि के बिना वह स्त्री लता के रूप मुक्त न हो सकेगी। महान् शाप से मूढ़ होकर, देवता के नियम को भूलकर, और आपकी विनती की उपेक्षा कर मैं यहाँ चली आई और प्रवेश करते ही लता बन गई।

राजा ने वह संगम-मणि उर्वशी को दिखाई। उर्वशी ने मणि लेकर अपने सिर पर धारण कर ली और कहा—बहुत समय हो गया। प्रजा मुझे कोसती होगी। अब लौट चलो। इस नये बादल का विमान बना करके मुझे प्रतिष्ठानपुर ले चलो।

—* ५ *—

उर्वशी के साथ नंदनवन आदि अनेक देव-स्थानों में भ्रमण करके महाराज पुरुरवा बहुत दिनों में राजधानी को लौटे और फिर से अपना राज-काज करने लगे। अब संतान के अतिरिक्त राजा को और कोई चिन्ता न रही थी।

एक बार विशेष पर्व के दिन वे गंगा-यमुना के संगम पर,

रानियों के साथ, स्नान आदि करके तंबू में बैठे चंदन लगा रहे थे कि बाहर कोलाहल सुनाई पड़ा। एक दासी महाराज की उस महामूल्य संगम-मणि को रेशमी वस्त्र से ढँके हुए, तालपत्र में रखे, लिये जा रही थी कि एक गीध उसे मांस का टुकड़ा समझ भपटकर ले गया। यह सुनकर राजा, कंचुकी, वेधक (शिकारी) आदि कुछ पुरुष इकट्ठे हो गये। मणि-सहित सोने की जंजीर को चोंच में दबाये हुए वह गीध आकाश को भी रँग-सा रहा था। राजा ने उसे देखकर धनुष मँगवाया, परंतु इतने विलंब में वह पक्षी बहुत दूर निकल गया। आकाश में वह मणि ऐसी चमक रही थी जैसे रात के समय मंगल ग्रह चमकता है।

राजा ने कंचुकी द्वारा नगरवासियों को आज्ञा दी कि वे जाकर सायंकाल के समय पक्षियों के घोंसलों में उस पक्षी को ढूँढ़ें। राजा उस मणि को 'रत्न' समझकर नहीं चाहते थे; बल्कि उसका आदर तो इसलिए करते थे कि उससे ही उर्वशी के साथ पुनर्मिलन हुआ था।

कुछ समय बाद बाण-सहित मणि लेकर कंचुकी आ गया। उसने मणि देकर राजा से कहा—आपके क्रोध ने बाण बनकर उस वध्य पक्षी को मार गिराया है। यह धुली हुई मणि लीजिए।

राजा ने तंदूक में मणि रखवाकर पूछा—यह बाण किसका है।
कंचुकी—बाण पर नाम तो लिखा है, परंतु मेरी दृष्टि काम नहीं करती !

राजा ने बाण लेकर अक्षर स्वयं पढ़े। लिखा था—शत्रुओं के प्राण लेनेवाला यह बाण, पुरुरवा के पुत्र, कुमार आयु का है, जो उर्वशी के गर्भ से उत्पन्न हुआ है और उत्तम धनुर्धारी है।

माणवक ने महाराज को, संतानवान् होने पर बधाई दी। राजा को विस्मय हुआ कि इसकी उत्पत्ति कब हुई।

माणवक—इसका कारण अप्सरा का दिव्य प्रभाव ही है।

इसी समय च्यवन ऋषि के आश्रम से कोई तापसी एक कुमार को लेकर आई। माणवक ने उसे देखते ही कह दिया—यह वही क्षत्रिय-कुमार है, जिसका नाम गीध के मारने वाले बाण पर लिखा है। इसकी आकृति आपके ही समान है।

उसे देखकर राजा की भी आँखें तृप्त हो गईं। हृदय में प्रेम उमड़ आया।

तापसी ने सत्कार आदि ग्रहण कर चुकने पर राजा से कहा—सोम-वंश चिरकाल तक फले-फूले! जन्मते ही इस चिरंजीवी आयु कुमार को उर्वशी, किसी कारण, मुझे सौंप गई थी। इसके जाति-कर्म आदि संस्कार च्यवन ऋषि ने स्वयं किये हैं। अब यह वेद-शास्त्र पढ़ चुका है और धनुर्वेद में भी निपुण होगया है। आज यह राजकुमारों के साथ फूल, समिधा और कुश लाने गया था। वहाँ इसने वृक्ष की शाखा पर बैठे एक गीध को बाण से मार गिराया। यह कार्य आश्रम-नियम के विरुद्ध है। यह जान कर महात्मा च्यवन ने मुझे आज्ञा दी कि यह उर्वशी की धरोहर है; इसे सौंप आओ। इसलिए मैं उर्वशी को देखना चाहती हूँ।

राजा ने उर्वशी को बुला भेजा। कुमार आयु ने पिता के चरण छुए और पुरुरवा ने उसे उठाकर गले से लगा लिया।

पुरुरवा के पास बैठे हुए पुत्र आयु को उर्वशी ने दूर से ही देख लिया। पास आने पर कुमार ने माता को प्रणाम किया और उर्वशी ने तापसी को। तापसी ने राजा पुरुरवा के सामने उर्वशी को उसका पुत्र सौंप दिया और आज्ञा लेकर आश्रम को लौट गई।

राजा के सुख की सीमा न थी, किंतु उर्वशी कुछ स्मरण करके रोने लगी।

राजा ने विस्मित होकर पूछा—पुत्र-प्राप्ति के समय हर्ष के स्थान पर तुम्हें शोक क्यों हो रहा है ?

उर्वशी—महाराज ! पहले तो मैं पुत्र-दर्शन के आनंद से अपने आपको भूल गई थी; किंतु अब मुझे इंद्र के साथ की हुई प्रतिज्ञा का स्मरण हो आया है ।

राजा—कौन सी प्रतिज्ञा ?

उर्वशी—महाराज ! अभिनय के समय आपकी चिंता में डूबी रहने के कारण मुझे गुरु (भरत) ने शाप दिया था । फिर इंद्र ने शाप की अवधि नियत कर दी थी ।

राजा—अवधि क्या है ?

उर्वशी—इंद्र ने कहा था कि “जब मेरे परम प्रिय मित्र महाराज पुरूरवा तेरे द्वारा उत्पन्न संतान का मुख देख लेंगे तब तू मेरे पास आ जाना ।” मैंने आपके वियोग से बचने के लिए, उत्पन्न होते हो, पुत्र को विद्याध्ययन के निमित्त च्यवन ऋषि के आश्रम में पूजनीय सत्यवती के हाथ सौंप दिया था । अब यह बालक पिता की सेवा करने योग्य हो गया है, यह सोचकर वे इसे यहाँ छोड़ गई हैं । बस, आपके साथ मेरे सहयोग की इतनी ही अवधि थी ।

यह सुनकर राजा को मूर्च्छा आ गई । सचेत होने पर कहने लगे—अहा ! दैव किसी के सुख को सहन नहीं करता । पुत्र-प्राप्ति से संतुष्ट मेरे लिए तुम्हारा वियोग वैसा ही है जैसा किसी पेड़ पर पहली वर्षा के बाद विजली का गिरना । अब मैं राज्य नहीं कर सकता । तुम इंद्र की सेवा में जाओ । मैं भी तुम्हारे पुत्र आयु को राज्य देकर वन की शरण लेता हूँ ।

आयु—पिताजी ! बड़े-बड़े राजाओं के पालन करने योग्य पृथ्वी की रक्षा में मेरे जैसे बालक को नियुक्त करना उचित नहीं ।

राजा—पुत्र ! ऐसा मत कहो । सिंह का वच्चा भी बड़े-बड़े
हाथियों का नाश कर देता है ।

ऐसा कहकर राजा ने राज्याभिषेक की सामग्री लाने के लिए आज्ञा दी ।

इस समय सहसा आकाश में विजली चमकने लगी और नारद मुनि प्रकट होते दिखाई पड़े । धीरे-धीरे वे नीचे उतर कर राजा पुरुरवा के पास आये । राजा और उर्वशी ने उनकी यथोचित पूजा की । नारदजी ने आशीर्वाद दिया—तुम दोनों में कभी वियोग न हो ।

राजा ने मन-ही-मन कहा कि क्या ऐसा हो सकता है ? फिर उनसे पधारने का कारण पूछा ।

नारद—राजन् ! देवेंद्र ने अपने दिव्य प्रभाव द्वारा तुम्हारा वन जाने का संकल्प जानकर कहा है कि देवताओं और राक्षसों में घोर संग्राम होने वाला है । युद्ध में आप हमारे महान् सहायक हैं, इसलिए आप शस्त्र का त्याग न करें; उर्वशी जन्म-भर आपके साथ रहेगी ।

उपस्थित जनों ने इंद्र के प्रति कृतज्ञता प्रकट की । दुःख अब सुख में बदल गया । नारदजी ने राज्याभिषेक का कार्य स्वयं किया । नारदजी, और माता-पिता आदि को प्रणाम करके कुमार आयु, उर्वशी तथा पुरुरवा के साथ, बड़ी विमाता को प्रणाम करने चला । चारों ओर से पुष्प-वृष्टि होने लगी । नारदजी अपना कार्य पूर्ण कर गाते हुए चले गये ।



शकुंतला

—* १ *

प्राचीन समय में पुरु-वंश में दुष्यंत नाम के एक प्रसिद्ध राजा थे। वे एक दिन आखेट में मृग का पीछा करते हुए अधिक दूर निकल गये। कभी-कभी तो मृग इतनी दूर निकल जाता था कि सहज में दिखाई न देता था। एक स्थान पर दुष्यंत ने, उसे मारने के लिए, बाण चढ़ाया ही था कि एक ओर से किसी ने कहा—राजन् ! इसे मत मारिए; यह आश्रम का मृग है।

फिर वहाँ तपस्वियों को सामने देखकर राजा ने रथ रुकवा लिया। तब एक तपस्वी ने, दो शिष्यों के साथ, वहाँ आकर कहा—राजन् ! यह आश्रम का मृग मारने योग्य नहीं है। इस मृग के कोमल शरीर पर बाण मारना तो फूलों के ढेर पर आग रखना है। कहाँ आपका यह कठोर तीक्ष्ण बाण और कहाँ मृग के कोमल प्राण ! अतएव कृपा कर बाण को उतार लीजिए। बाण तो दुखी पुरुषों की रक्षा के लिए बनाया गया है, न कि निरपराध को मारने के लिए।

दुष्यंत ने बाण उतार लिया। तपस्वी ने प्रसन्न होकर कहा—हे पुरु-वंश-प्रदीप ! यह आपके योग्य ही है। आपके चक्रवर्ती और गुणी पुत्र उत्पन्न हो ! हम समिधा लाने जा रहे हैं। सामने

ही, मालिनी नदी के तट पर, कुलपति कण्व का आश्रम है। यदि और कोई काम न हो तो वहाँ जाकर अतिथि-सत्कार ग्रहण कीजिए और तपस्वियों के निर्विघ्न यज्ञ आदि देखकर अपने बाहु-बल के प्रताप का अनुभव कीजिए।

दुष्यंत—क्या वहाँ कुलपति हैं ?

तपस्वी— नहीं, अपनी कन्या शकुंतला को अतिथि-सत्कार की आज्ञा देकर वे, उसी के प्रतिकूल दैव की शांति के लिए, सोम-तीर्थ को गये हैं।

दुष्यंत—अच्छा, शकुंतला को ही देखता हूँ। वह मेरी भक्ति जानकर महर्षि से कहेगी।

अब तपस्वी लोग अनुमति लेकर अपने कार्य के लिए चले गये। दुष्यंत ने सारथि से आश्रम की ओर रथ हाँकने का कहा। कुछ और आगे बढ़कर राजा रथ से उतर पड़े। तपोवन में विनीत रूप से जाने के विचार से उन्होंने धनुष और आभूषण उतार दिये। सारथि को घोड़ों की पीठ ठंडी करने की आज्ञा देकर वे आश्रम-वासियों को देखने के लिए चले। अभी आश्रम-द्वार पर पहुँचे ही थे कि उनकी दाहिनी भुजा फड़कने लगी। इससे सोचने लगे कि यह तो आश्रम का शांत स्थान है, यहाँ इसका क्या फल होगा ! अथवा दैव के द्वार सर्वत्र होते हैं।

इस समय राजा को दक्षिण की ओर, वृक्षों की वाटिका में, कुछ बातचीत सुनाई दी। किसी ने सखी को पुकारा था। राजाने घूमकर देखा, वहाँ तपस्वियों की कन्याएँ पौधों को सींचने के लिए, अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार, जल से भरे घड़े लिये इधर ही आ रही हैं। उनके मधुर दर्शन का राजा पर गहरा प्रभाव पड़ा। वे कहने लगे कि ऐसा रूप तो अंतःपुर में होना चाहिए। अब वे पेड़ों की छाया में खड़े होकर उन्हें देखने लगे।

सामने शकुंतला और अनसूया तथा प्रियंवदा नाम की उसकी दो सखियाँ जल सींचती आ रही थीं। अनसूया ने कहा—सखी शकुंतला ! मैं सोचती हूँ कि पिता काश्यप को आश्रम के ये वृक्ष तुमसे भी अधिक प्रिय हैं। तभी तो वे तुम्हें ऐसे काम में लगा गये हैं।

शकुंतला—केवल पिता जी की ही आज्ञा नहीं है; वरंच इन पर मेरा भी सहोदर का-सा प्रेम है।

ये शब्द सुनकर दुष्यंत सोचने लगे कि यह कण्व की कन्या कैसे हुई ? इस स्वभाव से मनोहर शरीरवाली को जिसने आश्रम-धर्म में नियुक्त कर रक्खा है वह अवश्य अशिवेकी होगा। ऐसा करके वह ऋषि अवश्य नील-कमल की पंखड़ियों से शमी के दो टुकड़े करने का यत्न करता है।

राजा अब शकुंतला को पेड़ों की ओट से ही छिपकर देखने लगे। बल्कल-वस्त्र यद्यपि शकुंतला के योग्य न थे, तथापि उन्हें पहने हुए वह राजा को और भी सुंदर प्रतीत हुई। सेवार से घिरा कमल भी मनोहर दिखता है; चंद्रमा का कलंक भी उसकी कांति को बढ़ाता है; सुंदर आकृतिवालों के लिए कौन-सी वस्तु अलंकार नहीं हो जाती ?

इतने में शकुंतला आगे बढ़कर वकुल-वृक्ष को सींचने के लिए जा खड़ी हुई।

अनसूया ने शकुंतला से कहा—आम के वृक्ष से स्वयं लिपटनेवाली इस चमेली की लता को क्या तू भूल गई ? इसका वन-ज्योत्स्ना नाम तूने ही रक्खा है।

“तब तो मैं अपने आपको भी भूल जाऊँगी” इतना कहकर शकुंतला लता के पास गई और उसे देखकर बोली—सखी ! बड़े सुंदर समय में इनका मेल हुआ है।

शकुंतला इसे देखती हुई ठहरी रही। प्रियंवदा ने मुस्कराकर कहा—शकुंतला ! क्या तू यह सोच रही है कि जैसे वन-ज्योत्स्ना ने योग्य वृक्ष को पाया है, वैसे मैं भी अपने योग्य वर को पाऊँ ?

“यह तो तेरी ही इच्छा है” ऐसा कहकर शकुंतला ने जल का घड़ा वहाँ, वृक्ष और लता पर, लुढ़का दिया।

दुष्यंत अब सोचने लगे कि यह कन्या क्या कुलपति कण्व की किसी असवर्णा स्त्री से है ! यदि नहीं, तो मेरा मन इसके लिए क्यों चंचल हो रहा है ? उत्सुक राजा को ठीक-ठीक वृत्तांत जानने की इच्छा हुई।

इस समय जल की बूंदों से डरकर उड़ा हुआ एक भौंरा, लता को छोड़कर, शकुंतला के मुँह पर बैठ गया। बार-बार उड़ाने पर भी वह उड़ता न था। कभी आँखों के पास पहुँच जाता, कभी कानों के पास गूँजता और कभी होठों पर जा बैठता था। शकुंतला बहुत खिन्न होकर कहने लगी—यह ढीठ भौंरा नहीं हटता। सखियो ! इस दुष्ट से मुझे बचाओ।

सखियों ने मुस्कराकर कहा—हम रक्षा करनेवाली कौन हैं ? तू दुष्यंत को बुला; क्योंकि तपोवनों का रक्षक राजा होता है।

अपने को प्रकट करने के लिए राजा को यह अवसर उपयुक्त जान पड़ा। वे आगे बढ़ गये। राजा को देखकर सब विस्मित हो गईं। राजा ने पूछा—पौरव-राज के राज्य में तपस्वियों की कन्याओं से कौन धृष्टता करता है ?

अनसूया—श्रीमान् ! कोई विशेष विपत्ति नहीं है। हमारी यह प्रिय सखी भौंरे से दुखी हो रही है।

अब अनसूया ने राजा के अतिथि-सत्कार के लिए शकुंतला से जल और फल आदि लाने को कहा; परंतु राजा ने कहा—तुम्हारे मधुर वचनों से ही मेरा सत्कार हो गया।

प्रियंवदा ने तब उनसे सप्तपर्ण-वृक्ष की शीतल छाया में, चबूतरे पर, बैठकर विश्राम करने को कहा। राजा दुष्यंत ने तपस्वियों की कन्याओं को भी वहीं बिठा लिया।

राजा को देखकर शकुंतला के हृदय में तपोवन के विरुद्ध भाव उत्पन्न होने लगे। प्रियंवदा ने भी उन्हें कोई विशेष प्रतिभाशाली व्यक्ति समझा।

अनसूया ने पूछा—श्रीमान् किस राज-वंश के भूषण हैं और अधिक सुकुमार होकर भी तपोवन के परिश्रम में शरीर को क्यों थका रहे हैं ?

उत्तर सुनने के लिए शकुंतला का भी हृदय उत्सुक हुआ।

दुष्यंत अपना परिचय नहीं देना चाहते थे। इसलिए उन्होंने कहा—देवी ! मुझे पौरव-राज ने धर्माधिकार में नियुक्त किया है। मैं तपोवन में यह जानने के लिए आया हूँ कि यज्ञ आदि में कोई बाधा तो नहीं होती।

इस पर अनसूया ने कहा—हम धर्मचारी अब सनाथ हुए।

अब सखियों ने आपस में कहा—यदि आज यहाँ पिता होते तो जीवन-सर्वस्व से भी इस विशेष अतिथि को कृतार्थ करते।

यह सुनकर शकुंतला ने कृत्रिम क्रोध से कहा—हटो, तुम न जाने हृदय में क्या विचार कर ऐसा कह रही हो। मैं तुम्हारी बात नहीं सुनती।

अब राजा ने शकुंतला के विषय में पूछा—ऐसा प्रसिद्ध है कि भगवान् काश्यप सदा से तपस्या में संलग्न हैं, फिर यह तुम्हारी सखी उनकी कन्या कैसे हुई ?

अनसूया—मुनिये, कौशिक गोत्र के एक बड़े प्रतापी राजर्षि हुए हैं। एक बार उनके उग्र तप से शंकित होकर देवताओं ने, उनके तपोभंग के लिए, मेनका नाम की अप्सरा भेजी। उसी से

हमारी सखी की उत्पत्ति हुई है। इस परित्यक्त कन्या का पालन करने के कारण तात काश्यप इसके पिता हैं।

अब तो दुष्यंत को अपने मनोरथ के लिए अवकाश मिला। उन्होंने पूछा—यह मृगाक्षी विवाह तक ही तपस्या के व्रत का पालन करेगी अथवा जीवन-पर्यंत हरिणियों के साथ ही रहेगी?

प्रियंवदा—महाराज! यह कन्या धर्माचरण में भी पर-वश है। इसके पिता की इच्छा इसे योग्य वर को सौंपने की है।

दुष्यंत ने मन-ही-मन कहा कि तब तो यह दुर्लभ नहीं है। अब मनोरथ की पूर्ति में कोई विघ्न नहीं रहा। यह रत्न, जिसे अग्नि समझकर मेरा हृदय डर रहा था, मेरे स्पर्श करने योग्य है।

यह वार्तालाप सुनकर शकुंतला क्रुद्ध होकर जाने लगी। अनसूया के कारण पूछने पर शकुंतला ने कहा—मैं अनाप-शनाप बकनेवाली प्रियंवदा की बातें जाकर माता गौतमी से कहे देती हूँ।

अनसूया ने उसे रोककर कहा—विशेष अतिथि का सत्कार किये बिना ही तुम्हारा जाना उचित नहीं।

अब शकुंतला जाने लगी। राजा उसे पकड़ना चाहते थे परंतु ऐसा कर नहीं सकते थे। प्रियंवदा ने शकुंतला को रोककर कहा—तुम्हें जाना उचित नहीं।

शकुंतला—क्यों?

‘तुम्हें मेरे दो पेड़ सींचने हैं। आओ, यह ऋण चुकाकर जाना’ ऐसा कहकर प्रियंवदा ने शकुंतला को बलपूर्वक रोक लिया।

“यह तो पेड़ों के सींचने से थकी हुई देख पड़ती है, सो मैं इसका ऋण चुकाये देता हूँ।” ऐसा कहकर दुष्यंत ने अपनी स्रङ्गूठी उतार कर दे दी।

उस पर अंकित नाम पढ़कर दोनों सखियाँ विस्मित हो गईं।

राजा ने उनका भाव समझकर कहा—कुछ और मत सोचो। यह राजा का उपहार है।

प्रियंवदा—राजा का उपहार होने के कारण आपको यह अँगूठी देना उचित नहीं। यह तो आपके वचन से ही उद्भूत हो गई। फिर उसने कुछ हँसकर कहा—सखी शकुंतला! इस महानुभाव अथवा महाराज के अनुग्रह से तुम उद्भूत हो गई हो। अब तुम जा सकती हो।

परंतु शकुंतला का मन जाने को नहीं चाहता था। इसके उत्तर में, उसने मन-ही-मन कहा कि “जाऊँ तब जब मैं अपनी स्वामिनी होऊँ” और फिर स्पष्ट रूप से कहा—भेजनेवाली या रोकनेवाली तुम कौन होती हो?

राजा अब शकुंतला की ओर देखकर सोचने लगे कि जैसे मेरा मन इसकी ओर खिंचा है, वैसे ही क्या इसका मन भी मेरी ओर लगा होगा? राजा ने शकुंतला की चाल-ढाल से अनुमान किया—जान पड़ता है, मेरी प्रार्थना सफल होगी।

इतने में एक ओर से शब्द आया—हे तपस्वियो, तपोवन के जीवों के पास, उनकी रक्षा के लिए, जाओ। सुना है, मृगयाशील राजा दुष्यंत पास है। घोड़ों की टापों से उड़ी हुई धूल, आश्रम के वृक्षों की शाखाओं पर सूखने के लिए डाले गये। गीले कपड़ों पर पड़ रही है। रथ को देखने से भयभीत हाथी तपोवन में प्रवेश कर रहा है। इसने मृगों के भुंड को तितर-बितर कर दिया है।

यह सुनकर सब स्तब्ध हो गये। राजा को नगरवासियों पर शोक हुआ, जिन्होंने तपोवन में आकर शांति भंग कर दी। कन्याएँ डरकर कुटी को जाने लगीं। राजा उन्हें कुटी में जाने को अनुमति देकर आश्रम में, विघ्न को रोकने के लिए, जाने लगे। सखियों ने उन्हें फिर दर्शन देने की प्रार्थना की।

चलते समय शकुंतला ने सखी से कहा—अनसूया ! मेरे पैर में नये कुश का काँटा चुभ गया है और वस्त्र कुरबक की शाखा में उलझ गया है । सो जब तक मैं इसे छुड़ाती हूँ, तब तक मेरी प्रतीक्षा करो ।

अब शकुंतला, राजा की ओर देखती हुई, बहाने से विलंब करके, सखियों के साथ चली गई ।

दुष्यंत को भी अब नगर की ओर जाने की इच्छा न रही । उसने अपने अनुचरों का डेरा, तपोवन के समीप, डलवाने का विचार किया ।

—* २ *—

राजा का मित्र माढव्य मृगयाशील राजा से व्याकुल हो उठा । वह सोचने लगा कि दोपहर में गरमी के कारण विरली छायावाले पेड़ों के बीच घूमना पड़ता है । पहाड़ी नदियों का पत्तों के मिलने से कसैला जल पीना पड़ता है । ठीक भोजन भी नहीं मिलता । रात में नींद पूरी नहीं होती तभी, प्रातःकाल से पहले ही, मृगया में राजा के साथ जाने के लिए मुझे दासीपुत्र उठा देते हैं । फिर कोढ़ में खाज यह कि कल जब हम लोग पीछे रह गये थे तब महाराज ने मृग का पीछा करते हुए आश्रम में प्रवेश कर तपस्वी की कन्या शकुंतला को दुर्भाग्य से देख लिया । अब नगर की ओर जाने के लिए किसी प्रकार उनका मन ही नहीं करता । क्या करूँ ?

माढव्य इस प्रकार सोच रहा था कि शकुंतला की चिंता करते हुए राजा दुष्यंत, धनुर्धारिणी यवन-स्त्रियों के साथ, वहाँ आ गये ।

माढव्य ने राजा से कहा—मित्र ! मेरा हाथ नहीं उठता । सो शब्दों से ही तुम्हारा स्वागत करता हूँ; जय हो ।

राजा—अरधंग कब से हुआ ?

माढव्य—स्वयं ही तो आँखें दुखाकर अब आँसुओं का कारण पूछते हो ।

राजा ने स्पष्ट रूप से सब वृत्तान्त कहने के लिए कहा । माढव्य कहने लगा—इस प्रकार राजकाज छोड़कर ऐसे भयंकर और निर्जन प्रदेश में आखेट की वृत्ति से तुम रहा करोगे । मैं सच कहता हूँ कि प्रतिदिन हिंसक पशुओं का पीछा करते-करते मेरे अंग बस में नहीं रहे । सो मुझ पर कृपा करो । एक दिन तो विश्राम कर लेने दो ।

दुष्यंत ने सोचा कि यह तो ऐसा कहता है । मेरा भी चित्त काश्यप की कन्या का स्मरण कर आखेट से हट ही गया है । इसलिए माढव्य से बोले—और क्या ? अपने मित्र के वाक्य टाले नहीं जा सकते । लो, मैं आखेट छोड़कर ठहरा जाता हूँ ।

माढव्य प्रसन्न होगया ।

राजा—मित्र ! ठहरो, मुझे कुछ और कहना है । तनिक विश्राम कर लो, मेरे एक सरल काम में तुम्हें सहायक होना होगा ।

माढव्य—क्या लड्डू खाने में ? तब तो मुझ पर तुम्हारी बड़ी कृपा हुई ।

राजा—जो कहना है, अभी कहता हूँ ।

राजा ने सेनापति को बुलाकर कहा—मृगया के विरोधी माढव्य ने मेरा उत्साह मंद कर दिया है ।

सेनापति—माढव्य तो ऐसे ही बका करता है । मृगया से शरीर को कई लाभ होते हैं । चर्बी कम हो जाने से पेट हलका हो जाता है और शरीर हर काम के योग्य बन जाता है । जंतुओं के भी भय और क्रोध-भरा विकार-युक्त चित्त देखने में आते हैं । धनुर्धरों की निपुणता यह है कि भागते हुएों पर उनके बाण सफल होते

हैं। मृगया को लोग बिना कारण ही बुरा कहते हैं। ऐसा चिनोद और कहाँ मिल सकता है ?

परंतु राजा ने तपोवन-निकट होने के कारण मृगया बंद करना ही उचित समझा। उन्होंने सेनापति को आज्ञा दी कि आगे गये हुए बन में घेरा डालनेवालों को वापिस बुला लो और सैनिकों को तपोवन में विघ्न डालने से रोक दो। आज्ञा-पालन के लिए सेनापति चला गया।

अब दुष्यंत और माढव्य पेड़ की छाया में, शिला-तल पर बैठ गये। दुष्यंत ने शकुंतला का प्रसंग छेड़ा। उन्होंने मित्र से कहा—माढव्य ! यदि तुमने यह दर्शनीय पदार्थ नहीं देखा तो तुम्हें आँखों का फल नहीं मिला।

माढव्य—तुम तो मेरे सामने ही रहते हो।

दुष्यंत—अपने को सभी सुंदर कहते हैं। मैं तो तुमसे आश्रम के रत्न स्वरूप शकुंतला के विषय में कहता हूँ।

माढव्य ने सोचा कि मैं राजा को इस बात का अवसर न दूँगा। इसलिए वह कहने लगा—मित्र ! क्या एक तपस्वी की कन्या तुम्हारी इच्छा के योग्य है ?

दुष्यंत—मित्र ! त्याज्य वस्तु पर पौरवों का मन नहीं जाता। सुना है वह मुनि-कन्या आपसरा के गर्भ से उत्पन्न हुई है। माता से छोड़ दी जाने पर वह मुनि को मिली है, मानों चमेली का फूल, टूटकर, आक पर गिरा हो।

माढव्य ने हँसकर कहा—जैसे किसी की अभिलाषा खजूरों से हटकर इमली में लगी हो, वैसे ही स्त्री-रत्नों का आनंद लेते हुए यह तुम्हारी इच्छा है।

दुष्यंत—तुमने उसे देखा नहीं, इसी से ऐसा कहते हो। वह तो विधाता द्वारा रची गई, रूप-लावण्य की, विलक्षण सजीव मूर्ति है।

दुष्यंत से माढव्य ने अब उसे शीघ्र पाने को इसलिए कहा कि कहीं वह, इंगुदी के तेल से चिकने सिरवाले, किसी तपस्वी के हाथ न पड़ जाय। परंतु दुष्यंत ने बताया कि वह पर-वश है, उसका पिता यहाँ नहीं है।

माढव्य—आपके लिए उसकी अनुरागभरी दृष्टि कैसी है ?

दुष्यंत—तपस्वी की कन्या चाहे स्वभाव से ही लज्जाशील होती है, तब भी उसने मुस्कराकर मेरी ओर देखा था। फिर उसके लज्जाशील होने पर भी, चलते समय उसका भाव प्रकट हो गया। कुछ पग ही चलकर, कुश के अंकुर से पैर बिंधने के बहाने, वह सूक्ष्मांगी ठहर गई और पेड़ों की शाखाओं में उलझे वल्कल-वस्त्र को सुलभाती हुई मेरी ओर मुख मोड़े खड़ी रही।

माढव्य—मित्र ! तब तो अपने लिए खाद्य-सामग्री और इकट्ठी कर लो। यह तपोवन उपवन, दिखाई देता है।

दोनों में इस प्रकार वार्त्तालाप हो ही रहा था कि दो ऋषि-कुमारों ने आकर निवेदन किया—महाराज ! आश्रमवासी आपसे प्रार्थना करते हैं कि भगवान् महर्षि कण्व के न होने से राक्षस हमारें यज्ञ में विघ्न डालते हैं। सो आप कुछ दिन, सारथि-सहित, इस आश्रम को सनाथ करें।

दुष्यंत ने यह प्रार्थना सहर्ष स्वीकार कर ली। माढव्य ने धीरे से राजा से कहा—अब गलहस्त तुम्हारे अनुकूल है।

राजा ने मुस्कराकर द्वारपाल रैवतक को आदेश दिया—मेरी ओर से सारथि से कहो कि रथ और धनुष-बाण ले आये।

दोनों ऋषि-कुमार प्रसन्न हो गये। राजा ने उनसे कहा—आप लोग चलो, मैं भी आपके पीछे-पीछे आता हूँ।

रथ तैयार हो गया। परंतु इसी समय राज-माता की आज्ञा लेकर नगर से एक दूत आ गया। उसने निवेदन किया—

महाराज ! माता ने आज्ञा दी है कि आज से चौथे दिन पुत्र-पिंड पालन नाम का व्रत होगा। उस समय तुम अवश्य आकर हमें प्रसन्न करो।

दुष्यंत—इधर तपस्वियों का कार्य उधर बड़ों की आज्ञा ! दोनों ही काम टाले नहीं जा सकते। अब क्या करना चाहिए ?

माढव्य—त्रिशंकु के समान बीच में रहो।

फिर कुछ विचारकर राजा ने कहा—मित्र माढव्य ! माता जी तुम्हें पुत्र के समान मानती हैं। सो तुम्हीं यहाँ से लौटकर, माता के पुत्रोचित कृत्य का अनुष्ठान करो। मेरी ओर से निवेदन कर देना कि मैं तपस्वियों के काम में लगा हूँ।

माढव्य ने भी यह स्वीकार कर लिया। परंतु दुष्यंत को तुरंत ही एक और विचार आया। उन्होंने सोचा कि यह चंचल है। जाकर कहीं हमारे प्रेम का वृत्तांत अंतःपुर में न कह दे। इसलिए उससे कह दिया—मित्र ! मैं ऋषियों के गौरव से आश्रम ठहरा हुआ हूँ। तपस्वी की कन्या पर मेरा प्रेम तिल-भर भी नहीं। कहाँ मैं और कहाँ वह प्रेम-व्यवहार से अनभिज्ञ, मृगों के साथ पली हुई, कन्या ! मैंने हँसी में जो अनाप-शनाप कहा है, उसे सच मत समझ लेना।

माढव्य ने भी “अच्छा” कहकर राजा का कहना मान लिया।

—* ३ *

महानुभाव राजा दुष्यंत के प्रवेश-मात्र से ऋषियों के सब धर्म-कार्य निर्विघ्न हो गये। उधर दुष्यंत के लिए शकुंतला चिंतित रहने लगी। उसे संतप्त-हृदय जानकर सखियाँ उसके लिए उशीर का लेप और डंडी-सहित कमल-पत्र ले आईं ! माता गौतमी के हाथ एक तपस्वी ने शांति-जल भी भेजने को कहा।

राजा दुष्यंत की भी ऐसी ही बुरी दशा हो रही थी। वे सोचने लगे कि अब यज्ञ का काम पूरा हो जाने पर, तपस्वियों से आज्ञा लेकर, मनोविनोद करूँ। उन्हें शकुंतला के दर्शन बिना कुछ भी अच्छा न लगता था। उसे ढूँढ़ने का विचारकर उन्होंने अनुमान किया कि शकुंतला, दोपहर के समय, मालिनी नदी के तट पर लता-कुंज में गई होगी।

उधर जाते हुए राजा जब वेंटों से घिरे लता-कुंज के पास पहुँचे तब पद-चिह्न की नई पंक्ति दिखाई दी। वहाँ भाँककर देखा तो नेत्रों को शांति मिल गई। शकुंतला फूलों से ढके हुए शिलातल पर लेटी थी। दोनों सखियाँ हवा कर रही थीं।

दुष्यंत वहाँ खड़े होकर उनका वार्तालाप सुनने लगे। शकुंतला उस समय बहुत व्याकुल-सी दिखाई दी। दुष्यंत सोचने लगे कि यह गरमी का दोष है अथवा वही है जो मेरे मन में है।

उधर दोनों सखियाँ भी शकुंतला की अवस्था पर चिंतित थीं। प्रियंवदा ने धीरे से अनसूया से कहा—उस राजर्षि के प्रथम दर्शन से लेकर शकुंतला उत्सुक-सी है। कदाचित् इसका यह रोग उसी कारण से हो।

अनसूया ने धीरे से कहा—मेरे हृदय में भी ऐसी ही शंका है। अच्छा, इससे पूछती हूँ।

दोनों सखियों के आग्रह करने पर शकुंतला ने कहा—सखी ! जब से वह तपोवन का रक्षक राजर्षि मुझे दिखाई पड़ा है (नीचा मुँह करके) तब से मन में उसके लिए अभिलाषा होने के कारण मेरी यह अवस्था हो गई है।

यह सुनकर दुष्यंत प्रसन्न हो गये और कहने लगे—जो सुनने योग्य था वह सुन लिया।

शकुंतला ने फिर कहा—तुम्हारी इच्छा हो तो ऐसा करो कि

मैं उस राजर्षि की दया का पात्र हो जाऊँ। नहीं तो मुझे तिलांजलि दे दो।

अब दुष्यंत का सारा संदेह जाता रहा।

शकुंतला की बात सुनकर प्रियंवदा ने धीरे से कहा—
अनसूया ! इसकी प्रेम-पीड़ा बहुत बढ़ गई है। यह विलंब करने में असमर्थ है। यह जिस पर मोहित है, वह पुरु-वंश का भूषण है; इसलिए इसकी अभिलाषा अभिनंदन के योग्य है।

अनसूया ने भी इस विचार का समर्थन करते हुए कहा—
ऐसा कोई उपाय हो जिसके द्वारा हम, गुप्त रूप से, प्रिय सखी का मनोरथ सिद्ध कर दें।

प्रियंवदा—वह राजर्षि, प्रेम-भरी दृष्टि से अभिलाषा सूचित करता हुआ, आजकल जागने से दुबला दिखता है। उसके लिए एक प्रीति-पत्र लिखवाओ। मैं देवता के प्रसाद के बहाने उसे, पुष्पों में छिपाकर, राजा के हाथ में पहुँचा दूँगी।

अनसूया को यह उपाय ठीक जँचा।

उनके कहने से शकुंतला पत्र लिखने को सहमत हो गई।
प्रियंवदा ने उससे कहा—तू अपने विषय में ललित पद्य की रचना कर।

परंतु शकुंतला को और भय हुआ। वह कहने लगी—
अवज्ञा के विचार से मेरा हृदय काँपने लगा है।

शकुंतला का यह वचन सुनकर दुष्यंत ने मन ही मन कहा—तू जिससे अवज्ञा की शंका करती है, वह तो तेरे ही लिए उतावला खड़ा है।

सखियों ने भी शकुंतला के वचन सुनकर कहा—हे अपने गुणों की निंदा करनेवाली सखी ! शरीर को शांति देनेवाली, शरद्-चंद्र की चाँदनी को वस्त्र से कौन हटाता है ?

शकुंतला ने सखियों का कहना मान लिया। वह लिखने के लिए कुछ सोचने लगी। कुछ देर सोचकर शकुंतला ने कहा—
सखी ! पद्य तो मैंने सोच लिया; परंतु लेख-सामग्री पास नहीं है।

सखियों ने उससे शुकोदर के समान सुंदर कमल-पत्र पर नखों द्वारा लिखने को कहा। शकुंतला ने पत्र लिखकर सखियों को पढ़कर सुनाया—

तो मन की जानत नहीं अहो मात वे-पीर ।

पै मो मन को करत नित मनमथ अधिक अधीर ॥

इसी समय दुष्यंत ने सहसा प्रकट होकर कहा—

केवल तोहिँ तपावही मदन अहो सुकुमारि ।

भस्म करत पै मो हियो तू चित्त देख विचारि ॥

राजा को देखकर सब प्रसन्न हो गईं। उन्होंने उनका स्वागत किया। अनसूया ने राजा से शकुंतला के पास उसी शिला पर विराजने को कहा। राजा वहीं बैठ गये। शकुंतला लजा गई।

प्रियंवदा ने दुष्यंत से कहा—यद्यपि आप दोनों का परस्पर अनुराग प्रत्यक्ष है, तथापि सखी का स्नेह मुझे यह कहने को विवश करता है कि हमारी सखी की यह दशा आपके ही कारण हुई है। इसलिए अनुग्रह कर आपको इसके जीवन की रक्षा करनी चाहिए।

दुष्यंत—मेरी ओर से भी यही प्रार्थना है।

शकुंतला—सखी प्रियंवदा ! अंतःपुर के लिए उत्सुक राजा से ऐसा अनुरोध क्यों करती हो ?

दुष्यंत—हे मेरे हृदय में बसनेवाली ! मैं तो तुम्हारे ही निवेश में हूँ।

अनसूया—राजन् ! हमने सुना है कि राजाओं के अनेक

स्त्रियाँ होती हैं। अतः हमारी सखी का इस प्रकार निर्वाह करना, जिसमें इसे स्वजनों का शोक न हो।

दुष्यंत—मैं अधिक क्या हूँ ? अनेक स्त्रियाँ होने पर भी मेरे लिए प्रतिष्ठा की पात्री दो ही होंगी—एक तो सागर-मेखला पृथिवी और दूसरी तुम्हारी प्रिय सखी।

यह सुनकर दोनों सखियाँ निश्चित होगईं। प्रियंवदा ने अब एक बहाना किया। “भृग-शावक अपनी माता को खोज रहा है; चलो, उसे माता से मिला दें।” ऐसा कहकर दोनों यहाँ से चली गईं।

शकुंतला कहती ही रही कि सखियो ! मैं असहाय रह गई हूँ, तुममें से एक तो यहाँ रहे; परंतु दोनों ने मुस्कराकर कहा—पृथ्वी के रत्नक राजा तो तुम्हारे पास ही हैं।

सखियों को जाते देख शकुंतला भी जाने को उठी, किंतु राजा ने उसे बलपूर्वक लौटा लिया।

शकुंतला—पुरुराज ! विनय की रक्षा कीजिए। प्रेम-विह्वल होने पर भी मैं अपनी स्वामिनी नहीं हूँ।

दुष्यंत—भीरु ! यह जानकर कि धर्मज्ञ भगवान् कुलपति दोष न देंगे, तुम गुरुजनों का भय मत करो। सुना है कि राजर्षियों की अनेक कन्याओं का, जिनका गंधर्व-विवाह हुआ है, उनके माता-पिता उनका अभिनंदन कर चुके हैं।

शकुंतला—मुझे छोड़ दीजिए। सखियाँ से अनुमति ले लूँ।

राजा—अच्छा, छोड़ दूँगा।

इस प्रकार वार्त्तालाप हो ही रहा था कि बाहर से यह सुनाई दिया—चकवी ! सहचर से बिदा माँग ले रात आ गई।

शकुंतला ने इन शब्दों से सखी का अभिप्राय समझ लिया वह राजा से कहने लगी—मेरे शरीर का वृत्तांत जानने के

के लिए माता गौतमी निःसंदेह इधर आ रही हैं। आप पेड़ों की ओट में हो जायँ।

राजा ने ऐसा ही किया। इतने में हाथ में कमंडलु लिये गौतमी और दोनों सखियाँ वहाँ आ गईं। गौतमी ने शकुंतला से पूछा—बेटी ! क्या तुम्हारे अंगों का ताप कम हो गया ?

शकुंतला—माता ! अब मुझे शांति है।

गौतमी ने अब कुश से शकुंतला पर शांति-जल छिड़क दिया और उससे कुटी में चलने को कहा।

शकुंतला उस समय जाना तो नहीं चाहती थी, परंतु विवश होकर, संतप्त हृदय से, अपनी सखियों के साथ चली गई। चलते समय उसने लता-कुंज को पुकारकर कहा—हे संताप के हरनेवाले ! फिर भी दर्शन के लिए मैं तुमसे आज्ञा लेती हूँ।

दुष्यंत अब गहरी साँस लेते हुए पहले स्थान पर खड़े हो गये। वे सोचने लगे कि अब कहाँ जाऊँ ? अथवा यहीं लता-कुंज में मुहूर्त्त-भर ठहर जाता हूँ।

परंतु एक ओर से शब्द हुआ कि सायंकाल के सवन-कर्म में ऋषियों के प्रवृत्त होने पर वेदी को राजसों ने चारों ओर से घेर लिया है।—यह सुनकर तपस्वियों का भय दूर करने के लिए दुष्यंत भी चले गये।

—* ४ *—

राजा दुष्यंत के आश्रम से चले जाने के बाद अनसूया और प्रियंवदा फूल चुन रही थीं। अनसूया ने कहा—सखी प्रियंवदा ! गांधर्व-विवाह की विधि से कल्याण को प्राप्त हुई शकुंतला को सुयोग्य पति मिल जाने से मेरा हृदय शांत हो गया है। तब भी इतनी चिंता अवश्य है कि आज ऋषियों से विदा होकर वह

राजर्षि जब अपने अंतःपुर में पहुँचेगा तब यहाँ के वृत्तांत को स्मरण रखेगा या नहीं।

प्रियंवदा—ऐसी विशेष आकृतियाँ गुण की विरोधी नहीं होतीं। किंतु अब इस वृत्तांत को सुनकर पिताजी क्या कहेंगे ?

अनसूया—मैं तो समझती हूँ कि उनकी अनुमति मिल जायगी, क्योंकि सिद्धांत यही है कि “गुणवान् को कन्या दी जानी चाहिए।” यदि दैव ही उस संकल्प को पूरा कर दे तो गुरुजन सहज ही कृतार्थ हो जाते हैं।

फूल चुनती हुई ये दोनों इस प्रकार बातचीत कर रही थीं कि सहसा सुनाई पड़ा—अरे ! यह मैं हूँ।

अनसूया—सखी ! यह किसी अतिथि का-सा शब्द है।

प्रियंवदा—शकुंतला कुटी के पास है सही, परंतु आज उसका चित्त ठिकाने नहीं है।

इसलिए वे दोनों कुटी की ओर चल पड़ीं। परंतु इसी समय फिर सुनाई पड़ा—“अरी अतिथि का निरादर करनेवाली ! अनन्य मन से जिसका चिंतन करती हुई तू मुझ तपस्वी का स्वागत नहीं करती वह, स्मरण कराने पर भी, तुझे वैसे ही स्मरण नहीं करेगा जैसे उन्मत्त पुरुष पहले कहे हुए अपने प्रलाप के वाक्यों को स्मरण नहीं कर सकता।”

यह सुनकर प्रियंवदा ने कहा—हाय ! अनर्थ हो गया। किसी का सत्कार न करके शून्य-हृदय शकुंतला ने अपराध किया है।

आगे बढ़कर देखा तो शाप देकर महर्षि दुर्वासा शीघ्रता से जा रहे थे। प्रियंवदा, उनके सत्कार के लिए, अर्घ्य आदि लेने चली गई। अनसूया ने आगे बढ़कर उनसे प्रार्थना की। उसके अधिक अनुनय-विनय करने पर महर्षि दुर्वासा कुछ शांत हुए।

अनसूया ने आकर कहा—सखी ! उन्हें कुछ शांत तो किया है, परंतु वे लौटे नहीं। वे यह कहते चले गये कि “मेरा वचन मिथ्या नहीं होता; किंतु अभिज्ञान (निशानी) के देखने से शाप हट जायगा।”

प्रियंवदा—अच्छा, धीरज के लिए यही ठीक है। उस राजर्षि ने चलते समय अपने नाम से अंकित अँगूठी स्मृति के लिए पहना दी थी। उससे शकुंतला का काम चल जायगा।

प्रियंवदा और अनसूया ने शकुंतला को इस शाप की सूचना देना उचित न समझा।

प्रियंवदा—चमेली को गरम जल से सींचने का साहस कौन कर सकता है ?

कुछ दिनों के बाद काश्यप मुनि आश्रम में लौट आये। अनसूया सोचने लगी कि क्या दुर्वासा के शाप से ही इतना विलंब हो रहा है ? अन्यथा उस राजर्षि ने इतना धीरज देकर भी अब तक पत्र क्यों नहीं भेजा ? सखी दोष की भागी होगी, इसलिए प्रवास से लौटे हुए पिता कण्व से—दुष्यंत से विवाही गई—गर्भवती शकुंतला का वृत्तांत कहने में असमर्थ हूँ। अब क्या करना चाहिए ?

अनसूया इस प्रकार चिंतित थी कि प्रसन्न-वदन प्रियंवदा वहाँ आ गई। वह कहने लगी—सखी ! जल्दी करो। पिता कण्व ने आज शकुंतला को तपस्त्रियों के साथ, दुष्यंत के पास भेजने के लिए कहा है।

अनसूया—पिता ने यह वृत्तांत कैसे जाना ?

प्रियंवदा—जब वे यज्ञ-स्थान के पास पहुँचे तब आकाश-बाणी हुई कि शकुंतला दुष्यंत द्वारा गर्भवती है।

“आज ही शकुंतला भेजी जायगी” यह शुभ समाचार

सुनकर अनसूया प्रसन्न तो हुई, किंतु साथ ही सखी की बिदाई के कारण उसके दुःख की मात्रा भी कम न थी। अब दोनों सखियाँ, मंगल-द्रव्य इकट्ठे कर शकुंतला के पास गईं।

इसी समय महर्षि कण्व का शब्द सुनाई दिया। वे गौतमी से कह रहे थे कि शार्गंग और शारद्वत (शिष्यों) से शकुंतला को पहुँचा आने के लिए कह दो।

प्रियंवदा और अनसूया ने देखा कि, सूर्य का उदय होते ही शकुंतला स्नान किये बैठी है और स्वस्ति-वाचन करनेवाले तपस्वी, उसके कल्याण के लिए, आशीर्वाद दे रहे हैं।

दोनों सखियाँ जाकर शकुंतला का शृंगार करने लगीं।

“सखियों द्वारा किया हुआ यह शृंगार अब मुझे दुर्लभ हो जायगा” इस विचार से शकुंतला की आँखों में आँसू भर आये।

इस शुभ अवसर पर रोने से उसे सखियों ने रोका।

महर्षि कण्व के तपोबल द्वारा पेड़ों से स्वयं प्राप्त रेशमी वस्त्र तथा आभूषण शकुंतला को पहनाये गये।

नित्य-कर्म से निपटकर महर्षि कण्व भी शकुंतला के पास आ गये। शकुंतला आज पति-गृह को जायगी, यह सोचकर उनका हृदय दुखी हो रहा था। शकुंतला की बिदाई के कारण उनका हृदय व्याकुल था। आँसुओं को रोकने से गला भारी हो रहा था। चिंता के कारण इंद्रियाँ जड़ हो रही थीं। उन्हें आश्चर्य था कि जब मुक्त वनवासी को स्नेह से इतनी वियोग-पीड़ा हो रही है, तो अपनी कन्याओं के पहले वियोग से पीड़ित गृहस्थों का क्या कहना ?

शकुंतला ने लजाते हुए उठकर उन्हें प्रणाम किया। कण्व ने आशीर्वाद दिया—पुत्री ! ययाति को शर्मिष्ठा के समान तू

स्वामी को प्रिय हो। तेरे वैसा ही चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न हो जैसा शर्मिष्ठा के पुरु उत्पन्न हुआ था।

महर्षि कण्व ने उसे आहुति दी हुई, आग की प्रदक्षिणा करने को कहा। सर्व ने प्रदक्षिणा की। तब महर्षि कण्व ने शार्गर्व आदि अपने दो शिष्यों को बुलाकर शकुंतला को मार्ग दिखाने का आदेश दिया।

शार्गर्व ने शकुंतला को मार्ग दिखाया। सब चल पड़े। तब कण्व ने तपोवन के पेड़ों को पुकारकर कहा—हे तपोवन के पेड़ो ! तुम्हें सींचे बिना जो जल नहीं पीती थी, आभूषणों की प्रेमी होने पर भी—तुम्हारे प्रति स्नेह से—जो तुम्हारी कोंपलें नहीं तोड़ती थी और तुम्हारे पहली बार खिलने के समय जो प्रसन्न होती थी, वही शकुंतला आज पति-गृह को जा रही है। तुम सब इसे आज्ञा दो।

इसी समय कोयल बोल उठी। महर्षि कण्व ने समझा, पेड़, कोयल के मधुर वचन द्वारा, शकुंतला को पति-गृह जाने की आज्ञा दे रहे हैं।

इसके बाद फिर शब्द सुनाई दिया—“तुम्हारे मार्ग कल्याणमय हों।” यह वन-देवियों का आशीर्वाद था। शकुंतला ने सिर झुकाकर आशीर्वाद ग्रहण किया। फिर सखी प्रियंवदा से, धीरे से, कहा—स्वामी के दर्शन के लिए उत्सुक होने पर भी आश्रम को छोड़ते समय मेरे पैर, दुःख के मारे, आगे नहीं बढ़ते।

प्रियंवदा—सखी ! चलते समय तपोवन के विरह से कुछ तुम्हीं कातर नहीं हो, तपोवन की भी वैसी ही दशा है। मृगों ने मैह से वृण के कोर गिरा दिये हैं, मोरों ने नाचना बंद कर दिया है और लताओं ने पत्ते गिराकर अस्सू-से बहाये हैं।

शकुंतला अत्र वनज्योत्स्ना लता से बिदा लेने गई। इस पर उसका बहन का-सा स्नेह था। पास जाकर कहने लगी—“हे वनज्योत्स्ना ! आम से लिपटी रहने पर भी तू, इधर बढ़ी हुई शाखा-रूपी भुजाओं से, मुझे गले लगा। आज मैं तुझसे दूर हो जाऊँगी।” फिर सखियों से कहा—सखियो ! इसे मैं तुम्हारे हाथ सौंपती हूँ।

दोनों सखियों ने आँसू गिराते हुए कहा—और हमें किसे सौंप रही हो ?

यह सुनकर महर्षि कण्व ने कहा—अनसूया ! रोओ मत। शकुंतला को तुम्हीं धीरज बँधाओ।

शकुंतला—पिता जी ! कुटी के समीप रहनेवाली मृगी के सकुशल प्रसव की मुझे सूचना भेजिएगा।

इस समय चलते-चलते एक मृग ने पीछे से आकर शकुंतला का आँचल खींच लिया। शकुंतला ने घूमकर देखा तो वही मृग था, जिसे उसने स्वयं खिला-पिलाकर बड़ा किया था। रोते हुए शकुंतला ने उसे लौटाया।

महर्षि कण्व ने शकुंतला से शांत हो जाने को कहा; क्योंकि रोने से आँखों में आँसू आ जाने के कारण ऊबड़खाबड़ मार्ग पर चलना कठिन था।

इतने में सब एक सरोवर के पास पहुँच गये। शार्ङ्गरव ने ऋषि से कहा—भगवन् ! प्रिय जन को जलाशय तक ही छोड़ने जाना चाहिए। सो यह सरोवर है। अब आप हमें संदेश देकर लौट जायँ।

सब लोग बड़ के पेड़ की छाया में बैठ गये। महर्षि कण्व ने राजा दुष्यंत के लिए संदेश दिया—“हे राजन् ! हम तपस्वियों को, अपने उच्च कुल को, तथा तुम्हारे लिए इसकी आत्म-प्रेरित

स्नेह-प्रवृत्ति को अच्छी तरह विचारकर तुम सब स्त्रियों में इसे समान गौरव से देखना । इससे अधिक भाग्य के अधीन है; कन्या के स्वजनों को उसे कहना उचित नहीं ।”

शिष्यों से यह संदेश कहकर महर्षि ने शकुंतला से कहा—
पुत्री ! अब तुम्हें कुछ शिक्षा देनी है । तुम यहाँ से पतिगृह को पहुँचकर—

शुश्रूषा गुरुजन की कीजो, सखीभाव सौतिन में लीजो ।
भरता यदपि करे अपमाना, कुपित होई गहियो जनि माना ॥
मृदु-भाषिनि दासिन सँग रहियो, बड़े भागि पै गर्व न लहियो ।
या विधि तिय गेहिनि पद पावैं, उलटी चलि कुल-दोष कहावैं ॥
गौतमी ने भी कहा—बेटी ! यह कुल-बधुओं के लिए उपदेश है । इसका सदैव ध्यान रखना ।

कण्व ने जब शकुंतला से कहा कि मेरे और अपनी सखियों के गले लगो, तब शकुंतला का जी भर आया । वह रोने लगी । कण्व ने उसे धीरज दिया । शकुंतला उनके चरणों पर गिर पड़ी ।

कण्व ने आशीर्वाद दिया—तेरी इच्छा पूर्ण हो ।

शकुंतला ने अब सखियों से गले लगने को कहा ।

गले लग चुकने पर उन्होंने शकुंतला से कहा—सखि ! यदि वह राजा तुम्हें पहचानने में विलंब करें तो उनके नाम की यह अँगूठी उन्हें दिखा देना ।

यह सुनकर शकुंतला काँप उठी । परंतु दोनों सखियों ने कहा—डरो नहीं । अति स्नेह में दुःख की आशंका होती ही है ।

अधिक विलंब हो जाने से शार्ङ्गरव ने कहा—अब दोपहर बीत गई है । जल्दी करो ।

शकुंतला ने पिता के गले लगकर, आश्रम की ओर देखते हुए कहा—तात ! मैं तपोवन को फिर कब देखूँगी ?

कण्व—जब चिरकाल तक पति के साथ रहकर दुष्यंत के पुत्र का विवाह कर लेगी तब, स्वामी से राज्य और कुटुंब का भार पुत्र को मिल जाने पर, पति के साथ इस शांत आश्रम में तू फिर पैर रक्खेगी ।

फिर सबने मिलकर शकुंतला को विदा किया । जब वह पेड़ों की ओट में छिप गई, तब सब लौट आये । सबके हृदय शोक में डूब रहे थे । कण्व ने “पुत्री पराया धन है” कहकर हृदय को धीरज दिया ।

—* ५ *—

महाराज दुष्यंत अभी राज-काज से निपटकर विश्राम करने गये ही थे कि कंचुकी वातायन ने आकर निवेदन किया—महाराज की जय हो ! हिमालय की तराई के वन में रहनेवाले तपस्वी लोग काश्यप का संदेश लेकर, आये हैं । उनके साथ स्त्रियाँ भी हैं ।

दुष्यंत ने विस्मित होकर कहा—क्या ? काश्यप का संदेश लेकर स्त्रियों सहित तपस्वी ? अच्छा, तो मेरी ओर से सोमरात पुरोहित से कहो कि आश्रमवासियों का शास्त्र-विधि से सत्कार कर उन्हें स्वयं ही मेरे पास ले आवें । मैं भी इन तपस्वियों के दर्शन योग्य स्थान में प्रतीक्षा करता हूँ ।

कंचुकी वातायन के चले जाने पर महाराज दुष्यंत अग्निशाला की ओर चले गये और वहाँ तुरंत की धुली हुई छत पर बैठ गये । वे सोचने लगे कि भगवान् काश्यप ने तपस्वियों को मेरे पास क्यों भेजा है ?

इतने में स्त्रियों सहित कण्व के शिष्य, वहाँ आ गये । उनके आगे-आगे कंचुकी वातायन और पुरोहित सोमरात थे ।

उस समय शकुंतला ने कहा—हाय ! मेरी दाहिनी आँख क्यों फड़कती है !

गौतमी—पुत्री ! अमंगल नष्ट हो । तेरे स्वामी के कुल-देवता तुझ पर सुख की वर्षा करें ।

परंतु शकुंतला जैसे-जैसे आगे बढ़ती थी, उसका हृदय काँपता जाता था ।

अभिवादन, आशीर्वाद तथा कुशल-प्रश्न के अनंतर शागँरव ने कहा—राजन् ! महर्षि ने कुशल-प्रश्न के पश्चात् यह कहा है कि तुमने परस्पर प्रतिज्ञा कर मेरी इस कन्या से विवाह किया है । तुम दोनों के इस विवाह को मैंने प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया; क्योंकि तुम प्रशंसनीय पुरुषों में प्रथम माने गये हो और शकुंतला सत्कर्म की मूर्ति है । समान गुणवाले वर और वधू को मिलाकर प्रजापति चिरकाल की निंदा से बच गया । सो अब इस गर्भवती को, अपने साथ धर्माचरण के लिए, स्वीकार करो ।

फिर गौतमी ने कहा—राजन् ! मैं कुछ कहना तो चाहती हूँ, पर कहूँ क्या ? क्योंकि न तो इसने गुरुजनों की अपेक्षा की है, और न तुमने इसके बंधुओं से पूछा है ।

यह सब सुनकर दुष्यंत ने कहा—यह क्या कहा जा रहा है ?

शकुंतला को ये शब्द आग-से प्रतीत हुए ।

शागँरव—हैं ! यह क्या ?

दुष्यंत—क्या मैंने इसके साथ विवाह किया था ?

यह सुनकर शकुंतला ने दुःख से मन-ही-मन कहा—हृदय ! तेरी शंका ठीक ही थी ।

शागँरव ने फिर कहा—क्या पहले किये गये कार्य के लिए खीझ होने से राजा को धर्म से विमुख होना चाहिए ?

दुष्यंत—इस असत्य कल्पना का प्रसंग कहाँ से आया ?

शार्ङ्गरव क्रोध से बोला—ऐश्वर्य से उन्मत्त पुरुषों में प्रायः ऐसे विकार भरे होते हैं।

अब गौतमी ने शकुंतला से कहा—पुत्री ! लज्जा मत कर। तेरा धूँधट हटाती हूँ, जिससे तेरा पति तुझे पहचान ले।

परंतु उसका मुँह देखकर भी दुष्यंत पहचान न सके। थोड़ी देर तक देखकर कहने लगे—विचार करने पर भी मुझे स्मरण नहीं आता कि इसे मैंने कब स्वीकार किया था। अब इस गर्भवती को कैसे ग्रहण करूँ ?

शकुंतला ने दुखी होकर मन में कहा—हाय ! स्वामी को विवाह में ही संदेह है। अब मेरी बढ़ी हुई आशा कहाँ गई ?

राजा का उत्तर सुनते ही शार्ङ्गरव बोल उठा—न ग्रहण करो। बलपूर्वक स्पर्श की गई कन्या का अनुमोदन करनेवाले मुनि का तिरस्कार तुम्हें करना ही चाहिए। वह चुराई गई अपनी वस्तु चोर को दान कर रहे हैं।

शारद्वत—शार्ङ्गरव ! बस चुप रहो।—शकुंतला ! हमें जो कहना था सो कह दिया। महाराज जब ऐसा कहते हैं तब तुम्हीं इन्हें उत्तर दो।

शकुंतला ने सोचा कि पहले का अनुराग जब इस अवस्था में आ गया है तब स्मरण कराने से क्या लाभ ? अथवा मुझे तो अपनी आत्मा की शुद्धि का प्रयत्न करना ही चाहिए। फिर प्रकट में कहा—हे पौरव ! पहले तपोवन में स्वभाव से सरल हृदयवाली मुझको प्रतिज्ञाओं से ठगा और अब, सब कुछ जानते हुए भी, ऐसे वचन कहकर अस्वीकार करना तुम्हारे योग्य ही है !

राजा ने कानों पर हाथ रखकर कहा—हरे ! हरे ! मुझे पातकी बनाने के लिए, और अपने कुल को भी कलंकित करने

के लिए, तुम ऐसा यत्न कर रही हो, जैसे उमड़े हुए जल-प्रवाह से सिंधु नदी तट के वृक्षों को गिराती है और अपने निर्मल जल को भी गँदला करती है।

शकुंतला—अच्छा, पर-स्त्री की आशंका को तुम्हारे ही अभिज्ञान (निशानी) से हटाती हूँ।

दुष्यंत—यह अत्युत्तम है।

शकुंतला ने अँगूली देखी तो वहाँ अँगूठी का पता न था। उसने दुखी होकर गौतमी की ओर देखा।

गौतम—शक्रावतार के भीतर शची-तीर्थ के जल को प्रणाम करते समय अँगूठी गिर गई होगी।

दुष्यंत ने मुस्कराकर कहा—यह स्त्री की तुरंत सूझ कहलाती है।

अब शकुंतला समझ गई कि यह सब भाग्य का खेल है। उसने अब विविध प्रकार से तपोवन के कुछ दृश्यों की स्मृति करानी चाही। परंतु सब निष्फल था। राजा को कुछ भी स्मरण न आया।

दुष्यंत—अपना कार्य साधनेवाली ऐसी स्त्रियों के मधुर मिथ्या वचनों से विषयी लोग ही आकर्षित हो जाते हैं।

ये अपशब्द सुनकर गौतमी ने कहा—महाभाग ! ऐसा कहना तुम्हें उचित नहीं। यह तपोवन में पली हुई कन्या छल से सर्वथा अनभिज्ञ है।

दुष्यंत—वृद्धे ! मनुष्यों से भिन्न प्राणियों में भी, बिना ही शिक्षा पाये, स्त्री-जाति की चतुराई देखी जाती है। फिर बुद्धिमती स्त्रियों की क्या बात ? कोयल उड़ने योग्य न होने तक अपने बच्चों का पालन-पोषण दूसरे पक्षियों से कराती है।

अब तो शकुंतला को असीम क्रोध आ गया। वह कहने

लगी—अनार्य ! तुम अपने जैसा सबको समझते हो ! तुम धर्म का बाहरी वेष धारण करनेवाले तिनके से ठके हुए कूप की भाँति हो । भला तुम्हारा अनुकरण अब कौन करेगा ?

अब तो दुष्यंत को भी संदेह हुआ कि यह क्रोध निश्छल जान पड़ता है । परंतु वे ऐसा कह नहीं सके ।

दुष्यंत—दुष्यंत का चरित्र प्रसिद्ध है । उसकी प्रजा में भी यह बात नहीं दीखती ।

शकुंतला ने फिर क्रोध से कहा—पुरुवंश का विश्वास करके, मुख में मधु और हृदय में विषवाले के हाथों पड़कर, मैं यहाँ कुलटा कहलाई हूँ !

अब शकुंतला आँचल से मुँह ढककर रोने लगी । शार्गरव ने भी उसे डाटकर कहा—बिना सोचे-समझे किया हुआ चपलता का काम इसी प्रकार दुखी करता है । अतः भली प्रकार परीक्षा करके ही किसी से गुप्त प्रेम करना चाहिए । मित्रता अज्ञात हृदयों में शत्रुता बन जाती है ।

दुष्यंत—क्या इसका विश्वास करके ही हमें अपवाद लगाकर दुखी करते हो ?

शार्गरव—इसका उत्तर सुन लो । (जन्म-काल से ही जो छल में अशिक्षित है उसका वचन तो प्रामाणिक नहीं, और जिन्होंने दूसरों को छलना विद्या की भाँति पढ़ा है, उनके वचन विश्वसनीय हैं ।)

शारद्वत—शार्गरव ! इन बातों से क्या लाभ ? चलो, हमने गुरु जी की आज्ञा का पालन कर दिया ।

फिर राजा की ओर देखकर उसने कहा—राजन् ! यह तुम्हारी स्त्री है; चाहे इसे रक्खो, चाहे निकाल दो । पति का स्त्री पर सब प्रकार का अधिकार है ।

अब गौतमी और दोनों तपस्वी, शकुंतला को वहीं छोड़कर, चले गये ।

शकुंतला ने कहा—इस कपटी ने मुझे ठग लिया । क्या तुम भी मुझे छोड़े जाते हो ?

शकुंतला उनके पीछे-पीछे जाने लगी । उसे देखकर गौतमी ठहर गई और शार्गरव से बोली—शकुंतला तो हमारे पीछे रोती चली आती है । पति से त्यागी हुई मेरी पुत्री अब क्या करे ?

शार्गरव ने क्रोध से लौटकर कहा—आः, दुष्टे ! स्वतंत्र हुआ चाहती है ?

शकुंतला भयभीत होकर काँपने लगी ।

शार्गरव—यदि तू सी ही है जैसा यह राजा कहता है तो तुम कुलटा से हमें क्या काम ? और यदि तू अपने पातिव्रत्य को जानती है तो पति के घर में रहकर सबकी सेवा करना भी अच्छा है । तू यहीं रह, हम जाते हैं ।

दुष्यंत—इसे क्यों धोखा देकर जाते हो ?

शार्गरव—राजन् ! किसी अन्य में आसक्ति होने से यदि पिछले वृत्तांत को भूल गये हो तो, हे धर्म-भीरु ! अब स्त्री-त्याग का फल भोगोगे ?

दुष्यंत—इसका निर्णय आप ही कर दीजिए । या तो मैं मूढ़ हूँ, अथवा यह मिथ्या कहती है । मैं इस संशय में स्त्री-त्यागी बनूँ अथवा पर-स्त्री के स्पर्श के पाप का भागी ?

पुरोहित अपने आप कह उठा—बालक का जन्म होने तक यह स्त्री हमारे घर ठहरे । मैं यह इसलिए कहता हूँ कि ज्योतिषियों ने पहले बताया है कि आपको चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त होगा । वह—मुनि का नाती—यदि इन लक्ष्णों से युक्त होगा तो इसे प्रसन्न करके अंतःपुर

में रख लेना, अन्यथा इसके पिता के पास पहुँचवा देना निश्चित है।

दुष्यंत ने यह सम्मति मान ली। तब पुरोहित ने शकुंतला से अपने पीछे आने को कहा। शकुंतला रोती हुई, पुरोहित और तपस्वियों के साथ, चली गई।

पुरोहित ने तुरंत ही लौटकर महाराज से कहा—राजन् ! आश्चर्य है ! कण्व के शिष्यों के लौट जाने पर अपने भाग्य की निंदा करती हुई वह कन्या छाती पीट-पीटकर रोने लगी। इतने में स्त्री के आकार की एक ज्योति उसे उठाकर अप्सरा-तीर्थ की ओर ले गई।

यह वृत्तांत सुनकर सब विस्मित हो गये। व्याकुल हुए राजा अपने शयन-गृह को चले गये। वे सोचते थे कि यद्यपि मुझे इस लौटाई हुई मुनि-कन्या के पाणि-ग्रहण का स्मरण नहीं है, तथापि मेरा हृदय मुझे बलपूर्वक पीड़ित करता हुआ मानों उसका विश्वास दिला रहा है।

—* ६ *

राजा दुष्यंत ने अपने साले को नगर-रक्षक नियुक्त किया था। एक दिन उस नगर-रक्षक ने एक धीवर को पकड़ लिया; क्योंकि वह राजा के नाम की रत्न-जड़ी अँगूठी बेच रहा था। जानुक और सूचक राजपुरुषों ने उसे पीटते हुए पूछा—अरे चोर ! तूने यह अँगूठी, जिसमें मणियों से महाराज का नाम अंकित है, कहाँ पाई ?

धीवर ने डरते हुए कहा—आप प्रसन्न हों ! मैं ऐसा काम करनेवाला नहीं हूँ।

जानुक—तो क्या तू कोई श्रेष्ठ ब्राह्मण है जो महाराज ने तुम्हें यह दान में दी है ?

धीवर—मैं शक्रावतार तीर्थ का रहनेवाला धीवर हूँ; मछलियाँ फँसाकर अपना कुटुंब पालता हूँ।

नगर-रक्षक ने मुस्कराकर कहा—यह उत्तम जीविका है।

धीवर—प्रभु ! ऐसा न कहिए। सुना है, जातीय व्यवसाय निंदित हो तो भी उसे छोड़ना न चाहिए। दयालु श्रोत्रिय (वैदिक यज्ञ करनेवाला) भी, पशु-हिंसा के कारण, भयानक ही कहलाता है।

नगर-रक्षक—अच्छा, तब क्या हुआ ?

धीवर—एक दिन एक रोहू मछली को काटने पर मुझे उसके पेट में जगमगाते रत्नवाली यह अँगूठी मिली। इसके बाद मैं इसे बेचने को दिखा ही रहा था कि आपने मुझे पकड़ लिया।

नगर-रक्षक उस धीवर को राज-भवन में पकड़ लाया। उसने सब वृत्तांत कहकर इस विषय में राजा से आज्ञा चाही। परंतु राजा के पास से लौटने पर और ही बात हो गई। नगर-रक्षक ने धीवर को छोड़ दिया। उसका अँगूठी पाना सर्वथा ठीक था। उसे अँगूठी का पूरा मोल तो मिला ही, ऊपर से पुरस्कार भी मिला।

इतना धन देखकर राजपुरुष सूचक ने कहा—फाँसी से उतारकर हाथी पर चढ़ाया गया है।

जानुक—वह अँगूठी अवश्य अधिक मोल की होगी।

नगर-रक्षक—राजा ने मूल्य के कारण उस अँगूठी का अधिक मान नहीं किया। उसके देखने से उन्हें किसी प्रिय-जन का स्मरण आ गया, जिससे सहज गंभीर होने पर भी क्षण भर उनकी आँखें डबडबाने लगीं।

राजपुरुष उस धीवर के भाग्य पर ईर्ष्या करने लगे। धीवर ने अपनी इच्छा से आधा धन नगर-रक्षक को दे दिया। इससे

नगर-रक्षक उस पर बहुत प्रसन्न हुआ और उसे साथ लेकर वह मनोविनोद के लिए मध्य-पान के लिए कहीं चला गया ।

कुछ समय के बाद सानुमती नाम की अप्सरा आकाशमार्ग से विमान में वहाँ आई । वह अप्सरा-तीर्थ के पास, सिद्ध पुरुषों के स्नान के समय तक, अपनी पारी से निपट चुकी थी और अब राजर्षि दुष्यंत की दशा देखने आई थी । मेनका के संबंध से शकुंतला उसकी आत्मीय हो गई थी । राज-भवन में वसंतोत्सव के समय भी उत्सव का आरंभ न देखकर उसे आश्चर्य हुआ । वह तिरस्करिणी विद्या द्वारा छिपकर इधर-उधर से इसके कारण का पता लगाने लगी । अंत में उसे विदित हो गया कि अँगूठी को देखकर, राजा को शकुंतला की स्मृति आ गई है । इसी से प्रबल उद्वेग के कारण उन्मत्त हुए राजा ने वसंतोत्सव रुकवा दिया है ।

सानुमती ने जब राजा को माढव्य (विदूषक) और वेत्रवती (दासी) के साथ उद्यान में आते देखा तब वह अदृश्य ही रहकर उनका वार्त्तालाप सुनने लगी ।

दुष्यंत चिंताग्रस्त होकर धीरे-धीरे चलते हुए कह रहे थे—यह पापी हृदय पहले मृग-नयनी शकुंतला के स्मरण कराने पर भी सोता रहा । अब पश्चात्ताप का दुख सहने को जागा है ।

यह सुनकर सानुमती ने कहा—ओह ! तपस्विनी शकुंतला भाग्यशालिनी है ।

(राजा को चिंतित देख माढव्य ने सोचा, शकुंतला-रूपी व्याधि से ग्रस्त हुए राजा की न जाने कैसे चिकित्सा होगी ।)

राजा ने इस समय दासी के द्वारा मंत्री पिशुन को कहला भेजा—विलंब से उठने के कारण मैं आज धर्मासन पर बैठने में असमर्थ हूँ । आपने नगर का जो कार्य देखा हो, वह पत्र में लिखकर मेरे पास भेज दीजिए ।

दासी चली गई। अब एकांत हो गया। राजा ने पूछा—
मित्र ! अब मैं कहाँ बैठकर मन बहलाऊँ ? माढव्य ने स्मरण
कराया—राजन् ! आपने विश्वसनीय चतुरिका दासी को आज्ञा
दी है कि “मैं इस समय माधवी-मंडप में रहूँगा। तुम मेरे हाथ से
अंकित शकुंतला का चित्र ले आओ।”

दुष्यंत को भी स्मरण आ गया। दोनों लता-कुंज में चले गये
और वहाँ मणिशिला पर बैठकर वार्त्तालाप करने लगे। चित्र देखने
की अभिलाषा से सानुमती भी अदृश्य रूप से पास ही बैठ गई।

दुष्यंत ने गहरी साँस लेकर कहा—मित्र ! मुझे शकुंतला का
पहले का वृत्तांत सब स्मरण आ गया। मैंने तुमसे कहा था; पर
अस्वीकार करने के समय तुम मेरे पास नहीं थे। किंतु तुमने
पहले भी कभी उसका नाम नहीं लिया। क्या मेरी भाँति तुम भी
उसे भूल गये थे ?

माढव्य—मैं भूला नहीं थी। किंतु सब बातें कहकर अंत में
आपने यह भी तो कहा था कि “यह हँसी की बात है, इसे सच
न मान लेना।” मुझ मूर्ख ने भी आपकी बात को सच समझ
लिया। होनी ही ऐसी थी।

अस्वीकार करने से व्याकुल हुई शकुंतला की अवस्था का स्मरण
कर दुष्यंत बहुत ही दुखी हुए। वे कहने लगे—मित्र ! मैं निरुपाय
हो गया हूँ।

सानुमती ने मन-ही-मन कहा—ओह ! अपने कार्य में इतनी
तत्परता ! राजा के संताप से मुझे प्रसन्नता हो रही है।

माढव्य—मैं समझता हूँ, उसे कोई देवता उठा ले गया।

दुष्यंत—मित्र ! उस पतिव्रता को छूने का साहस कौन करेगा ?
मैंने सुना है कि उसकी माता मेनका है। सो उसे मेनका की
सखियाँ ही ले गई होंगी।

माढव्य—ऐसा है तो धीरज रक्खो। समय आने पर इससे मिलन होगा; क्योंकि पति के वियोग से दुखी पुत्री का दुःख माता-पिता चिरकाल तक नहीं देख सकते।

किंतु राजा को किसी प्रकार धीरज न होता था। कभी वे अपनी उस अँगूठी को धिक्कारते थे, कभी अपने ही को।

इसी समय शकुंतला का हस्तलिखित चित्र लेकर चतुरिका आ गई। चित्र बहुत बढ़िया बना था। उस चित्रपट में पीछे और दृश्य बनाने के अभिप्राय से राजा ने चतुरिका को रंग का डिब्बा और कूची लाने को भेजा था।

चित्रांकित शकुंतला को देखकर राजा पागल-से हो गये। उन्हें शकुंतला सहित सब दृश्य प्रत्यक्ष-से दिखाई देने लगे। प्रत्येक दृश्य का ध्यान करके चित्र में उसकी पूर्ति का विचार करते हुए वे उस चित्र के द्वारा सजीव शकुंतला के दर्शन का अनुभव करने लगे। माढव्य ने जब स्मरण कराया कि यह तो चित्र ही है, तब उन्हें भारी शोक हुआ। उनके नेत्र सजल हो गये। वे कहने लगे—मुझे तन्मय हृदय होने के कारण उसमें शकुंतला के साक्षात् दर्शन का-सा सुख मिल रहा था; सो चित्र का स्मरण कराकर तुमने मेरी शकुंतला को फिर चित्र में बदल दिया।

यह सुनकर सानुमती ने कहा कि भूत और वर्तमान का विरोधी यह विरह-मार्ग अपूर्व है।

माढव्य—राजन्! आपने यह अँगूठी उसके हाथ में किस लिए दी थी।

दुष्यंत—जब मैं आश्रम से अपने नगर के लिए चलने को था, तब आँखों में आँसू भरकर शकुंतला ने कहा—आप मुझे कितने समय में सूचना भेजेंगे? मैंने तब यह अँगूठी उसे पहना

कर उत्तर दिया कि प्रतिदिन इस अँगूठी पर मेरे नाम का एक अक्षर गिन लिया करना, और अभी नाम के अंतिम अक्षर तक तुम पहुँची न होगी कि मेरा दूत तुम्हें रनवास में लिवा लाने के लिए आ जायगा। पर ऐसा करना मैं मोह-वश भूल गया।

सानुमती—बड़ा बढ़िया प्रबंध भाग्य ने बिगाड़ दिया।

राजा—मित्र ! मैं इस दुःख को निरंतर कैसे सहन करूँ ? मुझे नींद नहीं आती, अतः जागते रहने से सपने में उसका मिलना दुर्लभ है और आँसू उसे चित्र में भी नहीं देखने देते !

राजा के इन भावों से प्रसन्न होकर सानुमती कहने लगी—
तुम्हारे द्वारा अस्वीकार किये जाने का जो दुःख शकुंतला को हुआ है, उसे तुमने सर्वथा मिटा दिया।

इतने में चतुरिका ने आकर राजा से कहा कि रानी वसुमती ने मुझसे रंग का डिब्बा और कूची छीन ली है और इधर ही आ रही हैं।

राजा ने माढव्य से कहा—शकुंतला का चित्र छिपा दो।

चित्र लेकर माढव्य 'मेघप्रतिच्छंद' भवन में भाग गया। अब वेत्रवती दासी आ पहुँची। उसके द्वारा दुष्यंत को विदित हुआ कि रानी, उसे राजकाज के पत्र लेकर आते देखकर राह से ही लौट गई हैं।

यह पत्र मंत्री पिशुन ने राजा के पास भेजा था। पत्र में लिखा था कि समुद्र के व्यापारी सेठ धनमित्र की, जहाज के डूब जाने से, मृत्यु हो गई है। वह निःसंतान था। इसलिए उसका धन राजा को मिलना चाहिए।

यह पढ़कर राजा को अपने निःसंतान होने पर दुःख हुआ। उन्होंने दासी से कहा—यदि वह धनी है तो उसके अनेक पत्नियाँ होंगी। पता लगाओ, उसकी कोई स्त्री गर्भवती तो नहीं है।

दासी—महाराज ! सुना है, अयोध्या के सेठ की पुत्री का, जो धनमित्र को स्त्री है, अभी पुंसवन-संस्कार हुआ है।

राजा—जाओ, मंत्री से कह दो कि वह गर्भ-स्थित बालक पितृ-धन का अधिकारी है।

वेत्रवती चली गई। राजा को अब अपने निःसंतान होने का दुःख और भी पीड़ित करने लगा। उन्होंने सोचा, मेरी मृत्यु होने पर भी यही दशा पुरु-वंश की भी होगी। हाय ! मैंने धर्म-पत्नी शकुंतला को गर्भिणी अवस्था में आकरण त्याग दिया।

सानुमती ने कहा कि वह शीघ्र ही मिल जायगी।

चतुरिका ने, राजा के मनोविनोद के लिए, माढव्य को मेघ-प्रतिच्छंद प्रासाद से बुलाने के लिए वेत्रवती को भेजा।

दुष्यंत फिर यों विलाप करने लगे—आह ! मेरे पितर संशय में पड़े हुए हैं। वे कहते होंगे कि हाय ! इसके बाद हमें विधि-पूर्वक पिंड कौन देगा ? मुझ निःसंतान के दिये हुए, आँसुओं के धोने से बच रहे, जल को वे पीते होंगे।

अब तो सानुमती का हृदय पिघल गया। वह कहने लगी—हाय ! दीपक के होने पर भी इसे अंधकार देख पड़ रहा है। मैं तो इसे अभी शांत कर देती; परंतु मैंने देखा है कि इंद्र की माताजी यह कहकर शकुंतला को ढाढ़स बँधा रही थीं कि यज्ञ-भाग के उत्सुक देवता ही ऐसा करेंगे कि तेरा स्वामी शीघ्र तुझे स्वीकार कर ले। तुझे उस समय की प्रतीक्षा करनी चाहिए। अब यहाँ का वृत्तांत सुनाकर मैं प्रिय सखी को धीरज दूँगी।

फिर सानुमती वहाँ से चली गई।

इसी समय, डरी हुई वेत्रवती ने आकर कहा—महाराज ! मित्र को संकट से बचाइए।

दुष्यंत ने घबराकर पूछा—क्या हुआ ?

वेत्रवती—किसी अदृष्ट जीव ने उसे 'मेघप्रतिच्छंद' नाम के भवन की अट्टालिका पर चढ़ा दिया है।

राजा शीघ्र ही वहाँ चले गये। माढव्य का विलाप सुनकर उससे कहने लगे—डरो मत, डरो मत।

माढव्य—कोई पीछे से गर्दन पकड़कर, ईख के समान, मेरे ~~गला~~ तीन टुकड़े किए देता है।

राजा ने धनुष मँगवा लिया। उस जीव ने भी राजा को उत्तेजित करने के लिए कहा—ले, अब दुखियों के भय को हटाने वाला धनुर्धर राजा दुष्यंत तुझे बचाये।

यह सुनकर राजा को क्रोध चढ़ आया। वे कहने लगे—यह तो मुझे ही ताना मारता है।—ठहर ठहर, दुष्ट राक्षस ! तू अब जीता नहीं बचेगा।

राजा ने धनुष चढ़ा लिया; परंतु उन्हें कोई भी दिखाई न देता था। इस समय वह व्यक्ति (जो वास्तव में इंद्र का सारथि) मातलि था, प्रकट हो गया। उसने कहा, इंद्र राक्षसों पर आक्रमण करना चाहते हैं और उनका नाश करने के लिए आपसे सहायता माँगी है !

मातलि को देखकर राजा ने धनुष उतार लिया और कहा—अरे, मातलि ! तुम हो !

मातलि ने अपना काम कह सुनाया। उसने कहा—चिरंजीव ! इंद्र का संदेश सुनिए। कालनेमि की संतान दानवों का समूह दुर्जय है। उन दानवों को आपके मित्र इंद्र नहीं जीत सकते। रणभूमि में आप उनका नाश करें।

राजा ने यह प्रार्थना सहर्ष स्वीकार कर ली। फिर मातलि से पूछा—तो माढव्य को तुमने क्यों सताया ?

मातलि ने मुस्कराकर कहा—वह भी बताता हूँ। किसी

कारण-वश आप मुझे मन के संताप से व्याकुल दिखाई पड़े।
अतः आपको उत्तेजित करने के लिए मैंने वैसा किया था।

राजा मातलि के साथ जाने लगे। वे माढव्य द्वारा मंत्री पिशुन को, प्रजा-पालन में सावधानी बरतने के लिए, आज्ञा देकर चले गये।

—* ७ *—

जब महाराज दुष्यंत इंद्र के कार्य से निपट गये तब इंद्र ने उनका विशेष सत्कार किया। सब देवताओं के सामने उन्हें अपने आधे सिंहासन पर बिठाया। इंद्र से मंदार-पुष्पों की माला पाने की आशा किये उनका पुत्र जयंत खड़ा था। परंतु इंद्र ने माला उसे न देकर दुष्यंत को पहना दी। इस प्रकार विशेष सम्मान पाकर दुष्यंत, मातलि के साथ, विमान से भूलोक को चले।

मार्ग में स्वर्ग के अति रमणीय दृश्य देख पड़े। स्वर्ग को जाते हुए राजा ने पहले दिन असुरों के संहार की उत्सुकता के मारे यह प्रदेश नहीं देखा था। आज उन्होंने मातलि से पूछा—
हम वायु के कौनसे मार्ग में हैं?

मातलि—हरि (वामन) के दूसरे पग से पवित्र हुआ यह 'प्रवह' वायु का मार्ग है। इसमें रजस् नहीं है। यह आकाश-गंगा को बहाता है और किरणों को बाँटता हुआ नक्षत्रों को चलाता है।

यह दृश्य देखकर बाहरी और भीतरी इंद्रियों-सहित दुष्यंत का अंतरात्मा पुलकित हो गया। राजा ने रथ के चक्र को देखकर कहा—हम मेघों के मार्ग में उतर आये हैं। चक्र के अरों में से निकलते हुए चातक और क्षणस्थायी विद्युत् के प्रकाश से लिप्त घोड़ों तथा जल-बिंदुओं से गीले पहियों वाला यह आपका रथ जल-भरे बादलों के ऊपर चलने की सूचना देता है।

मातलि—ठीक है, आप शीघ्र ही अपने राज्य की भूमि में पहुँच जायेंगे।

राजा ने नीचे की ओर देख कर फिर कहा—मातलि ! वेग से नीचे उतरने के कारण मनुष्य-लोक आश्चर्यमय दिखाई देता है। ऊँचे उठे हुए पर्वतों के शिखरों के कारण पृथ्वी नीचे उतरती हुई-सी दिखाई देती है। शाखाओं के स्पष्ट होने से ये पेड़ पत्तों में छिपे हुए अपने रूप को बदल रहे हैं। क्षीण दिखने से अदृश्य जलवाली नदियाँ विस्तार से प्रकट हो रही हैं। देखो, भुवन किसी के द्वारा ऊपर फेंका हुआ-सा मेरे पास आ रहा है।

इस दृश्य की प्रशंसा मातलि ने भी की। राजा ने पूछा—पूर्व पश्चिम समुद्र में डूबा हुआ, सोने का रस-सा बहाने वाला, संध्या की मेघ-राशि के समान यह कौन सा पर्वत है ?

मातलि—यह किंपुरुषों का (निवास-स्थल) हेमकूट नाम का पर्वत है। यह तपस्वियों का परम क्षेत्र है। देखिए ! ब्रह्मा के पुत्र मरीचि से उत्पन्न सुरासुरों के गुरु, प्रजापति कश्यप अपनी पत्नी के साथ यहाँ तपस्या करते हैं।

यह सुनकर दुष्यंत ने भगवान् कश्यप को प्रणाम करने के लिए जाने की इच्छा प्रकट की।

मातलि ने रथ रोक लिया। दोनों रथ से उतर पड़े। ऋषियों के तपोवन को देख राजा अति विस्मित होकर कहने लगे कि अन्य मुनि तपस्या द्वारा जिसकी इच्छा करते हैं, वही यह स्थान है। इसमें कल्प-वृक्षों से भरे वन में वायु के द्वारा प्राणों की उचित वृत्ति हो जाती है। यहाँ स्वर्ण-कमल के परागों से लाल हो रहे जल में स्नान सुलभ है और रत्न-शिलावाले घरों में ध्यान तथा अस्त्रास्त्रों के पास संयम किया जाता है। इस प्रकार ऐसे स्थान में रहकर भी ये तपस्या करते हैं।

मातलि अब राजा को अशोक वृक्ष के नीचे ठहराकर इंद्र के गुरु कश्यप मुनि को सूचना देने चला गया।

इस समय दुष्यंत की दाहिनी भुजा फड़कने लगी। राजा ने कहा—मैं मनोरथ पूर्ण होने की आशा नहीं करता। भुजा! तू व्यर्थ फड़कती है। जिस सुख का पहले तिरस्कार होता है वह फिर दुःख में बदल जाता है।

इतने में राजा को एक ओर से किसी का यह कथन सुनाई दिया—चपलता मत कर। तू अपनी प्रकृति को कैसे पा गया?

राजा ने कहा—यह तो चपलता का स्थान नहीं है। यह कौन मना कर रहा है?

जिधर से शब्द आया था उधर देखने पर दो तपस्विनियों के साथ, एक पराक्रमी बालक दिखाई पड़ा। सिंह का बच्चा आधा ही दूध पी पाया था कि उसे वह बालक खेलने के लिए खींच रहा था। वह सिंह-शिशु से कह रहा था—मुँह खोल; मैं तेरे दाँत गिन्नूँगा।

एक तपस्विनी ने डाँटते हुए कहा—ढीठ! हमारे संतान-तुल्य जीवों को क्यों पीड़ा देता है? तेरा क्रोध बढ़ता जाता है। ऋषियों ने ठीक ही तेरा नाम सर्वदमन रक्खा है।

बालक को देखकर राजा को उस पर औरस पुत्र का-सा स्नेह हो आया। उन्होंने सोचा, निःसंतान होने के कारण इस पर मेरा प्रेम हो रहा है।

इस समय दूसरी तपस्विनी ने बालक से कहा—जो तू इस सिंह के बच्चे को नहीं छोड़ेगा तो यह सिंहिनी तुझ पर झपटेगी।

बालक ने मुस्कराकर—“ओह, मैं तो बहुत डर गया!” ऐसा कहा और सिंहिनी के बच्चे का नीचे का होंठ खींच लिया।

राजा को विस्मय हुआ। उन्हें यह बालक बड़ा तेजस्वी जान पड़ा।

एक तपस्विनी—वत्स ! उसे छोड़ दे, तुझे दूसरा खिलौना दूँगी।

“कहाँ है ? दो।” कहकर बालक ने हाथ फैला दिया।

दूसरी तपस्विनी—सुव्रता ! यह निरी बातों से न मानेगा। जाओ, मेरी कुटिया में ऋषि-कुमार मार्कण्डेय का विचित्र रंगोंवाला मिट्टी का मोर रक्खा है ! उसे ले आओ।

“तब तक मैं इसी से खेलूँगा।” कहकर बालक तपस्विनी को देखकर हँसा।

तपस्विन ने अँगुली से निर्देश करके कहा—“अरे, यह मेरा कहा नहीं मानता ! यहाँ कोई ऋषि-कुमार है ?” फिर राजा को देखकर कहा—“भद्र ! आओ, इस सिंह के बच्चे को, जो इस बालक की क्रीड़ा से पीड़ित हो रहा है, छोड़ दो।”

राजा ने पास जाकर मुस्कराते हुए कहा—अरे महर्षि-कुमार ! इस प्रकार आश्रम के विरुद्ध अपनी वृत्ति से तुमने, जीवों के आश्रय-दाता संयमी पिता को वैसे ही दूषित किया है, जैसे चंदन-वृक्ष को काले साँप के बच्चे दूषित करते हैं।

तपस्विनी—भद्र ! यह ऋषि-कुमार नहीं है।

दुष्यंत—यह तो इसकी आकृति और चेष्टा ही कहती है। मैंने केवल स्थान के कारण ऐसा सोचा था।

राजा ने अब बालक का हाथ पकड़ लिया। उसके स्पर्श से उनके अंग में सुख का संचार हुआ। वे सोचने लगे—यदि किसी और वंश के पुत्र को छूने से शरीर को ऐसा सुख मिल सकता है, तो यह अपने पिता के हृदय को भला कितना आनंद देगा ?

तपस्विनी—आश्चर्य है ! इस बालक का तुमसे संबंध न होने पर भी तुम दोनों का आकार इतना मिलता है कि देखकर मैं विस्मित हूँ । एक बात और भी है; यह चंचल होने पर भी तुम्हारे अनुगत हो गया है; यद्यपि तुम अपरिचित हो ।

राजा—आर्ये ! यदि यह ऋषि-कुमार नहीं है तो किस कुल का है ?

तपस्विनी—पुरु-वंश का ।

राजा ने मन में कहा—मेरा और इसका एक ही कुल कैसे हुआ ! कदाचित् इसी कारण यह तपस्विनी कहती है कि इसकी आकृति मुझसे मिलती है । प्रकट बोले—इस आश्रम में तो पुरुवंश के नरेश बुढ़ापे में आकर रहते हैं । इसके सिवा फिर मनुष्यों की यहाँ तक पहुँच भी तो नहीं हो सकती ।

तपस्विनी—आपका कहना ठीक है । आपसरा के संबंध से इस बालक की माता ने यहीं, देव-गुरु के तपोवन में, इसे उत्पन्न किया था ।

यह सुनकर राजा ने सोचा कि यह आशा के लिए दूसरा कारण है । राजा ने तपस्विनी से पूछा—वह स्त्री किस राजर्षि की धर्मपत्नी है ?

तपस्विनी—धर्मपत्नी का परित्याग करने वाले उस मनुष्य का नाम कौन लेगा ?

दुष्यंत ने सोचा कि यह कथा तो मुझ पर ही घटती है । राजा ने सोचा, इस बालक की माता का नाम पूछूँ; परंतु पर-स्त्री के विषय में पूछना अनुचित समझकर वे चुप हो रहे ।

इतने में पहली तपस्विनी सुव्रता मिट्टी का मोर लेकर आई गई । उसने कहा—सर्वदमन ! यह शकुंत-लावण्य (पक्षी की शोभा) देखो ।

‘शकुंत-लावण्य’ में शकुंतला शब्द सुनकर बालक ने पूछा—
कहाँ है मेरी माता ?

दोनों तपस्विनियाँ हँस पड़ीं और बोलीं—यह नाम की
सदृशता से धोखा खा गया ।

दूसरी तपस्विनी—वत्स ! तुम्हें तो यह कहा गया है कि इस
मिट्टी के मोर की शोभा को देखो ।

राजा ने सोचा, क्या इसकी माता का नाम शकुंतला है ?
अथवा नामों की सदृशता भी संभव है । क्या यह नाम-मात्र,
मृग-नृणा के समान मेरे दुःख के लिए लिया गया है ?

बालक—माता ! यह मोर मुझे अच्छा लगा है । (यह कह-
कर मोर को पकड़ लेता है ।)

इतने में सुव्रता ने उसका हाथ देखकर घबराकर कहा—अरे,
इसका रक्षा-कवच हाथ में नहीं देख पड़ता !

राजा ने कहा—घबड़ाओ नहीं । इसका कवच सिंह के बच्चे
के संघर्ष के समय गिर पड़ा है ।

ऐसे कहकर रक्षा-कवच को पास पड़ा देखकर उसे उठाने लगे ।
दोनों तपस्विनियों ने उन्हें रोका, परंतु उन्होंने उसे उठा ही लिया ।
इससे दोनों तपस्विनियों को बड़ा विस्मय हुआ ।

राजा—आपने मुझे क्यों रोका ?

सुव्रता—महाराज ! यह महान् प्रभाववाली अपराजिता नाम
की दिव्य महौषधि है । इस बालक के जातकर्म के समय, भगवान्
कश्यप ने यह ओषधि इस बालक के हाथ में बाँध दी थी । यह
ओषधि यदि भूमि पर गिर जाय तो इस बालक के माता-पिता के
सिवा और कोई इसे नहीं उठा सकता । यदि कोई उठा ले तो उसे
यह साँप बनकर डस लेगी ।

राजा—तुमने पहले कभी ऐसा होते देखा है ?

दोनों तपस्विनियाँ—अनेक धार ।

अब तो राजा ने मनोरथ पूरा हुआ समझकर बालक को हृदय से लगा लिया ।

वियोगिनी शकुंतला को यह वृत्तांत सुनाने के लिए दोनों तपस्विनियाँ चली गईं ।

बालक ने दुष्यंत से कहा—मुझे छोड़ दो ! मैं माता के पास जाऊँगा ।

दुष्यंत—पुत्र ! मेरे ही साथ चलकर माता को आनंद देना ।

बालक—मेरे पिता दुष्यंत हैं, तुम नहीं ।

इस विवाद से भी राजा को निश्चय हो गया ।

इतने में वहाँ, एक बेणी धारण किये हुए, शकुंतला आ गई । नियम-व्रत आदि करते-करते वह दुबली हो रही थी ! उसके वस्त्र मैले थे । राजा ने उसे पहचान लिया । शकुंतला ने राजा को पश्चात्ताप से विवर्ण हुआ देखकर सोचा कि यह व्यक्ति तो मेरे स्वामी-सा नहीं है । तो फिर यह है कौन जो अब रक्षा-कवच से रक्षित मेरे पुत्र को अपने स्पर्श से दूषित कर रहा है !

बालक माता को देखकर उसके पास चला गया और बोला—यह कौन है जो मुझे पुत्र कहकर स्नेह से मेरा आलिंगन करता है ?

राजा ने शकुंतला से कहा—प्रिये ! मैंने तुम्हारे साथ कठोरता की थी, परंतु उसका भी परिणाम अच्छा ही निकला । अब मुझे पहचान लो । पूर्व-वृत्तांत से मेरा मोह-रूपी अंधकार दूर हो गया है । सौभाग्य से तुम मेरे सामने खड़ी हो । ग्रहण के अंत में चंद्रमा का रोहिणी के साथ संयोग हुआ है ।

शकुंतला ने स्वामी को प्रणाम किया; किंतु आँसुओं से गल रुक जाने के कारण कुछ और कह न सकी ।

बालक—माता ! यह कौन है ?

शकुंतला—वत्स ! अपने भाग्य से पूछ ।

“शकुंतला ! हृदय से वह अस्वीकृति का दुःख हटा दो । उस समय मेरे मन को प्रबल मोह ने ढक लिया था । अंधा सिर पर डाली गई माला को भी साँप समझकर फेंक देता है ।” ऐसा कहकर राजा दुष्यंत शकुंतला के पैरों पर गिर पड़े ।

शकुंतला ने उन्हें उठाते हुए कहा—नाथ ! अवश्य ही मेरे पूर्व जन्म के पुण्यों के प्रतिकूल फल उन दिनों फलनेवाले हो रहे होंगे, इसी कारण दयालु स्वामी ने मेरे साथ वैसा वर्ताव किया था । अच्छा, यह तो बताइए कि मुझ दुखिया का स्मरण आपको कैसे आया ?

राजा ने शकुंतला के आँसू पोंछकर कहा—इस अँगूठी के मिलने पर स्मरण आ गया ।

शकुंतला—इस अँगूठी ने बुरा किया जो तब आपको विश्वास दिलाने के समय मुझे नहीं मिली ।

राजा—तो लता, वसंत ऋतु के चिह्न सदृश इस फूल को धारण करे ।

शकुंतला—मुझे इस पर विश्वास नहीं रहा । महाराज ही इसे पहन लें ।

इतने में मातलि ने वहाँ आकर कहा—सौभाग्य से आप आज धर्म-पत्नी और पुत्र-मुख के दर्शन से भाग्यशाली हुए हैं । चलिए, भगवान् कश्यप आपको बुलाते हैं ।

अब ये लोग भगवान् कश्यप के स्थान को गये । अदिति और भगवान् कश्यप दोनों एक आसन पर विराजमान थे । राजा ने श्रद्धा-भक्ति से उन्हें प्रणाम किया । भगवान् कश्यप ने उन्हें आशीर्वाद दिया । फिर पुत्र सहित शकुंतला ने चरण-वंदना की । उन्हें आशीर्वाद देकर भगवान् कश्यप ने, एक-एक की ओर

संकेत करके, कहा—सौभाग्य से साध्वी शकुंतला में, इस सुपुत्र में और आपमें क्रमशः श्रद्धा, वित्त और विधि के 'त्रिवर्ग' का संयोग हुआ है।

राजा ने अब भगवान् कश्यप से शकुंतला की स्मृति न आने का कारण पूछा। उन्होंने कहा—अप्सरा-तीर्थ के कार्य से निपटकर मेनका जिस समय व्याकुल शकुंतला को लेकर दाक्षायणी के पास आई थी, उसी समय मैंने ध्यान से जान लिया था कि दुर्वासा के शाप से तुमने अपनी सहधर्मिणी को ग्रहण करना अस्वीकृत कर दिया है। और कोई कारण न था। उस शाप की अवधि अँगूठी के दर्शन तक थी।

राजा—संतोष है कि मैं अपवाद से बच गया।

शकुंतला ने मन-ही-मन कहा कि सौभाग्य से मुझे स्वामी ने अकारण नहीं त्यागा था। मुझे शाप का स्मरण नहीं है। अथवा उस समय मेरा हृदय वेसुध था, इसलिए मैंने वह शाप सुना ही न होगा; क्योंकि सखियों ने नम्रता-पूर्वक मुझसे कहा था कि वह राजा जब तुम्हें स्मरण न करे तब यह अँगूठी दिखा देना।

भगवान् कश्यप ने अब शकुंतला से कहा—बेटी! तेरा मनोरथ पूर्ण हो गया। अब अपने स्वामी पर क्रोध न करना। शाप से स्मृति नष्ट हो जाने के कारण ही तू अस्वीकृत की गई थी।

भगवान् कश्यप ने अब बालक के विषय में कहा—यह चक्रवर्ती और सातों द्वीपों का विजेता होगा। यहाँ पर जीवों का बलपूर्वक दमन करने से यह सर्वदमन कहलाया है। आगे-लोक का भरण करने से इसका नाम भरत होगा।

राजा—जिस बालक के संस्कार आपने किये हैं उससे हम सब आशाएँ कर सकते हैं।

अब अदिति ने हर्ष प्रकट करते हुए कश्यप मुनि से कहा—

भगवन् ! महर्षि कण्व के पास पुत्री के मनोरथ की पूर्ति की सूचना भेजनी चाहिए ।

शकुंतला ने मन-ही-मन कहा—भगवती ने तो मेरे मन की कही है ।

कश्यप—तप के प्रभाव से उन्हें सब प्रत्यक्ष है । फिर भी प्रिय सूचना अवश्य हमें भेज देनी चाहिए ।

इतना कहकर उन्होंने शिष्य गालव को महर्षि कण्व के आश्रम में सूचना देने के लिए भेज दिया ।

दुष्यंत, शकुंतला और कुमार भी महर्षि से विदा होकर, रथ पर चढ़कर, अपनी राजधानी को चल पड़े ।

7-3-54

16-12-1952



प्रिय-दर्शिका

—* १ *—

प्राचीन समय में अंग-देश में दृढ़वर्मा नाम के एक राजा थे। उन्होंने अपनी पुत्री प्रिय-दर्शिका का विवाह, कलिंग-देश के राजा की प्रार्थना की उपेक्षा करके, वत्स-नरेश उदयन के साथ करना निश्चित कर लिया। इसी से कलिंगराज का अंग-नरेश के प्रति द्वेष था। इस समय आक्रमण करने में लाभ यह था कि वत्सराज अभी उज्जयिनी से छूट नहीं सके थे। यह अवसर देखकर कलिंग-नरेश ने दृढ़वर्मा पर सहसा आक्रमण कर दिया। दृढ़वर्मा के लिए दैव अति निष्ठुर था। उनका कंचुकी विनयवसु राजकुमारी को जैसे-तैसे इस भयंकर स्थान से ले जाकर अपने राजा के मित्र राजा विंध्यकेतु के पास चला गया।

विनयवसु का विचार था कि यहाँ से फिर किसी समय महाराज उदयन को राजकुमारी सौंपकर अपने स्वामी को प्रतिज्ञा-रूपी ऋण से उऋण करूँगा। परंतु वहाँ जब वह पास ही अगस्त्य-तीर्थ पर स्नान के लिए गया तब किसी की सेना ने विंध्यकेतु पर अकस्मात् आक्रमण कर दिया। राजा मार डाला गया, नगर आदि जला दिये गये, प्रजा पीड़ित की गई। राजकुमारी का भी कुछ पता चला। विनयवसु ने सब स्थान खोज डाले परंतु सारा पश्चिम व्यर्थ रहा।

इसी समय विनयवसु को स्मरण आया कि वत्सनरेश उदयन अब बंधन से मुक्त होकर वासवदत्ता के साथ कौशांबी आ चुके हैं। अतः उसने कौशांबी जाने का विचार किया। परंतु फिर उसने सोचा कि राजकुमारी के बिना वहाँ जाने से क्या लाभ! अब उसने कारागार में पड़े, तीक्ष्ण प्रहारों से पीड़ित, राजा दृढ़वर्मा के चरणों में उपस्थित होने का निश्चय किया।

उधर वत्सराज उदयन बंधन से छूटकर, वासवदत्ता के साथ, उज्जयिनी से कौशांबी को भाग आकर प्रसन्न हो रहे थे। बंधन का समय भी अब राजा को भला प्रतीत हो रहा था। वे कहते थे—इस समय मैंने सेवकों की भक्ति, मंत्रियों की नीति-निपुणता, मित्रों की मैत्री और प्रजा का अनुराग सब कुछ देख लिया। मेरा साहस-पूर्ण व्यसन शांत हो गया; स्त्री-रत्न वासवदत्ता की प्राप्ति हो गई। इस प्रकार निश्छल धर्म-मय बंदीपने से मुझे सब कुछ मिल गया।

परंतु मित्रवसंतक ने इसका दूसरा ही अर्थ लगाया। वह कहने लगा—यदि बंधन इतना सुखकारी है तो राजा दृढ़वर्मा को बंदी करने के कारण कलिंग-नरेश पर आप क्रोध क्यों कर रहे हैं?

राजा उदयन मुस्कराकर कहने लगे—चल मूर्ख! सब कोई वत्सराज नहीं हैं, जो वासवदत्ता को साथ लेकर भाग सकें। अच्छा, इस विषय को हटाओ। मुझे विजयसेन को विंध्यकेतु पर आक्रमण करने के लिए भेजे हुए बहुत दिन हो गये हैं। अब तक कुछ सूचना भी नहीं मिली। रुमणवान् को बुलाओ।

इसी समय विजयसेन और रुमणवान् वहाँ अकस्मात् आ पहुँचे। उनके यथोचित प्रणाम आदि कर चुकने पर राजा ने विजयसेन से विंध्यकेतु का वृत्तांत पूछा।

विजयसेन—महाराज! सुनिए—आपकी आज्ञानुसार यहाँ

से जलकर तीन दिन में हम हाथियों, घुड़सवारों और पैदल सैनिकों के साथ विंध्यकेतु पर प्रातःकाल सहसा दूट पड़े। तब राजा विंध्यकेतु जागकर, विंध्याचल की कंदरा से निकले हुए सिंह के समान, केवल थोड़े-से सैनिकों के साथ, युद्ध करने को निकल पड़ा।

राजा—विंध्यकेतु ने यह अच्छा किया। हाँ, तब ?

विजयसेन—हमारी सेना के भीषण पराक्रम के कारण उसके सब सैनिक मारे गये। फिर जब वह सामने आया तब उसे देखकर हमारा क्रोध और उत्साह दूना हो गया। हमारे ललकारने पर वह निःसहाय राजा अकेला ही क्रोध के कारण विलक्षण पराक्रम प्रकट करता हुआ, भीषण युद्ध करने लगा। जब उसके सब अस्त्र-शस्त्र चुर गये, तब तलवार हाथ में लेकर वह हाथियों को सूँड काटने का खेल खेलने लगा। अंत में अनेक बाणों से विंध जाने पर वह मर गया।

राजा—रुमएवान् ! सत्पुरुषों के योग्य मार्ग पर चलनेवाले विंध्यकेतु की मृत्यु से मैं यथार्थ में लज्जित हूँ। विजयसेन ! क्या उसके कोई पुत्र नहीं है जिसे मैं अपनी प्रसन्नता का फल दे सकूँ ?

विजयसेन—महाराज ! यह भी कहता हूँ। जब विंध्यकेतु इस प्रकार भाई-बंधुओं तथा सैनिकों सहित मारा गया तब उसकी स्त्रियाँ सती हो गईं। उसकी प्रजा ने विंध्याचल के शिखरों का आश्रय लिया। इस प्रकार नगर के जन-शून्य हो जाने पर विंध्यकेतु के प्रासाद में 'हा माता ! हा पिता !' कहकर करुण स्वर से विलाप करती हुई एक कन्या दीख पड़ी। उस कन्या को राजकुमारी जानकर हम यहाँ ले आये हैं। वह द्वार पर प्रतीक्षा कर रही है। आपकी क्या आज्ञा है ?

राजा ने उस राजकुमारी को रानी वासवदत्ता के पास भिजवा दिया और कहला भेजा कि तुम सदैव इसके साथ वहन का-सा वर्ताव करना । इसे कुलीन कन्या के योग्य गीत, नृत्य, वाद्य आदि की शिक्षा देना और जब यह विवाह-योग्य हो तब मुझे सूचना देना ।

मध्याह्न का समय हो गया था, अतः सभा विसर्जित की गई ।

—* २ *—

रानी वासवदत्ता ने एक बार कोई व्रत किया । स्वस्तिवाचन के लिए रानी ने वसंतक को बुलवा भेजा । जाने से पहले वसंतक धारागृह उद्यान के सरोवर में स्नान करने गया । वहीं जाते हुए राजा उदयन भी मार्ग में मिल गये । राजा ने वसंतक से उसकी प्रसन्नता का कारण पूछा ।

वसंतक—महारानी एक ब्राह्मण का सत्कार करेंगी । महारानी से मुझे ही सबसे पहले स्वस्तिवाचन का श्रेय मिलेगा ।

यह उत्तर सुनकर राजा ने कहा—तो अब चलो, वहीं धारागृह उद्यान को बढ़ो ।

दोनों धारागृह चले गये और वहाँ पहुँचकर उद्यान के अति रमणीय दृश्यों से मनोविनोद करने लगे ।

इसी समय इंदीवरिका नाम की दासी वहाँ आई । उसे रानी वासवदत्ता ने, महर्षि ऋगस्य के अर्घ्य के लिए, शोफालिका के फूलों की माला शीघ्र लाने के लिए भेजा था । साथ में धारागृह उद्यान के सरोवर से, सूर्यास्त के समय बंद होने से पहले, कमल शीघ्र लाने के लिए आरण्यिका को भेजा था । आरण्यिका को सरोवर का पता न था । इस कारण दोनों साथ ही वहाँ जा रही थीं ।

आरण्यिका उस समय चिंतित हो रही थी। वह सोचती थी कि मैं उच्च कुल में उत्पन्न हूँ। पहले मैं दूसरों पर आज्ञा करती थी; अब स्वयं दूसरों की आज्ञा का पालन करती हूँ। भाग्य बड़ा प्रबल है! अथवा यह मेरा ही दोष है कि मैं आत्महत्या न कर अब तक जीवित हूँ। तो अब क्या करूँ? मैंने यह अच्छा ही किया कि अपना कुल बताकर उसे कलंकित नहीं किया। अब उपाय ही क्या है? जो आज्ञा मिली है उसका पालन करूँगी।

वसंतक और उदयन जब सरोवर पर पहुँचे तब वसंतक की दृष्टि अकस्मात् आरण्यिका पर पड़ गई। उसे देखकर वसंतक ने कहा—मित्र! यह कौन है, जिसकी सुगंधित व्रेणी के इधर-उधर भौरों के मुँड इकट्ठे हो रहे हैं? इसे देखकर तो मुझे प्रतीत होता है कि साक्षात् वन-लक्ष्मी टहल रही है।

राजा ने उधर देखा किंतु वे उसे पहचान न सके। उसके अलौकिक सौंदर्य तथा अनुपम रूप-लावण्य से राजा का मन उसकी ओर खिंच गया।

वसंतक ने ध्यान से देखा तो उस कन्या के पास ही इंदीवरिका दिखाई दी। अब राजा और वह दोनों, कुंज के पीछे छिपकर, दोनों सखियों की बातचीत सुनने लगे।

आरण्यिका से कमल इकट्ठे करने के लिए कहकर इंदीवरिका शोफालिका के फूलों के लिए जाने लगी। परंतु आरण्यिका ने कहा कि मैं तेरे बिना मुहूर्त भर भी नहीं रह सकती।

इंदीवरिका—मैंने आज जैसा रानी से सुना है, उससे तुझे शीघ्र ही मेरे बिना रहना पड़ेगा।

आरण्यिका—रानी ने क्या कहा था?

इंदीवरिका—उन्होंने कहा था कि 'महाराज का आदेश है कि जब यह कन्या विवाह के योग्य हो जाय तब मुझे

सूचना दी जाय'; सो अब महाराज से कहूँगी कि इसके योग्य वर की चिन्ता करें।

इस उत्तर से राजा ने समझ लिया कि यह विन्ध्यकेतु की कन्या है। वे प्रसन्न होकर वसंतक से कहने लगे—मित्र ! इसके देखने में कुछ दोष नहीं।

उधर आरण्यिका ने सक्रोध कहा—चल, हट ! तू व्यर्थ बातें करती है। अब मैं तुझसे न बोलूँगी।

फूल चुनने के लिए इंदीवरिका एक ओर बढ़ गई। आरण्यिका कमल तोड़ने लगी। परंतु कमलों का रस चखने के लिए उन पर बैठे भौरों ने, कमल हिलाते ही, उसे घेर लिया। बेचारी भौरों से दुःखित होकर उत्तरीय वस्त्र से मुँह ढककर, इंदीवरिका को रक्षा के लिए पुकारने लगी।

यह उचित अवसर जानकर वसंतक ने राजा को वहाँ भेज दिया और चुप रहने को कह दिया। राजा जब वहाँ पहुँचे तब उन्हें इंदीवरिका समझकर आरण्यिका को धीरज बंधा। राजा ने कहा—अरी भीरु ! भय छोड़ो। सुगंधि के कारण ये भौरे तुम्हारे मुख-कमल पर मँडराते हैं।

अपरिचित स्वर जानकर आरण्यिका डर गई और मुँह पर वस्त्र हटाने पर सामने अनजान पुरुष को देखकर वह फिर इंदीवरिका को पुकारने लगी।

वसंतक—देवी ! जब सारी पृथिवी के रक्षक वत्सराज स्वयं तुम्हारे रक्षक हैं, तब तुम इंदीवरिका को रक्षा के लिए क्यों बुलाती हो ?

यह जानकर कि ये महाराज उदयन हैं, आरण्यिका लज्जित हो गई और सोचने लगी— ये ही महाराज हैं जिनसे पिताजी ने मेरा विवाह करने का निश्चय किया था। पिताजी ने

मुझे योग्य वर के हाथ सौंपने के लिए ही इतना आग्रह किया था।

आरण्यिका के पुकारने का शब्द सुनकर इंदीवरिका ने कहा—डरो मत, आती हूँ।

अब उसे आती जानकर राजा फिर छिप गये। अन्यथा इंदीवरिका द्वारा रानी वासवदत्ता को सारे वृत्तांत का पता चल जाता।

इंदीवरिका आई और उसे साथ लेकर चली गई। सायंकाल हो गया था। अब राजा भी उसका सोच-विचार करते वसंतक के साथ राजभवन को चले गये।

—* ३ *—

वासवदत्ता ने मनोरमा को आज्ञा दी कि महाराज और मेरे विषय में सांकृत्यायनी द्वारा रचे गये नाटक का शेष अभिनय तुम्हें आज 'कौमुदी-महोत्सव' के समय करना होगा। मनोरमा ने सोचा कि कल सुध-सुध भूली आरण्यिका ने अभिनय ठीक नहीं किया था। यदि आज भी रानी वासवदत्ता का अभिनय वह वैसा ही करेगी तो रानी अवश्य बिगड़ेंगी। इसलिए उसे ढूँढ़कर चेतावनी दे देनी चाहिए।

मनोरमा जब सरोवर के तट पर कदलीगृह में पहुँची तब आरण्यिका को अपने आपसे कुछ कहते पाया। वह छिपकर उसका प्रलाप सुनने लगी।

आरण्यिका गहरी साँस लेकर कह रही थी—हृदय ! दुर्लभ पुरुष की इच्छा करके तू मुझे क्यों दुःखित करता है ? सौम्य-दर्शन राजा मुझे इस प्रकार क्यों दुःखी करते हैं ? अथवा यह मेरा दुर्भाग्य है, न कि महाराज का दोष। सखी मनोरमा मेरा हृदय है। परंतु उससे भी, लज्जा के कारण, मैं कुछ कह नहीं

सकती। मरण के बिना हृदय को शांति और कैसे मिल सकती है ? यह वही स्थान है जहाँ भौरों से पीड़ित होने पर मुझे महाराज ने सहारा देकर धीरज दिया था कि 'भीरु ! डरो मत ।'

यह जानकर मनोरमा प्रसन्न हुई कि महाराज इसे पहले देख चुके हैं। उसने सोचा कि तब तो इसके जीवन का उपाय हो सकता है। अच्छा, इसे धीरज देती हूँ। ऐसा विचार करके वह आरण्यिका के सामने चली गई और कहने लगी—क्या अपने हृदय से भी लज्जा करनी चाहिए ?

आरण्यिका लज्जित हो गई। वह सोचने लगी कि ओह ! इसने सब कुछ सुन लिया। अब इससे सब वृत्तांत कह देना चाहिए। वह बोली—प्रिय सखी ! क्रोध मत करो। यह लज्जा का ही अपराध है।

उसे धैर्य देती हुई मनोरमा ने कहा—महाराज ने तुम्हें देख ही लिया है। अब शोक मत करो। तुमसे मिलने के लिए अब महाराज स्वयं उत्सुक होंगे।

इस प्रकार बातचीत हो ही रही थी कि वसंतक वहाँ आता दिखाई पड़ा। वह आप ही कहता आ रहा था कि आरण्यिका पर महाराज का इतना अनुराग है कि उन्होंने सब राज-कार्य छोड़ दिया है और उसके पाने के उपाय की चिंता से अपना मन बहलाया करते हैं।

आरण्यिका और मनोरमा उसे देखकर प्रसन्न हो गईं। आरण्यिका के विषय में उसे बोलते देखकर दोनों चुपचाप उसकी बातें सुनने लगीं।

वसंतक अपने आप कह रहा था—महाराज के कहने से मैंने वासवदत्ता, पद्मावती आदि रानियों के प्रासादों में आरण्यिका को ढूँढ़ा, परंतु वहाँ वह नहीं मिली। यहाँ सरोवर पर देखा था,

इस विचार से यहाँ देखने आया हूँ। यहाँ भी नहीं है। अब क्या करूँ ?

मनोरमा—प्रिय सखी ! सुनो ?

वसंतक फिर कहने लगा—अथवा महाराज ने यह भी कहा था कि यदि ढूँढ़ने पर वह न मिले तो उस सरोवर से, उसके स्पर्श से दूने शीतल हुए, कमल-पत्र ले आना। भला मैं कैसे जानूँ कि उसने किन कमलों को छुआ था ?

यह सुनकर उदयन का प्रेम अब इन्हें स्पष्ट प्रतीत हो गया। मनोरमा ने प्रकट होकर कहा—वसंतक ! आओ, मैं बताती हूँ।

वसंतक डर गया। बोला—कैसे बतायेगी ? क्या देवी को ? मैंने तो कुछ भी नहीं कहा।

मनोरमा—वसंतक ! डरो मत। तुमने अपने मित्र महाराज की जिस अवस्था का वर्णन किया है उससे दूनी बुरी अवस्था मेरी सखी की है। देखो न !

वसंतक ने प्रसन्न होकर कहा—मेरा परिश्रम सफल हुआ। राजा से इसका मिलन किस प्रकार हो सकता है ?

मनोरमा ने वसंतक के कान में कुछ कह दिया। इससे वह प्रसन्न हो गया और उससे एकांत में कहने लगा—जब तक तुम दोनों वेष धारण करोगी तब तक मैं मित्र के साथ आ जाऊँगा।

अब वसंतक चला गया और आरण्यिका को साथ लेकर मनोरमा रंगशाला में पहुँची।

परिवार सहित रानी वासवदत्ता और सांकृत्यायनी भी पधारीं। रानी वासवदत्ता ने आरण्यिका को अपने आभूषण उतारकर पहनने को दिये और इंदीवरिका से कहा कि महाराज के वे आभूषण लाकर मनोरमा को पहनने को दे दे जो कि महासेन प्रद्योत ने उन्हें, नलगिरि हाथी पकड़ देने से प्रसन्न होकर, दिये थे।

मनोरमा और आरण्यिका रंगशाला के भीतर चली गई। कुछ समय के अनंतर नाटक आरंभ हो गया।

हाथ में वीणा लिये हुए कांचनमाला के साथ वासवदत्ता ने प्रवेश किया। वे वीणाचार्य उदयन की प्रतीक्षा करने लगीं।

ठीक समय पर जब मनोरमा को राजा उदयन का वेष धारण करने आना था तब, महाराज वहाँ नहीं पहुँचे थे। मनोरमा उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। वह सोचती थी—क्या वसंतक ने उनसे कहा नहीं है अथवा वे रानी से डरते हैं?

इतने में वसंतक के साथ राजा वहाँ आ पहुँचे। मनोरमा ने अब अपने आभूषण उतारकर राजा को पहना दिये।

वसंतक ने हँसी में कहा—इस प्रकार राजाओं को दासियाँ भी नचाती हैं।

राजा ने मुस्कराकर उससे चुप रहने को कहा और आदेश किया कि मनोरमा के साथ रंगशाला में छिपकर हमारा अभिनय देखो।

वसंतक और मनोरमा रंगशाला में छिप गये। राजा स्वयं ध्यान से सुनने लगे कि किस प्रसंग का अभिनय चल रहा है।

कांचनमाला—राजकुमारी चाहें पूछें।

आरण्यिका—क्या यह सच है कि वीणा बजाते हुए वत्सराज यदि पिताजी को मोहित कर लेंगे तो वे अवश्य उन्हें बंधन से छोड़ देंगे?

अब राजा ने वह सुनकर यवनिका उठाकर प्रवेश करते हुए कहा—ठीक है। इसमें क्या संदेह? सकुटुंब प्रद्योत को वीणा बजाकर मोहित करके मैं शीघ्र ही वासवदत्ता को हर ले जाऊँगा। मंत्री यौगंधरायण ने सब प्रबंध ठीक कर लिया है।

रानी वासवदत्ता वत्सराज उदयन को देखकर खड़ी हो गई।

उसने उन्हें प्रणाम किया। राजा उदयन ने समझा कि कदाचित् रानी ने मुझे पहचान लिया। परंतु इसी समय सांकृत्यायनी ने मुस्कराकर कहा—रानी ! व्याकुल मत हो। यह तो अभिनय है।

अब राजा को शांति मिली। वासवदत्ता ने भी विस्मित होकर मुस्कराहट के साथ कहा—क्या यह मनोरमा है ? मैंने तो समझा था कि स्वयं महाराज हैं। धन्य हो मनोरमा ! धन्य ! तुम्हारा अभिनय निःसंदेह बहुत बढ़िया है।

आरण्यिका ने कांचनमाला से पूछा—क्या यह सच है कि वीणा बजाते हुए वत्सराज यदि पिताजी को मोहित कर लेंगे तो वे उन्हें बंधन से छोड़ देंगे ?

कांचनमाला—हाँ, तुम इस प्रकार वीणा बजाओ जिसमें वत्सराज तुम्हारा अधिक मान करें।

राजा ने सोचा कि जो मेरी अभिलाषा थी वह इसने स्वयं पूरी कर दी। अब आरण्यिका गाकर वीणा बजाने लगी—

मेघाच्छन्न निरखकर नभ को मानसरोवर करने वास।

चला हंस निज प्राणप्रिया संग इच्छा करके निज आवास ॥

मनोरमा ने इस समय वसंतक को जगाया और आरण्यिका का अभिनय देखने के लिए कहा। वसंतक ने बिगड़कर कहा—दासीपुत्री ! तू मुझे सोने नहीं देती। मुझे कितने ही दिनों से नींद नहीं आई। अच्छा, मैं जाकर दूसरे स्थान पर सोता हूँ।

आरण्यिका ने फिर गाया—

कुटिल काम से संतापित हो मधुकरिका रस-रंग भरी।

प्रियदर्शन की सतत प्रार्थना में डूबी थी वहाँ खरी ॥

प्रसन्न होकर राजा ने उसे साधुवाद दिया और कहा—अहो ! तेरा गाना विचित्र है और वीणा का बजाना भी अनूठा है।

आरण्यिका ने वीणा को हृदय से लगा लिया। आसन से उठकर उसने राजा को सप्रेम देखा और प्रणाम किया।

राजा ने मुस्कराकर कहा—तुम्हारे लिए मैं जो इच्छा करता हूँ वह तुम्हें प्राप्त हो।

कांचनमाला ने आरण्यिका के आसन की ओर संकेत किया और वत्सराज को वहाँ बैठाने के लिए कहा।

वहाँ बैठकर राजा कहने लगे—अब राजपुत्री कहाँ बैठेगी ?

कांचनमाला ने मुस्कराकर कहा—अभी आपने राजकुमारी की, विद्या की निपुणता पर, प्रशंसा की है। सो वह गुरु के पास बैठने योग्य है।

राजा ने आरण्यिका को आधे सिंहासन पर बैठने के लिए कहा तो वह कांचनमाला की ओर देखने लगी। कांचनमाला ने कहा—बैठ जाओ। इसमें क्या दोष है ?

आरण्यिका लज्जित-सी होकर वहाँ बैठ गई।

वासवदत्ता ने सांकृत्यायनी से कहा—भगवती ! यह कल्पना आपने जोड़ी है। मैं तो उस समय एक आसन पर उनके साथ नहीं बैठी थी।

सांकृत्यायनी—काव्य ऐसा ही होता है।

राजा ने आरण्यिका को फिर वीणा बजाने को कहा। परंतु आरण्यिका ने कांचनमाला से कहा—मैं देर तक वीणा बजाने के कारण थक गई हूँ; अतः अब और बजा नहीं सकती।

कांचनमाला ने राजा से निवेदन किया—उपाध्याय ! राजकुमारी थक गई हैं। उनके गालों पर पसीने की बूँदों और हाथों की काँप रही अँगुलियों को देखिए। सो आप मुहूर्त भर प्रतीक्षा करें।

राजा—कांचनमाला ! तुमने ठीक कहा।

यह कहकर राजा ने आरण्यिका को हाथ से पकड़ना चाहा पर उसने हाथ हटा दिया।

वासवदत्ता को ईर्ष्या हो आई। वे कहने लगीं—भगवती ! यह भी तुमने अपनी ओर से बढ़ाया है। कांचनमाला के समान मैं काव्य से ठगी नहीं जा सकती।

सांकृत्यायनी ने हँसकर कहा—रानी ! काव्य ऐसा ही होता है। उधर आरण्यिका ने क्रोध से कहा—कांचनमाला ! चल दूर हट। मैं तुम्हें नहीं चाहती।

कांचनमाला मुस्कराकर कहने लगी—यदि यहाँ बैठी हुई मैं तुम्हें अच्छी नहीं लगती तो लो, चली जाती हूँ।

जब वह जाने लगी तब आरण्यिका ने स्तब्ध होकर कहा—ठहर, कांचनमाला ! ठहर। ले यह मैं अपना हाथ इनको सौंपती हूँ। राजा ने आरण्यिका का हाथ पकड़ लिया।

वासवदत्ता अब सहसा उठकर कहने लगीं—भगवती ! यह तुम देखो। मैं काल्पनिक काव्य का झूठा अभिनय देख नहीं सकती। सांकृत्यायनी—रानी ! यह धर्मशास्त्र के मतानुसार गांधर्व-विवाह है। लज्जा का यहाँ क्या काम ? यह अभिनय-मात्र है। सो बीच में रसभंग करके जाना ठीक नहीं।

परंतु वासवदत्ता चली गई। साथ में इंदीवरिका थी। इंदीवरिका की दृष्टि रंग-शाला के द्वार पर सोये हुए वसंतक पर पड़ गई। वासवदत्ता ने उसे देखकर सोचा कि राजा भी यहाँ अवश्य होंगे। सो यह पूछने के लिए वसंतक को जगा दिया।

वसंतक ने समझा कि मनोरमा फिर जगा रही है। वह उठकर पूछने लगा—क्या मेरा मित्र अभिनय समाप्त करके वापस आ गया ?

अब तो सारा रहस्य खुल गया। वासवदत्ता ने पूछा—क्या महाराज अभिनय कर रहे हैं ? मनोरमा कहाँ है ?

वसंतक—रंगशाला में बैठी है।

वासवदत्ता ने ताने के ढंग पर कहा—धन्य हो, मनोरमा !
धन्य ! तूने खूब अभिनय किया।

मनोरमा—महारानी ! इसमें मेरा कुछ अपराध नहीं। इस दुष्ट वसंतक ने मेरे आभूषण छीन लिये और द्वार पर खड़े होकर मुझे रोक रक्खा। फिर मृदंग आदि की ध्वनि के कारण मेरे पुकारने का शब्द किसी ने नहीं सुना।

वासवदत्ता ने कहा—मैंने सब जान लिया। ‘आरण्यिका-वृत्तांत’ नाटक का सूत्रधार वसंतक ही है।

वासवदत्ता—मनोरमा ! इसे बाँध लो। अब इसके प्रबंध के अनुसार हो रहे अभिनय को देखने में रंगशाला में जाती हूँ।

मनोरमा को अब धीरज बँधा। वह वसंतक को बाँधकर कहने लगी—अब अपनी दुर्नीति का फल भोगो।

वासवदत्ता राजा के पास चली गई। राजा ने समझा कि मैं पहचान लिया गया। अब कुछ उपाय हो न सकता था। उन्होंने रानी से क्रोध शांत करने के लिए कहा।

वासवदत्ता ने व्यंग्य से कहा—यहाँ कुपित है कौन ?

राजा ने रानी को, चरण छूकर प्रसन्न करना चाहा। परंतु वासवदत्ता ने कहा—आरण्यिका ! तुम्हें कुपित समझकर महाराज प्रसन्न होने के लिए कह रहे हैं—‘प्रिये ! प्रसन्न होओ।’ सो तुम इनके पास जाओ।

अब रानी ने आरण्यिका को खींचा। वह डरकर कहने लगी—महारानी ! मैं इस विषय में कुछ नहीं जानती।

वासवदत्ता—आरण्यिका ! तू कैसे कुछ नहीं जानती ? मैं तुम्हें सिखाती हूँ।

अब रानी ने इंदीवरिका को आरण्यिका के पकड़ने की आज्ञा

दी। राजा ने फिर चरण छूकर क्षमा माँगी। परंतु रानी कुछ उत्तर दिये बिना ही, वसंतक और आरण्यिका को साथ लेकर, अंतःपुर में चली गई।

—* ४ *—

रानी वासवदत्ता आरण्यिका पर अत्यंत रुष्ट थीं। आरण्यिका ने दुःखी होकर एक बार आत्म-हत्या करनी चाही परंतु मनोरमा ने उसे रोक लिया। यह समाचार वसंतक द्वारा महाराज के पास पहुँचाकर मनोरमा आ रही थी कि उसे कांचनमाला मिल गई। वह सांकृत्यायनी को ढँढ़ने आई थी। उसने मनोरमा से पूछा—सखी! सांकृत्यायनी को देखा है?

मनोरमा—देखो तो है। क्या काम है?

कांचनमाला—महारानी अंगारवती का आज एक पत्र आया था। उसे पढ़ने से रानी की आँखों में आँसू भर आये थे। उनके मनोविनोद के लिए उसे पूछ रही हूँ।

पत्र के विषय में मनोरमा को उत्सुकता हुई। वह पूछने लगी—पत्र में क्या लिखा है?

कांचनमाला—पत्र में लिखा है कि जो मेरी बहन है वह तुम्हारी माता ही है। उसका पति दृढ़वर्मा तुम्हारे पिता के तुल्य है। परंतु इसके कहने की क्या आवश्यकता? ध्रुव एक वर्ष से अधिक हुआ कि दुष्ट कलिराज ने उन्हें बंदी किया था। अतः तुम्हारे स्वामी के लिए यह उचित नहीं है कि उसके निकटवर्ती होकर, बलवान् होने पर भी, इस अनिष्ट वृत्तांत को सुनकर ऐसी उदासीनता धारण करें।

मनोरमा ने उसे शीघ्र भता दिया कि वे तो इस समय रानी के ही पास बैठी हैं। कांचनमाला तुरंत उधर चली गई।

आरण्यिका से मिले मनोरमा को कुछ विलंब हो गया था। इससे वह आरण्यिका के पास चली गई। उसे संदेह था कि कहीं वह कुछ अनिष्ट न कर डाले।

उधर वासवदत्ता और सांकृत्यायनी बैठी हुई बातें कर रही थीं। वासवदत्ता कह रही थीं—माता को क्या पता कि मैं अब वह वासवदत्ता नहीं रही। आरण्यिका का वृत्तांत तो तुमने अभी प्रत्यक्ष देखा है।

सांकृत्यायनी ने इस विषय को दबाना चाहा। वह कहने लगी—महाराज तो 'कौमुदी-महोत्सव' के दिन आपके मनोविनोद के लिए अभिनय कर रहे थे।

परंतु वासवदत्ता को इससे धीरज कहाँ हो सकता था? वे इसमें अपना अपमान समझकर रोने लगीं।

सांकृत्यायनी ने कहा भी कि रोइए मत, वत्सराज ऐसे नहीं हैं कि आपकी ओर से उदासीन रहें; परंतु वासवदत्ता को ये बातें अब केवल कल्पना ही प्रतीत होती थीं।

रानी को प्रसन्न करने के लिए इसी समय अकस्मात् राजा वहाँ आ गये। उनके साथ वसंतक था। वह कारागार से छूट चुका था। राजा को देखकर वासवदत्ता खड़ी हो गई और प्रणाम करके भूमि पर ही बैठ गई। उन्हें भूमि पर बैठते देखकर राजा भी भूमि पर बैठ गये और हाथ जोड़कर प्रसन्न होने की प्रार्थना करने लगे। वासवदत्ता ने तब भी कहा—आप बहुत प्रसन्न हैं। अब मुझे क्यों सताते हैं? उठिए, यहाँ क्या कष्ट है?

सांकृत्यायनी—महाराज! उठिए। इससे क्या लाभ? इनकी व्याकुलता का कारण और ही है।

राजा ने जब कारण पूछा तब सांकृत्यायनी ने राजा के कान में कुछ कह दिया। सुनकर राजा हँस पड़े और रानी से कहने

लगे—यदि यही कारण है तो शोक छोड़ो। मुझे भी यह ज्ञात था। काम पूरा किये बिना मैंने तुझसे कुछ कहना ठीक नहीं समझा था। भला मैं दृढ़वर्मा के विषय में उदासीन कैसे रह सकता हूँ ? कुछ दिन हुए, मुझे सूचना मिली थी कि मेरे सेनापति विजयसेन ने उसकी सेना को नष्ट कर दिया है। कलिंगराज निःसहाय हो गया है। उसने दुर्ग में आश्रय लिया है। आशा है कि दुर्ग के नष्ट होने पर वह या तो शीघ्र ही बंदी हो जायगा अथवा युद्ध में मारा जायगा।

यह वृत्तांत सुनकर वासवदत्ता को कुछ संतोष हुआ। इसी समय वहाँ विजयसेन और कंचुकी विनयवसु आ पहुँचे।

विनयवसु ने महाराज का स्वागत किया और निवेदन किया कि आपकी आज्ञा से कलिंगराज को मारकर विजयसेन ने हमारे स्वामी दृढ़वर्मा को सिंहासन पर बैठा दिया है। राजा ने प्रसन्न होकर रानी को बधाई दी।

वासवदत्ता—मैं अनुगृहीत हूँ।

इस शुभ अवसर पर वसंतक कब चूकनेवाला था ? अब उसे एक और चाल सूझी। वह कहने लगा कि राज-भवन में ऐसे अभ्युदय पर ये काम करने चाहिए—(राजा और वीणा की ओर संकेत करके) गुरु-पूजा; (यज्ञोपवीत दिखाकर) ब्राह्मण-पूजा; (आरण्यिका की ओर संकेत करके) बंदीगृह से सबकी मुक्ति।

प्रसन्न होकर वासवदत्ता ने सांकृत्यायनी को आरण्यिका को छोड़ देने के लिए भेज दिया।

विनयवसु फिर कहने लगा—दृढ़वर्मा आपके अत्यंत कृतज्ञ हैं। वे आपके लिए अपने प्राण तक न्यौछावर करने को तैयार हैं। चाहे उन्हें इस बात का शोक था कि आपको संकल्प की हुई पुत्री प्रिय-दर्शिका के खो जाने से आपके साथ उसका विवाह नहीं हो

सका तब भी वासवदत्ता के स्वामी होकर आपने उनके उस शोक को दूर कर दिया है।

वासवदत्ता की आँखों में आँसू भर आये। उन्होंने पूछा— मेरी बहन कैसे खो गई ?

विनयवसु—राजकुमारी ! कर्लिगराज के आक्रमण करने पर जब राजधानी में प्रलय-काल का-सा दृश्य उपस्थित हुआ तब मैं उसे, सौभाग्य-वश देखकर, वत्सराज के पास पहुँचाने को लेकर चल पड़ा। फिर कुछ सोचकर मैं उसे विंध्यकेतु को सौंप कर चला गया किंतु दुर्भाग्यवश विंध्यकेतु का राज्य इसके पश्चात् नष्ट-भ्रष्ट हो गया। राजकुमारी का कहीं पता न चला।

इस प्रकार वार्त्तालाप हो रहा था कि मनोरमा ने आकर कहा—महाराज ! उस कन्या के प्राण संकट में हैं।

वासवदत्ता—क्यों, आरण्यिका को क्या हुआ ?

मनोरमा—उसने विष खा लिया है। उसका मृत्युकाल उपस्थित है। आप उसकी रक्षा करें।

वासवदत्ता ने सोचा कि लोग बड़े दुर्जन हैं। पता नहीं इस विषय में क्या-क्या बातें फैलायें। इसी से उन्होंने मनोरमा को उसे लाने की आज्ञा दी और कहा कि महाराज ने नागलोक में विष-चिकित्सा सीखी थी। विष उतारने में ये सिद्ध-हस्त हैं।

आरण्यिका को लेकर मनोरमा वहीं आ गई। आरण्यिका की अवस्था शोचनीय हो रही थी। उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा रहा था। हाथ पकड़कर वासवदत्ता ने राजा को उठाया और उसकी रक्षा करने के लिए कहा।

आरण्यिका को देखकर विनयवसु ने सोचा कि इसकी आकृति अवश्य प्रिय-दर्शका की-सी है। तब वासवदत्ता से पूछा—यह कहाँ से मिली थी।

वासवदत्ता—यह विंध्यकेतु की कन्या है। इसे विजयसेन यहाँ लाया था।

विनयवसु—यह विंध्यकेतु की कन्या नहीं हो सकती। यह तो वही राजकुमारी प्रिय-दर्शिका है।

अब तो वासवदत्ता उसकी रक्षा के लिए और भी व्याकुल हो उठीं। वे कहने लगीं—महाराज ! बचाइए, बाचइए; मेरी बहन मर रही है।

राजा ने आगे बढ़कर अपना हाथ प्रिय-दर्शिका पर रखवा और मंत्र पढ़ना आरंभ किया। धीरे-धीरे स्वस्थ होकर प्रिय-दर्शिका उठ बैठी।

“राजकुमारी ! मैं तुम्हारे पिता का सेवक हूँ।” यह कहकर विनयवसु उसके चरणों में गिर पड़ा।

उसके देखने पर, माता-पिता का स्मरण करके, प्रिय-दर्शिका रोने लगी।

विनयवसु—राजकुमारी ! रोओ मत। तुम्हारे माता-पिता सकुशल हैं। वत्सराज की कृपा से उन्हें फिर से राज्य मिल गया है।

वासवदत्ता ने प्रसन्न होकर बहन को हृदय से लगा लिया।

वसंतक—रानी ! बहन को हृदय से लगाकर तो आप अधिक प्रसन्न हैं, किंतु वैद्य को पारितोषिक देना भूल गई हैं।

उसकी चाल समझे बिना ही राजा ने अपना हाथ बढ़ा दिया। रानी ने भी आरण्यिका का हाथ आगे किया; किंतु फिर राजा ने अपना हाथ खींचना चाहा। तब वासवदत्ता ने कहा—इसे अस्वीकार करने का आपको क्या अधिकार है ? इसके पिता ने पहले ही इसे आपके सौंप दिया है।

वासवदत्ता ने राजा का हाथ खींचकर आरण्यिका के हाथ से मिलवा दिया। राजा भी चुप हो रहे।

नागानन्द

—* १ *—

एक समय विद्याधरों के राजा जीमूतकेतु राज्य करते थे।

उनका एकमात्र पुत्र जीमूतवाहन था। उसको राज्य-भार सँभालने योग्य देखकर राजा जीमूतकेतु ने वन जाने का निश्चय किया। परंतु जीमूतवाहन, अपने मंत्रियों को राज-पाट सौंपकर, माता-पिता की सेवा की लिए उनके साथ ही चले गये।

जीमूतवाहन के विचार बड़े ऊँचे थे। वे जानते थे कि युवा-वस्था विषय-भोग की आवास-भूमि है; उसका नाश अवश्यंभावी है; वह कर्तव्य-निर्धारण में विमुख है। परंतु राजकुमार का मत था कि इंद्रियों के वशीभूत निंदनीय यौवन भी यदि माता-पिता की सेवा-शुश्रूषा में व्यतीत किया जाय, तो वह आनंददायक हो सकता है।

(जीमूतवाहन का मित्र आत्रेयी भिन्न प्रकृति का पुरुष था। वह चाहता था कि जीमूतवाहन माता-पिता की सेवा का हठ छोड़कर इच्छानुसार राजसुख भोगे। परंतु जीमूतवाहन ऐसा कब कर सकते थे? उन्हें तो पिता के सामने भूमि पर बैठने में जो गौरव प्रतीत होता था वह राज्य के भोगने में दिखाई नहीं पड़ता था। पिता के चरण दबाने में उन्हें जो तृप्ति थी वह त्रिलोकी का

ऐश्वर्य भोगने में न थी। माता-पिता को त्यागने पर राज्य उन्हें जंजाल ही दिखता था। अब भी अपने मंत्रियों द्वारा राज्य पर उनका जो अधिकार था वह परोपकार के लिए ही था। यदि पिता उन्हें न रोकते तो वे राज्य भी शत्रु मतंग को सौंप देते। उन्होंने मनोरथ से भी अधिक फल देनेवाला कल्प-वृक्ष भी याचकों को दे डाला था। उनका शरीर आदि सब पदार्थ परोपकार के लिए थे।

एक दिन जीमूतकेतु ने पुत्र जीमूतवाहन को आज्ञा दी—
वत्स ! बहुत दिनों तक उपयोग में आने से इस स्थान में समिधा, कुश, पुष्प आदि का अभाव हो गया है; नीवार, कंद, मूल, फल की प्रायः समाप्ति हो गई है। अतः यहाँ से मलयपर्वत पर जाकर उसमें कोई रहने योग्य स्थान ढूँढ़ो।

आत्रेयी को साथ ले जीमूतवाहन मलयपर्वत की ओर चले।

थोड़ी दूर जाने पर उन्हें एक अति रमणीय पर्वतीय दृश्य दिखाई पड़ा। जीमूतवाहन ऐसे रमणीय स्थान में अपने रहने योग्य स्थान देखने लगे। स्थान देखते-देखते दोनों मित्र पर्वत की ओर बढ़ने लगे। इतने में दाहिनी आँख फड़कने से जीमूतवाहन को कोई प्रिय वस्तु मिलने की आशा हुई। कुछ और आगे बढ़े तो उन्हें अत्यंत घने और स्निग्ध वृक्षों से सुशोभित तपोवन दिखाई दिया।

वहाँ प्रवेश करते समय जीमूतवाहन को ऐसा जान पड़ा मानों अतिथि-सत्कार में निपुण वृक्ष, गूँज रहे भौरों के शब्दों द्वारा, मधुर वचनों से उनका स्वागत कर रहे हैं; फलों के भार से झुके हुए सिरों से प्रणाम कर रहे हैं और पुष्प-वृष्टि करते हुए उन्हें अर्घ्य दे रहे हैं।

जीमूतवाहन ने इस तपोवन को अपने निवास के स्नेह्य समझा। उन्हें विश्वास हो गया कि यहाँ रहने से सुख मिलेगा।

ईश्वर-उधर देखते हुए आत्रेयी की दृष्टि मृगों के एक झुंड पर जा पड़ी। मृग तनिक भीवा मोड़े हुए, रोमंथ बंद कर देने से, चबायें हुए कुश को गिरा रहे थे। वे ऐसे जान पड़ते थे मानों कान ऊपर उठाकर आनंद में डूबे, कुछ सुन रहे हों।

जीमूतवाहन ने भी ध्यान देकर सुना तो वीणा के साथ किसी का संगीत सुनाई पड़ा। उन्होंने समझा कि कोई देवांगना, देवता की स्तुति के लिए, मंदिर में वीणा बजा रही है।

आत्रेयी ने उनसे मंदिर देखने के लिए चलने को कहा। जीमूतवाहन ने भी अनुमति प्रकट करते हुए कहा—हाँ, तुमने ठीक कहा है। देवता की वंदना अवश्य करनी चाहिए।

वे कुछ आगे बढ़े ही थे कि सहसा खड़े होकर बोले—मित्र ! कदाचित् वह स्त्री देखने योग्य न हो। अतएव हम तमाल वृक्ष के पीछे छिपकर देव-दर्शन के अवसर की प्रतीक्षा करें।

यह मंत्रणा कर दोनों वहाँ खड़े हो गये। मंदिर से किसी के गाने का शब्द फिर सुन पड़ा—

जयति जयति गिरिराज किशोरी !

विकसित अमल कमल केसर के सुचि पराग-सी डोरी ।

है प्रसन्न मम मनवांछित फल वेगहि सिद्ध करो री ॥

इसके पश्चात् ही ये शब्द भी सुन पड़े—राजकुमारी ! तुमको वीणा बजाते बहुत समय हो गया। क्या तुम्हारी अँगुलियाँ नहीं थकीं ?

राजकुमारी ने झिड़ककर कहा—सखी ! देवी के सामने वीणा बजाने से मेरी अँगुलियाँ क्यों थकेंगी ?

सखी—राजपुत्री ! इस निर्दय देवी के सामने वीणा बजाने से क्या लाभ ? इतने दिन पूजा करने पर भी यह तुम पर प्रसन्न नहीं हुई।

इसे कन्या जानकर आत्रेयी ने कुमार से देखने का कहा। जीमूतवाहन ने भी कहा—हाँ, कन्याओं को देखने में कोई दोष नहीं। किंतु हमें देखकर भय और लज्जा से वह यहाँ ठहर न सकेगी। अतएव हम यहाँ लताकुंज की आड़ से ही उसे देखते हैं।

उस कन्या को देखकर दोनों विस्मित हो गये। आत्रेयी ने कहा—यह केवल अपनी वीणा की निपुणता से ही हमें आनंदित नहीं करती, बल्कि अपने अनुपम सुंदर रूप से भी प्रमुदित करती है।

उस कन्या को देखने पर जीमूतवाहन की जो दशा हुई उससे आत्रेयी ने समझ लिया कि कुमार भी उसके प्रेम-पाश में बँध गये। उधर मंदिर से फिर शब्द आया—राजकुमारी ! इस निर्दय देवी के सामने वीणा बजाने से क्या लाभ ?

अब सखी ने वीणा खींच ली। राजकुमारी ने क्रुद्ध होकर कहा—चतुरिका ! भगवती गौरी की निंदा मत कर। आज भगवती ने स्वप्न में मुझसे कहा है कि “कुमारी मलयवती ! मैं तुम पर संतुष्ट हूँ। इसलिए विद्याधरों का चक्रवर्ती राजा शीघ्र ही तुम्हारे साथ विवाह करेगा।”

अब तो चतुरिका प्रसन्न हो गई। वह कहने लगी—यदि ऐसा है तब तो भगवती ने मनोवांछित वर तुम्हें प्रदान किया है।

यह बातचीत सुनकर आत्रेयी ने कुमार को वहाँ ले जाकर सामने खड़ा कर दिया और कहा—देवी ने यही ‘वर’ दिया है।

मलयवती डरकर खड़ी हो गई। उसने चतुरिका से पूछा—यह कौन है ?

चतुरिका—अपनी अपूर्व आकृति से मुझे तो यह देवी का प्रसाद जान पड़ता है।

मलयवती ने प्रेम और लज्जा के साथ जीमूतवाहन को देखा । परंतु लज्जा के कारण वह अधिक देर तक ठहर न सकी । वह चतुरिका से और कहीं चलने के लिए कहने लगी ।

इस पर आत्रेयी ने कहा—क्या आपके तपोवन में ऐसा ही नियम है कि अतिथि के आने पर वाणी द्वारा भी उसका सत्कार नहीं किया जाता ?

चतुर चतुरिका ने मलयवती की कुमार पर प्रेमभरी दृष्टि देख ली थी । वह बोली—राजपुत्री ! ब्राह्मण ठीक कहता है । तुम्हें अतिथि-सत्कार करना चाहिए । सो तुम हत-बुद्धि क्यों खड़ी हो ? अच्छा, मैं ही स्वागत किये देती हूँ ।

इस पर मलयवती ने कहा—तुम्हें हँसी-ठट्टा अधिक प्रिय है । ऐसा मत करो । कोई तपस्वी देख लेगा तो मुझे डीठ समझेगा ।

इसी समय अकस्मात् एक तपस्वी आता दिखाई पड़ा । उससे कुलपति कौशिक ने कहा था—“शांडिल्य ! पिता की आज्ञा से सिद्धों के युवराज मित्रावसु, आज इस मलय पर्वत पर आये हुए, विद्याधरों के भविष्यत् चक्रवर्ती राजा जीमूतवाहन को अपनी बहन मलयवती के लिए वर निश्चित करने के विचार से देखने गये हैं । भाई की प्रतीक्षा करते हुए मलयवती को मध्यंदिन-सवन का समय व्यतीत हो जायगा । अतएव तुम उसे यहाँ बुला लाओ ।”

गुरु की आज्ञा से शांडिल्य ने पार्वती के मंदिर में जाते हुए मार्ग में पदचिह्न देखे । पदचिह्नों से उसने समझ लिया कि यहाँ कोई चक्रवर्ती आया है । अवश्य वे जीमूतवाहन होंगे ।

तपस्वी को आया देखकर जीमूतवाहन और मलयवती आदि ने प्रणाम किया । तपस्वी ने मलयवती से कहा—कुलपति ने तुम्हारे लिए कहला भेजा है कि मध्यंदिन-सवन का समय व्यतीत हो रहा है । अतएव शीघ्र आओ ।

एक ओर गुरु की आज्ञा थी, दूसरी ओर प्रियतम के दर्शन का सुख । परंतु विवश होकर मलयवती तपस्वी के साथ चली गई ।

जीमूतवाहन और आत्रेयी भी भोजन आदि से निपटने के लिए चले गये ।

—* २ *—

मलयवती को हृदय का संताप अधिक कष्ट देने लगा । उसने चतुरिका से कहा—नये केले के पत्तों से घिरे चंदनलतागृह में चंद्रमणि शिला को सजाओ ।

चतुरिका जब चंद्रमणि शिला को सजा चुकी तब राजकुमारी मलयवती को साथ लेकर चंदनलतागृह में गई । दोनों चंद्रमणि की शीतल शिला पर बैठ गई । किंतु मलयवती का चित्त वहाँ भी शांत न हुआ । उसने चतुरिका से पूछा—यह चंदनलतागृह, घनी कोंपलों के कारण सूर्य की किरणें न पहुँचने पर भी, मेरे संताप को क्यों नहीं दूर करता ?

चतुरिका—मैं इसका कारण जानती हूँ । परंतु तुम उसे असंभव समझकर मनोगी नहीं ।

मलयवती ने समझा कि इसने मेरी दशा को ताड़ लिया है परंतु फिर भी पूछा—मैं मानूँगी क्यों नहीं ? कहो, क्या कारण है ?

चतुरिका—तुम्हारे इस संताप का कारण वही वर है, जो तुम्हारे हृदय में स्थित है । इसी कारण यह स्वभाव से ही शीतल चंदनलतागृह तुम्हारे संताप को नहीं हरता ।

मलयवती—चतुरिका ! तुम तो संचमुच चतुरिका हो ।

चतुरिका—अब तुम संताप न करो । यदि मैं संचमुच

चतुरिका हूँ तो सच समझो कि वह वर भी तुम्हारे बिना क्षण भर भी सुखी न होगा, यह भी मैंने देख लिया है। बिना लक्ष्मी के विष्णु कभी शांत रह सकते हैं ?

मलयवती—मुझे अधिक शोक इस बात का है कि मैंने उन महानुभाव का वचनों द्वारा भी सत्कार नहीं किया। सत्कार न करते देखकर वे मुझे अशिष्ट समझते होंगे।

अब मलयवती रोने लगी। चतुरिका ने समझ लिया कि मलयवती के दुःख का अंत जीमूतवाहन के दर्शन से ही होगा।

इसी समय जीमूतवाहन और आत्रेयी अकस्मात् वहाँ आ पहुँचे। जीमूतवाहन मलयवती के लिए अधीर हो रहे थे और उसी के ध्यान में मित्र के साथ वहाँ आये थे। आत्रेयी ने उनके मन का प्रबल आवेग जानकर, दूसरा प्रसंग आरंभ करने के अभिप्राय से, कहा—मित्र ! आज तुम माता-पिता की सेवा से कैसे शीघ्र निपटकर आ गये ?

जीमूतवाहन—मित्र ! अच्छे समय में तुमने प्रश्न किया। तुम्हारे बिना यह बात और किससे कहूँगा ? सुनो, आज मैंने स्वप्न में देखा है कि वह कन्या चंदनलतागृह में चंद्रमणि की शिला पर बैठी है। वह किसी कारण क्रुद्ध होकर मुझे उलहना दे रही है और रो रही है। अतः इच्छा है कि उस स्वप्न के प्रिया-समागम के कारण इस रमणीय चंदनलतागृह में शेष दिन व्यतीत करूँ। आओ, वहीं चलो।

इनके पास आने से चतुरिका को आहट मिल गई। इससे मलयवती और चतुरिका रक्त-अशोक वृक्ष के पीछे छिप गईं।

इतने में जीमूतवाहन और आत्रेयी वहाँ चंद्रमणि शिला के पास आ पहुँचे। छिपे-छिपे मलयवती और चतुरिका उन्हें देखने लगीं।

आत्रेयी ने जीमूतवाहन से चंद्रमणि शिला पर बैठे को कहा। आँसू बहाते हुए जीमूतवाहन ने लंबी साँस लेकर कहा—यह वही चंद्रमणि शिला है जहाँ मैंने उसे गहरी साँस लेते, कौपल के सदृश अपने बायें हाथ पर चिंता से पीले मूँड़ को रक्खे, देखा था। निचले होंठ के कुछ काँपने से उसका मनोभाव प्रकट हो रहा था और विलंब करने पर मानसिक क्रोध को दबाने के प्रयत्न के कारण रो रही थी। अतएव इस शिला पर ही बैठते हैं।

यह सुनकर मलयवती ने सोचा कि ये प्रेम से कुपित किसी स्त्री का वर्णन कर रहे हैं।

आत्रेयी ने फिर पूछा—उस रोती हुई स्त्री से तुमने क्या कहा था ?

जीमूतवाहन—मैंने कहा था कि आँसुओं के जल से सिंची हुई यह चंद्रमणि शिला, जान पड़ता है, तेरे मुख-रूपी चंद्रमा का उदय होने से जल छोड़ रही है।

अब तो मलयवती के लिए यह सुनना असह्य हो उठा। वह और कहीं जाने लगी, परंतु चतुरिका ने कहा—कुछ और मत सोचो। इन्होंने तुम्हीं को स्वप्न में देखा है।

उसके कहने से मलयवती पूरी बात सुनने के लिए ठहर गई।

जीमूतवाहन ने स्वप्न में देखी हुई स्त्री का चित्र उस शिला पर बनाकर मनोविनोद करने की इच्छा की। उसने आत्रेयी को पर्वत-शिखर से गेरु का टुकड़ा लाने के लिए भेजा। आत्रेयी एक के बदले पाँचों रंगों के पत्थर ले आया। जीमूतवाहन ने चित्र बनाना आरंभ किया। वे पूरा चित्र बनाये बिना ही उसे देखकर प्रसन्न होने लगे। आत्रेयी ने भी कहा—मित्र, आपने जिसका चित्र बनाया है उसकी अनुपस्थिति में भी ऐसा सुंदर चित्र !

जीमूतवाहन ने मुस्कराकर कहा—मित्र ! सदा चिंता करने के

कारण सामने स्थापित की हुई प्रिया सदा समीप ही है। उसको बार-बार देखकर चित्र बना रहा हूँ। इसमें क्या आश्चर्य ?

अब मलयवती को विश्वास हो गया कि यह किसी और स्त्री की चर्चा है। वह निराश होकर आँसू बहाने लगी। परंतु इसी समय जीमूतवाहन को देखते हुए मित्रावसु वहाँ आ गया।

मित्रावसु के पिता ने उससे कहा था—जीमूतवाहन को हम लोगों ने, निकट होने के कारण, अच्छी तरह देख लिया है। इससे योग्य वर और कहाँ मिलेगा ? अतएव मलयवती का विवाह इसके साथ कर दो। इस कारण मित्रावसु इस विषय में जीमूतवाहन से पूछने आया था। उसे सूचना मिली थी कि गौरी के मंदिर के साथ लगे हुए चंदनलतागृह में जीमूतवाहन विद्यमान हैं।

मित्रावसु को इधर आते देखकर शिला पर बनाये चित्र को जीमूतवाहन ने केले के पत्ते से ढक दिया।

मित्रावसु ने आकर अपने पिता विश्वावसु का संदेश कहा—
“मलयवती नाम की मेरी कन्या संपूर्ण सिद्धराज-वंश के प्राणों के तुल्य प्रिय है। उसे मैं आपको सौंपता हूँ। स्वीकार कीजिए।”

जीमूतवाहन—ऐसा कौन है जो आपके साथ इस प्रशंसनीय संबंध की अभिलाषा न करे ? किंतु और कहीं लगे हुए चित्र को वहाँ से हटाकर और कहीं लगाना कठिन है। अतएव मैं आपकी प्रार्थना स्वीकार नहीं कर सकता।

यह उत्तर सुनकर मलयवती मूर्च्छित हो गई। आत्रेयी ने मित्रावसु से कहा—यह कुमार परवश है। मलयवती के लिए इससे प्रार्थना करने से क्या लाभ ? इसके माता-पिता से जाकर प्रार्थना कीजिए।

यह उत्तर ठीक जानकर मित्रावसु जीमूतकेतु के पास चला गया।

मलयवती सचेत होकर मन में अपने जीवन को कोसने लगी। उसने अशोक वृक्ष के नीचे अतिमुक्त लता से गले में फाँसी लगाकर आत्महत्या करने का विचार किया। इसी लिए उसने चतुरिका से कहा—देखो तो, मित्रावसु दूर चले गये हों तो मैं भी यहाँ से चलूँ।

चतुरिका थोड़ी दूर चलकर रुक गई। वह मलयवती के विषय में कुछ सोचकर छिप गई।

मलयवती अपने गले में फाँसी लगाने लगी। यह देखकर चतुरिका ने “बचाओ बचाओ; राजकुमारी फाँसी लगा रही है” कहकर पास बैठे जीमूतवाहन को बुला लिया।

जीमूतवाहन ने मलयवती को देखकर कहा कि यह क्या? यही तो मेरे मनोरथ का आधार है। अब उन्होंने हाथ से पकड़ कर उससे लता की फाँसी हटा दी।

“कौन है?” क्रोध से यह पूछकर मलयवती ने हाथ छोड़ने को कहा।

जीमूतवाहन ने हाथ न छोड़ा। कहा—यह अपराधी हाथ पकड़ लिया गया है।

आत्रेयी ने फाँसी लगाने का कारण पूछा। चतुरिका ने कहा—आपके मित्र ही कारण हैं। इन्होंने शिला पर जिस स्त्री का चित्र बनाया था उसमें अधिक अनुरक्त होने के कारण इन्होंने मित्रावसु की प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया। अपने इसी अपमान से ईर्ष्या-वश इसने ऐसा किया।

जीमूतवाहन को यह जानकर हर्ष हुआ कि यही विश्वावसु की पुत्री मलयवती है।

आत्रेयी—यदि ऐसा है तो मेरा मित्र निर्दोष है। विश्वास न हो तो आप स्वयं शिला के पास जाकर देख लें।

जीमूतवाहन मलयवती को, हाथ पकड़कर, शिला के पास ले गये। मलयवती अपना ही चित्र अंकित देखकर लज्जित और प्रसन्न हुई।

आत्रेयी—तुम्हारा गांधर्व विवाह हो गया। अब हाथ छोड़ दो। कोई स्त्री शीघ्रता से इधर ही आ रही है।

यह स्त्री एक दासी ही थी, जिसने आकर सूचना दी कि जीमूतवाहन के माता-पिता ने राजकुमारी को अपनी पुत्रवधु बनाना स्वीकार कर लिया। आज ही मलयवती का विवाह निश्चित हुआ है। अतः मित्रावसु ने इन्हें शीघ्र राजभवन में ले चलने की आज्ञा दी है।

प्रेम और लज्जा के साथ जीमूतवाहन को देखती हुई मलयवती राज-भवन की ओर चली गई।

—* ३ *

मदिरा का प्याला हाथ में लिये एक उन्मत्त पुरुष, विचित्र और विह्वल वेष धारण किये, अपनी स्त्री नवमालिका की प्रतीक्षा कर रहा था। कंधे पर मदिरा का कलश रखे एक सेवक उसके साथ था। नवमालिका को न आते देखकर उस उन्मत्त ने सोचा कि पहले पहर में ही मलयवती का विवाह होनेवाला था। फिर वह प्रातःकाल तक भी क्यों नहीं आई? अथवा, विवाहोत्सव में सभी और विद्याधर अपनी स्त्रियों के साथ कुसुमाकर उद्यान में सुरापान करते होंगे। जान पड़ता है कि नवमालिका भी वहीं मेरी प्रतीक्षा करती होगी, सो मैं भी वहीं जाता हूँ।

यह सोचकर शेखरक नाम का वह उन्मत्त पुरुष अपने सेवक के साथ कुसुमाकर उद्यान को गया। वहाँ उसे अकस्मात् आत्रेयी दिखाई पड़ा। आत्रेयी के कंधे पर दो वस्त्र रखे थे। कन्या के

संबंधियों ने जामाता का प्रिय मित्र समझकर उसके सिर पर कल्पवृक्ष के फूलों की माला लपेट दी थी। आत्रेयी का मुँह रंग से रँग दिया गया था। सुगंध के कारण उस पर भौंरे मँडरा रहे थे। विवश होकर मलयवती के दिये हुए दोनों लाल वस्त्रों द्वारा स्त्री का वेष बनाकर वह, चादर से घूँघट काढ़कर, चलने लगा था।

शेखरक ने आत्रेयी को इस वेष में दूसरी ओर जाते देखकर समझा कि मेरे आने में विलंब समझ नवमालिका कुपित होकर दूसरी ओर जा रही है। अतः, अपनी स्त्री को प्रसन्न करने के लिए, शेखरक उसके पास होकर उसके मुख में पान देने लगा। मदिरा की दुर्गंध के कारण आत्रेयी की नाक में दम आ गया। वह कहने लगा—किसी प्रकार एक मधुप (भौंरे) से पीछा छुड़ाकर अब दूसरे 'मधुप' (शराबी) के बंधन में पड़ गया।

“क्रोध-वश मुझसे मुँह क्यों फेरती हो?” कहकर, उसे प्रसन्न करने के लिए, शेखरक अपना सिर उसके पैरों पर रखकर बोला—नवमालिका ! प्रसन्न हो जाओ।

इसी समय किसी कार्य से जाती हुई नवमालिका वहाँ आई। उसे राजकुमारी की माता ने आज्ञा दी थी कि पल्लविका से कहकर तमाल-वाटिका को सजाओ। जामाता के साथ वहाँ मलयवती जायगी। पल्लविका को यह आज्ञा सुनाकर वह लौट रही थी कि उसने शेखरक को देखा। उसे किसी स्त्री को प्रसन्न करते देखकर नवमालिका देखने लगी कि वह स्त्री कौन है।

शेखरक ने जब फिर नवमालिका कहकर पुकारा तब आत्रेयी ने चिढ़कर कहा—अरे दासी-पुत्र ! मतवाले ! नवमालिका यहाँ कहाँ ? दासी नवमालिका ने समझ लिया कि यह आत्रेयी है, जिसे शेखरक ने भ्रम-वश नवमालिका समझ लिया है। नवमालिका ने

कृत्रिम क्रोध से इन दोनों को बनाना चाहा। वह लाल आँखें किये शेखरक के पास आकर बोली—शेखरक ! किसको प्रसन्न कर रहे हो ?

आत्रेयी ने अब घूँघट खोल दिया और कहा—मैं एक अभागा ब्राह्मण हूँ।

आत्रेयी को देखकर शेखरक ने समझा कि यह मेरे साथ झल कर रहा था। इसलिए अपने सेवक को उसे पकड़ने की आज्ञा देकर और स्वयं नवमालिका को प्रसन्न करने के लिए उसके चरणों पर गिर पड़ा।

परंतु नवमालिका ने कहा—शेखरक ! उठो। मैं प्रसन्न हूँ। यह तो जामाता के प्रिय मित्र ब्राह्मण को तुमने बनाया है। यह सुनकर कहीं स्वामी मित्रावसु तुम पर विगड़ें न।

शेखरक ने आत्रेयी को छुड़वा दिया और कहा—आर्य ! मद के वश होकर मैंने अपराध किया है। क्षमा करो।

“मैंने सब क्षमा किया” कहकर आत्रेयी भाग गया।

वहाँ से छुटकारा पाकर आत्रेयी, मधुपों के संसर्ग से दूषित होने के कारण सरोवर में स्नान करने चला गया। कुसुमाकर उद्यान में आत्रेयी अभी जा ही रहा था कि मलयवती का हाथ पकड़े जीमूतवाहन आते दिखाई पड़े। यह वहीं उनकी प्रतीक्षा करने लगा।

जीमूतवाहन ने इसे वहाँ देखकर कहा—मित्र ! तुमने आने में अधिक विलंब कर दिया।

आत्रेयी—मैं शीघ्र ही आ जाता, किंतु विवाहोत्सव में लगे सिद्धों और विद्याधरों को सुरापान करते देखने के कौतूहल से इधर-उधर घूमने में विलंब हो गया।

कुसुमाकर उद्यान से जीमूतवाहन तमाल-वाटिका में गये और

वहाँ मलयवती के साथ स्फटिकमणि की शिला पर बैठ गये। जीमूतवाहन ने प्रेम की तरंग में मलयवती से कहा—भ्रुकुटि-रूपी लता तथा रक्त-अधर-रूपी पल्लव से शोभायमान तुम्हारा यह सुंदर मुख ही मेरे लिए नंदन-वन है। इंद्र का नंदन-वन तो कंटकों से भरा वन-मात्र है।

दासी ने मुस्कराकर आत्रेयी से कहा—सुना, राजकुमारी का कैसा वर्णन किया गया है? आओ, मैं तुम्हारा वर्णन करती हूँ।

आत्रेयी ने यहाँ वर्णन का अर्थ न समझकर कहा—यह मेरा सौभाग्य है कि आप मुझ पर प्रसन्नता दिखलावें, जिससे मुझे यह न सुनना पड़े कि तू लाल मुँहवाला बंदर-सा है।

दासी—विवाह की रात में जागते रहने के कारण दिन में, आँखें बंद कर सोते हुए, तुम मुझे सुंदर दिखाई पड़े थे। सो क्षण-भर तुम वैसी ही अवस्था में तो हो जाओ।

आत्रेयी आँखें बंद करके बैठ गया। दासी ने तमाल का पत्ता लाकर उसके रस से उसका मुँह काला कर दिया। यह देखकर जीमूतवाहन ने कहा—मित्र ! तुम धन्य हो जो हमारे सामने रहते हुए भी इस प्रकार वर्णन किये (रंगे) जा रहे हो। मलयवती भी यह देखकर मुस्कराई।

आत्रेयी—दासी ! तुमने क्या किया है ?

दासी—तुम्हारा वर्णन किया है।

आत्रेयी ने हाथ से मुँह पोंछा और क्रोध से एक लट्ठ उठाकर कहा—अरी दासीपुत्री ! यह राजभवन है। क्या करूँ ? फिर जीमूतवाहन की ओर देखकर कहा—मित्र ! आपके सामने ही इस दासीपुत्री ने मेरा अपमान किया। मेरे यहाँ ठहरने से क्या लाभ ? मैं और कहीं जाता हूँ।

पुसन्न करने के लिए आत्रेयी के पीछे-पीछे दासी भी गई। केवल मलयवती और जीमूतवाहन वहाँ रह गये।

कुछ ही समय के अनंतर उन्हें दासी द्वारा विदित हुआ कि मित्रावसु आ रहे हैं। मलयवती राज-भवन को चली गई।

मित्रावसु ने आकर कहा—मत्तंग ने आपके राज्य पर आक्रमण कर दिया है। आप मुझे उसका नाश करने की आज्ञा दें। मैं उसे युद्ध में मार डालूँगा।

उसके वध की बात सुनकर जीमूतवाहन ने हाहाकार करते हुए कहा—यह बड़ी निर्दयता है। देखो, जो बिना माँगे ही दया करके अपने प्राण भी दे सकता है, वह भला राज्य के लिए जीव-नाश की निर्दयता कैसे सहन कर सकता है! अज्ञान, राग, द्वेष आदि क्लेशों के अतिरिक्त मैं और किसी को अपना शत्रु नहीं मानता। यदि आप मेरा हित करना चाहते हैं तो क्लेशों के दास इस मंद-भाग्य पर दया करें।

मित्रावसु ने इस पर हँसकर अस्वीकृति प्रकट की। जीमूतवाहन उसे भले प्रकार समझाने के लिए भीतर ले गये। इस समय दिन व्यतीत हो चुका था।

—* ४ *

महाराज विश्वावसु का कंचुकी वसुभद्र एक दिन लाल वस्त्र लिये कहीं जा रहा था। मार्ग में उसे प्रतीहार सुनंद मिल गया। सुनंद ने पूछा कि तुम कहाँ जा रहे हो। वसुभद्र ने कहा कि मित्रावसु की माता ने आज्ञा दी है कि मैं दस रात तक मलयवती और जीमूतवाहन के पास लाल वस्त्र ले जाया करूँ। सुना है, इस समय राजकुमारी मलयवती सुसराल में हैं। जामाता जीमूतवाहन, मित्रावसु के साथ, समुद्र-तट पर

भ्रमण करने गये हैं। अब वस्त्र राजकुमारी के पास ले जाऊँ
अथवा जामाता के पास ?

सुनंद—राजकुमारी के पास जाना चाहिए। वहाँ इस समय
तक जामाता लौट आये होंगे।

वसुभद्र—तुम कहाँ जा रहे हो ?

सुनंद—मैं महाराज विश्वावसु की आज्ञा पाकर मित्रावसु से
यह कहने जा रहा हूँ कि दिवाली पर मलयवती और जामाता
को उत्सव के योग्य जो उपहार देना है उस पर, आकर, विचार
करें। सुनंद समुद्र-तट पर चला गया और वसुभद्र अपने कार्य
से दूसरी ओर राजपुत्री के पास गया।

उधर जीमूतवाहन और मित्रावसु समुद्र-तट पर भ्रमण कर
रहे थे।

समुद्र में जब ज्वार-भाटा आनेवाला था, मित्रावसु ने जल
फैलनेवाले मार्ग से हटकर पर्वत-शिखर के समीपवाले मार्ग पर
चलने को कहा। जीमूतवाहन की दृष्टि पर्वत की ओर देखते-देखते
उसके श्वेत शिखरों पर पड़ी। उन्होंने मित्रावसु से कहा—देखो,
शरत्काल में सफेद बादलों से घिरे मलय पर्वत के शिखर हिमालय
के शिखर की-सी शोभा धारण कर रहे हैं।

मित्रावसु—ये मलय पर्वत के शिखर नहीं हैं, ये तो साँपों
की अस्थियों के ढेर हैं।

यह सुनकर जीमूतवाहन को शोक हुआ। उन्होंने पूछा—
हाय ! एक साथ इतनी मृत्युएँ किस कारण हुईं ?

मित्रावसु—इनकी मृत्यु एक साथ नहीं हुई है। इसका
रहस्य सुनिए। सुना है, गरुड़ प्रतिदिन एक नाग को खाया करता
था। समूचे नागलोक के नाश की शंका से एक बार नागराज
वासुकि ने गरुड़ से कहा कि मैं प्रतिदिन एक नाग को समुद्र-तट

पर तुम्हारे पास भेज दिया करूँगा। यह व्यवस्था पक्षिराज गरुड़ ने स्वीकार कर ली। तब से गरुड़ जिन नागों को खाता है उन्हीं की अस्थियों का यह ढेर प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है और बढ़ता रहेगा। हिम के समान शोभायमान उन्हीं अस्थियों का यह ढेर है।

इस वृत्तांत के प्रत्येक अंश को सुन-सुनकर जीमूतवाहन दुःखित होते रहे। उन्हें आश्चर्य हुआ कि सब अपवित्रताओं की खान, कृतघ्न और नष्ट होनेवाले इस शरीर के लिए मूर्ख लोग क्या-क्या पाप करते हैं। फिर कहने लगे कि हाय ! नागों पर यह कैसी भारी विपत्ति पड़ी है। क्या अपने शरीर के बलिदान से मैं एक भी नाग की रक्षा कर सकता हूँ ?

जीमूतवाहन इस प्रकार चिंता में डूबे थे कि प्रतीहार सुनद ने आकर मित्रावसु के कान में कुछ कहा। वह तुरंत अपने पिता के पास चला गया। जाते समय उसने जीमूतवाहन को उस अत्यंत भयानक स्थान पर अधिक देर ठहरने से, रोक दिया। जीमूतवाहन भी उस पर्वत के शिखर से उतरकर समुद्र-तट को देखने लगे।

वहाँ एक ओर से शब्द आया—“हा पुत्र शंखचूड़ ! मैं आज तुम्हारी हत्या कैसे देखूँगी ?”

इस शब्द से जीमूतवाहन चौंक उठे। इसे किसी अबला का विलाप समझकर वे उधर ही चल पड़े।

जीमूतवाहन वहाँ पहुँचकर पूरा वृत्तांत जानने के लिए एक वृत्त की ओट में छिप गये। सामने एक वृद्धा, उसका पुत्र और एक राजपुरुष खड़ा था। राजपुरुष ने कहा—कुमार शंखचूड़ ! नागों के राजा वासुकि आज्ञा देते हैं कि इन दोनों लाल वस्त्रों को पहनकर इस वध्य-शिला पर चढ़ जाओ जिससे तुम्हें लाल वस्त्र के चिह्न से पहचानकर गरुड़, पकड़कर, खा ले।

शंखचूड़ ने सादर वस्त्र लेकर कहा—स्वामी की आज्ञा मेरे सिर माथे !

पुत्र के हाथ में दोनों वस्त्र देखकर वृद्धा छाती पीटते-पीटते मूर्च्छित हो गई।

गरुड़ के आने का समय समीप जानकर राजपुरुष वहाँ से चला गया। शंखचूड़ माता को धीरज देने लगा परंतु वह शोक से व्याकुल होकर प्रलाप करती-करती फिर अचेत हो गई।

इस दृश्य को देखकर जीमूतवाहन करुणा से दब गये। वे शंखचूड़ की रक्षा का विचार करके उसके सम्मुख जाने लगे।

वृद्धा कह रही थी कि पुत्र ! नागलोक के राजा वासुकि ने जब तुम्हें त्याग दिया तब और कौन तुम्हारी रक्षा कर सकता है ?

इसी समय जीमूतवाहन ने सामने जाकर कहा—माता ! भय मत करो। मैं विद्याधर हूँ। तुम्हारे पुत्र की रक्षा के लिए यहाँ आया हूँ।

वृद्धा ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया।

जीमूतवाहन ने अब वध्यचिह्नवाले दोनों लाल वस्त्र माँगे जिससे कि वे अपने को गरुड़ के आगे भेंट कर सकें। परंतु वृद्धा ने कान बंद करके कहा—अमंगल दूर हो ! तुम भी शंखचूड़ के समान, अथवा उससे भी बढ़कर, मेरे पुत्र हो गये हो। तुम उसे वंधुओं से त्यागे जाने पर भी, अपना शरीर दान करके, बचाना चाहते हो।

शंखचूड़ को जीमूतवाहन के शरीर-दान से बड़ा विस्मय हुआ। उसने ऐसे उपकारी व्यक्ति से, अपने जैसे लुद्र जीव के लिए, प्राण-नाश न करने की प्रार्थना की। परंतु जीमूतवाहन ने कहा—बहुत दिनों के पश्चात् यह अवसर मेरे हाथ लगा है।

परोपकार करने के लिए उत्सुक व्यक्ति के कार्य में तुम विघ्न मत डालो । सोच-विचार करना छोड़ो । वध्यचिह्न मुझे दे दो ।

शंखचूड़ ने स्वीकार न किया । गरुड़ के आने का समय समीप जानकर वह, माता के साथ, भगवान् दक्षिण-गोकर्ण की अंतिम प्रदक्षिणा करने चला गया ।

निराश जीमूतवाहन वहाँ खड़े रहे । इतने में वसुभद्र ने उन्हें दो लाल वस्त्र लाकर दिये । जीमूतवाहन की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा । उनकी अभिलाषा पूरी हो गई । उन्होंने समझा कि मलय-वती के साथ मेरा विवाह होना सफल हो गया । फिर रानी को प्रणाम कहने के लिए कहकर वसुभद्र को विदा कर दिया और स्वयं उन वस्त्रों को धारण कर वध्यशिला पर चढ़ गये । वहाँ बैठकर कहने लगे कि “अहा ! इस शिला का कैसा स्पर्श है ! परोपकार के लिए स्पर्श की गई यह वध्यशिला मुझे ऐसा सुख दे रही है जैसा मलयचंदन के रस आदि से भी नहीं मिलता ।” अब गरुड़ को पास आया जानकर जीमूतवाहन ने लाल वस्त्र से शरीर ढक लिया और प्रार्थना की कि नागों की रक्षा करने की इच्छा से मुझे शरीर के दान द्वारा जो पुण्य मिला है उसके प्रभाव से प्रत्येक जन्म में मेरा शरीर इसी प्रकार परोपकार में लगा करे ।

अब गरुड़ ने आकर जीमूतवाहन को पकड़ लिया । आकाश में पुष्प-वृष्टि हुई और नाना प्रकार के बाजे बजने लगे । पुष्प-वृष्टि और बाजों के शब्द से गरुड़ को विस्मय हुआ । वह तनिक सोचकर हँसा और कहने लगा कि मेरे वेग से चलने से उत्पन्न वायु ने कल्पवृक्ष को हिला दिया है जिससे पुष्प-वृष्टि हुई है । और ये प्रलयकाल के मेघ, संसार के संहार की शंका से, गरज रहे हैं ।

जीमूतवाहन ने समझा कि मैं भाग्य से कृतार्थ हो गया । गरुड़ ने उन्हें देखकर सोचा कि नागों की रक्षा करनेवाला यह

श्रेष्ठ नाग है। जान पड़ता है कि नागों के खाने की मेरी अभिलाषा को यह आज दूर कर देगा। यह विचार कर, उन्हें पकड़कर, मलय पर्वत के शिखर पर जी भरकर भोजन करने के लिए गरुड़ चला गया।

—* ५ *—

समुद्र-तट से जीमूतवाहन के लौटने में अधिक विलंब होने से शंकित होकर महाराज विश्वावसु ने सुनंद से कहा—मैंने सुना है कि जामाता उस स्थान पर गये हैं जहाँ गरुड़ के कारण सदैव भय रहता है। तुम शीघ्र पता लगा लाओ कि वे घर लौट गये या नहीं।

सुनंद ने महाराज जीमूतकेतु के पास जाकर कहा—महाराज विश्वावसु ने मुझे आपके पास, जीमूतवाहन का समाचार पूछने के लिए, भेजा है। मैं जाकर स्वामी से क्या निवेदन करूँ ?

जीमूतकेतु—कुमार क्या वहाँ नहीं है ? तो हमारी भोजन-सामग्री के लिए कहीं दूर चला गया होगा।

मलयवती के हृदय में कुछ और शंका होने लगी। जीमूतकेतु की बाईं आँख फड़कने से उन्हें भी शंका हुई। उनका हृदय व्याकुल होने लगा। इतने में स्निग्ध मांस और बालों के साथ एक चूड़ामणि उनके चरणों पर ही आकाश से गिरी। उसे देखकर जीमूतवाहन की माता दुःखित होकर कहने लगी—यह तो मेरे पुत्र की ही चूड़ामणि है।

सुनंद—आप ऐसा समझकर व्याकुल न हों। यहाँ तो गरुड़ के खाये हुए नागों के सिरों की मणियाँ इस प्रकार गिरा ही करती हैं।

शुद्धा ने सुनंद से कहा—अब तक मेरा पुत्र ससुर के घर आ गया होगा। जाओ, पता लगाकर हमें शीघ्र सूचना दो।

सुनंद अपने स्वामी के घर लौट गया। इतने में ही शंखचूड़ रोता हुआ सामने जाता दिखाई पड़ा। समुद्र-तट पर स्थित गोकर्णेश्वर को शीघ्र प्रणाम करके शंखचूड़ जब वध्यशिला पर लौटा था तब उसने देखा था कि गरुड़ नखों से उस विद्याधर की छाती फाड़ करके उसे आकाश में ले गया था। तब शंखचूड़ रोने लगा था और उसी महानुभाव का पीछा करने की इच्छा से उसकी रक्त-धारा को देखता हुआ जाते-जाते जीमूतकेतु के सामने पहुँच गया था।

उसे शोक से व्याकुल हो रहे की नाईं रोते देखकर जीमूतकेतु की स्त्री ने कहा—पता लगाइए, यह कौन है।

जीमूतकेतु ने जब शंखचूड़ के निकट जाकर उसके दुःख का कारण पूछा तब उसने कहा—मैं शंखचूड़ नाम का नाग हूँ। मुझे वासुकि ने गरुड़ के भोजन के लिए भेजा है; परंतु किसी दयालु विद्याधर ने अपने प्राण देकर मेरे प्राणों की रक्षा की है।

जीमूतकेतु समझ गये कि यह दयालु जीमूतवाहन ही होगा। वे शोक से कहने लगे कि हाय मैं नष्ट हो गया। उनकी स्त्री भी 'हाय पुत्र! हाय पुत्र!' कहकर विलाप करने लगी। मलयवती ने कहा कि हाय! मेरी शंका सच निकली। शोक से व्याकुल होकर तीनों मूर्च्छित हो गये।

इन्हें इतने शोक-ग्रस्त देखकर शंखचूड़ समझ गया कि ये उसी परोपकारी के माता-पिता आदि हैं। उसे अब और भी दुःख हुआ कि ऐसे परोपकारी के माता-पिता का प्रत्युपकार करने के बदले मैंने इन्हें मूर्च्छित कर दिया।

शंखचूड़ अब इन्हें सचेत करने के लिए यत्न करने लगा।

चेत आते ही ये लोग फिर विलाप करने लगे । जीमूतकेतु चूड़ामणि लेकर विलाप करने लगे । उन्होंने कहा कि हम उसके बिना कैसे जीवन धारण कर सकते हैं ? मलयवती ने वह चूड़ामणि लेकर जल मरने की इच्छा की । माता को भी जीवन भार-सा था । जलमरने का निश्चय करके जीमूतकेतु यज्ञशाला से आग लेने गये ।

शंखचूड़—तात ! बिना निश्चय किये ऐसा साहस न करना चाहिए । भाग्य की विचित्र माया है । बहुत संभव है कि उन्हें, नाग न जानकर, गरुड़ छोड़ दे । सो चलिए, इस रुधिर को धारा को देखते हुए गरुड़ के पीछे चलें ।

जीमूतकेतु—वत्स ! तुम्हारी वाणी सत्य हो । तब भी आग को साथ लेकर ही हमारा चलना ठीक है । सो आप चलें, हम भी आग लेकर शीघ्र पहुँचते हैं ।

जीमूतकेतु, अपनी स्त्री और मलयवती के साथ आग लाने के लिए चले गये । शंखचूड़ रुधिर धारा के पीछे-पीछे चलता हुआ जाने लगा ।

उधर जीमूतवाहन को खाते समय गरुड़ को प्रतीत हुआ कि यह भक्ष्य न केवल पोड़ा रहित दिखाई पड़ता है वरंच प्रसन्न भी है । इसका रक्त पिये जाने पर भी इसका धैर्य नहीं टूटता । मांस के काटने से उत्पन्न पीड़ा को सहते हुए भी यह प्रसन्न है । ऐसे उपकारी का वृत्तांत जानने की गरुड़ को उत्सुकता हुई । उसने जीमूतवाहन को खाना छोड़कर पूछा—तुम कौन हो ?

जीमूतवाहन ने गरुड़ को खाने से उदासीन देखकर कहा—नाड़ियों से अभी तक रक्त निकल रहा है; मेरी देह में अभी मांस विद्यमान है; आपकी वृत्ति भी अभी तक नहीं हुई । गरुड़ ! आपने भोजन करना क्यों छोड़ दिया ?

इस पन्न से गरुड़ और भी विस्मित होकर पृष्ठने लगा—अहो महा-सत्त्व ! मैंने चोंच से तुम्हारा रक्त निकाला है परंतु तुमने तो अपने धैर्य से मेरा हृदय ही निकाल लिया है । मैं जानना चाहता हूँ कि तुम कौन हो ।

जीमूतवाहन—लुधा को शांत किये बिना आप मेरा वृत्तांत न सुनें । पहले मेरे मांस और रक्त से तृप्ति कर लीजिए ।

इतने में शंखचूड़ शीघ्र पास जाकर बोला—गरुड़ ! ऐसा मत करो । यह नाग नहीं है, इसे छोड़ दो । मुझे खाओ । तुम्हारे भोजन के लिए वासुकि ने मुझे भेजा है ।

शंखचूड़ को देखकर जीमूतवाहन ने दुःख से मन-ही-मन कहा हाय ! इसने आकर मेरा मनोरथ विफल कर दिया ।

गरुड़ ने दोनों के पास वध्यचिह्न देखकर कहा—मैं नहीं जानता कि तुम दोनों में से कौन नाग है ।

शंखचूड़—यह देखो, मेरे शरीर पर केंचुली है, दो जिह्वाएँ हैं, फन है । अतएव मैं ही नाग हूँ । ये तो विद्याधर वंश के भूषण जीमूतवाहन हैं ।

ये विद्याधर जीमूतवाहन हैं, यह सुनकर गरुड़ को पश्चात्ताप हुआ । उसने सब प्रकार से अपने को पापमय कीचड़ में फँसा समझा । महापाप के प्रायश्चित के लिए आग में भस्म हो जाने के अतिरिक्त उसे और कोई उपाय न सूझा । परंतु जलने के लिए आग की आवश्यकता थी । वह इधर-उधर अग्नि के लिए दृष्टि दौड़ाने लगा । इतने में उसे कोई पुरुष आग लेकर आता दिखाई पड़ा । वह उसकी प्रतीक्षा में ठहर गया ।

जीमूतकेतु आदि जब दिखाई देने लगे तब शंखचूड़ ने जीमूतवाहन से कहा—कुमार ! आपके माता-पिता आ गये ।

जीमूतवाहन ने शंखचूड़ से कहा—इस चादर से ढककर मुझे

पकड़े रहो; नहीं तो मेरी यह दशा देखकर मेरे माता-पिता कहीं प्राण न त्याग दें।

इतने में अपनी स्त्री और पुत्रवधू के साथ जीमूतकेतु रोते हुए 'हा पुत्र ! हा वत्स !' कहते वहाँ आ गये।

जीमूतकेतु को कुमार का पिता जानकर गरुड़ लज्जित हुआ। उसने अपने को बड़वानल में जला देना ठीक समझा। इस अभिप्राय से वह उड़ने लगा तो कुमार ने कहा—हे पक्षिराज ! इस विचार को छोड़ दो। यह पाप का प्रतिकार नहीं है।

गरुड़ घुटने टेककर, हाथ जोड़कर, कुमार के पास बैठ गया। उसने पूछा—महात्मा ! आप कौन हैं ?

कुमार—क्षण भर ठहरो। मेरे माता-पिता आये हैं। इन्हें प्रणाम कर लूँ।

कुमार के पास गरुड़ को इस प्रकार बैठा देखकर जीमूतकेतु ने पुत्र की कुशल समझी; माता ने अपने को भाग्यवती समझा। परंतु मलयवती को इस पर विश्वास न हुआ। जीमूतकेतु ने, पास जाकर, पुत्र से आलिंगन करने को कहा। कुमार उठने लगे तो मूर्च्छित हो गये। उन्हें मूर्च्छित देखकर शोकग्रस्त सब लोग अचेत हो गये। गरुड़ ने अपने पंखों से पंखा कर कुमार को सचेत किया। शंखचूड़ ने कुमार के माता-पिता को सावधान किया। जीमूतकेतु के कहने पर माता अब मलयवती को ढाढ़स बंधाने लगी परंतु उसे शोक ने घेर रक्खा था। माता स्वयं दुःखित होकर, पुत्र के शरीर को देखकर, गरुड़ से कहने लगी—कर ! नवयौवन की शोभा से युक्त मेरे पुत्र के शरीर की तने कैसी दशा कर डाली ?

कुमार जीमूतवाहन ने तब भी कहा—माता ! मैंने ही ऐसा किया है। इसने कुछ नहीं किया। यह शरीर पहले भी ऐसा

ही था। सुदा नीभत्स दिखाई देनेवाले शरीर में—खचा के भीतर छिपे हुए मेढ़ा, भज्जा, रक्त-मांस और हड्डियों के ढेर में—भला शोभा कैसी ?

ऐसे अत्युत्तम वचन सुनकर गरुड़ अपने को नरक की अग्नि में जला हुआ-सा समझने लगा। वह कुमार से प्रार्थना करने लगा कि पाप-नाश के लिए उपदेश दीजिए।

कुमार—“प्रतिदिन प्राणियों की हिंसा करना छोड़ो। पहले किये हुए पापों के लिए पश्चात्ताप करो।”

गरुड़ ने यह स्वीकार कर लिया।

कुमार ने शंखचूड़ से धर लौट जाने को कहा, पर वह नीचे मुख किये खड़ा रहा।

कुमार को अब मर्म-भेदी पीड़ा होने लगी। उन्हें मृत्यु पास दिखाई देने लगी। अंग शिथिल होने लगे। कुमार ने माता-पिता को अंतिम प्रणाम किया। माता-पिता विलाप करने लगे। शंखचूड़ भी कुमार के साथ मरने को तैयार हो गया। कुमार को मरते देखकर गरुड़ को भी अत्यंत शोक हुआ। वह सोचने लगा कि क्या करूँ।

इसी समय विलाप करती हुई माता ने इंद्र से अमृत-वर्षा करने के लिए प्रार्थना की। गरुड़ को भी अमृत का ध्यान आ गया। वह अमृत-वर्षा के लिए उड़ गया।

जीमूतकेतु ने शंखचूड़ से कहा—अब विलंब किसलिए ? लकड़ियाँ लाकर मेरे पुत्र के लिए चिता बनाओ जिससे हम सब एक साथ ही प्राण-त्याग करें।

शंखचूड़ ने चिता बना दी। सब उस पर चढ़ने लगे।

मलयवती ने हाथ जोड़कर, ऊपर देखकर, कहा—भगवती गौरी ! आपने आज्ञा दी थी कि “तेरा पति विद्याधरों का चक्रवर्ती

होगा।” सो मुक्त अभागिन के लिए तुम्हारे वचन मिथ्या हो गये !

अब शीघ्र ही गौरी प्रकट हो गई । उन्होंने महाराज को ऐसा दुःसाहस करने से रोका । फिर कमंडलु से जल लेकर कुमार पर छिड़क दिया । कुमार उठ खड़े हुए । सबने धन्यवाद देकर गौरी की चरण-वंदना की ।

इतने में बादलों के बिना ही वृष्टि होने लगी । गौरी ने बताया कि पश्चात्ताप से संतप्त गरुड़ ने, जीमूतवाहन और अस्थि-शेष नागों को फिर जीवित करने के लिए, अमृत-वर्षा की है ।

अमृत-वर्षा होते ही अस्थि शेष नाग, देह धारण करके, जल्दी से समुद्र में जाने लगे ।

गौरी ने प्रसन्न होकर, विद्याधरों का चक्रवर्ती राजा बनाने के लिए, जीमूतवाहन का राज्याभिषेक किया । सब प्रकार से आनंद छा गया ।



रत्नावली

—* १ *—

महाराज उदयन प्राचीन समय में वत्स देश के प्रसिद्ध राजा थे । कौशांबी उनकी राजधानी थी । राजा प्रद्योत की कन्या वासवदत्ता उनकी पटरानी थीं । स्वामि-भक्त यौगंधरायण उनका प्रधान-मंत्री था ।

मंत्री यौगंधरायण ने एक दिन एक पद सुना—

“द्वीपांतर से, उदधि-गर्भ से, अन्य दिशा से लाकर;
होकर दैव प्रसन्न मिलाता है संयोग मधुरतर ॥”

इस पद के आशय से यौगंधरायण भी सहमत था । उसने कहा—नहीं तो कहाँ तो सिद्ध के वचन पर विश्वास करके माँगी हुई सिंहलेश्वर की कन्या, कहाँ समुद्र में जहाज टूट जाने पर उक्त राजकुमारी का लकड़ी के तख्ते को पाना, कहाँ कौशांबी के व्यापारी की सिंहलदेश से लौटते हुए उस समय उपस्थिति, और रत्नमाला की पहचान से उस राजकन्या का यहाँ तक लाया जाना ! फिर कुछ सोचकर यौगंधरायण ने कहा—इसे रानी वासवदत्ता के हाथ में सादर सौंपकर ठीक ही किया है; क्योंकि मैंने सुना है कि बाभ्रव्य कंचुकी भी सिंहलेश्वर के अमात्य वसुभूति के साथ किसी प्रकार समुद्र से तैरकर, कोशल देश के नारा के लिए जाते

हुए, रुमणवान् से मिल गये हैं। अब तो महाराज उदयन के सब मनोरथ प्रायः पूरे ही हो गये हैं।

उधर राजभवन के ऊपर इसी समय राजा उदयन 'मदन-महोत्सव' देखने आ गये। उनके साथ उनका मित्र वसंतक था। राजभवन के नीचे प्रजाजन राग-रंग में उन्मत्त थे। केसर के चूर्ण तथा गंध-द्रव्य आदि के उड़ाये जाने से कौशांबी नगरी चारों ओर से पीली हो रही थी। फुड़ारे और पिचकारियों से एक-दूसरे पर रंग की वर्षा की जा रही थी। गुलाल उड़ाये जाने से अंध-कार-सा छा रहा था।

इस दृश्य को राजा और वसंतक प्रसन्नता से देख रहे थे कि मदनिका दासी ने आकर महाराज से कहा—महारानी निवेदन करती हैं कि आज मकरंद उपवन में जाकर, रक्त-अशोक के नीचे स्थापित, भगवान् कामदेव की मैं पूजा करूँगी। अतः महाराज मेरे साथ वहाँ रहें।

महाराज ने प्रसन्न होकर कहलवा दिया कि मैं मकरंद उपवन में आता हूँ। दासी उत्तर पाकर चली गई।

अब राजा उदयन और वसंतक मकरंद उपवन की ओर गये। थोड़ी देर में रानी वासवदत्ता और सखी कांचनमाला भी मकरंद उपवन में आ पहुँचीं। चंदनमाला आदि लिये सागरिका और दासियाँ साथ थीं। कांचनमाला ने रानी का ध्यान, राजा की लगाई हुई निरंतर फूलों से शोभायमान, माधवी लता की ओर दिलाया। इसके पास ही नवमालिका लता थी जिसको अकाल-पुष्पों की प्राप्ति की इच्छा से महाराज प्रतिदिन देखने जाया करते थे।

रानी ने रक्त-अशोक के नीचे पूजा की सामग्री लाने का कहा। सागरिका ने कहा—महारानी ! सामग्री सब तैयार है।

सागरिका को देखकर वासवदत्ता ने मन-ही-मन कहा कि सखियों का अज्ञान तो देखो ! जिनकी दृष्टि से यत्नपूर्वक छिपाई जाती है उन्हीं के सामने यह विद्यमान है। यह विचारकर रानी ने कहा—सखी सागरिका ! आज 'भदन-महोत्सव' में सखियों के लगे रहने से तुम सारिका को क्यों छोड़ आई हो ? शीघ्र जाओ। पूजा की सब सामग्री कांचनमाला को दे दो।

कांचनमाला को पूजा की सामग्री सौंपकर सागरिका चली गई और सोचने लगी कि सारिका तो मैंने सुसंगता को सौंप दी थी। मुझे यह देखने का कौतूहल है कि पितृगृह में भगवान् अनंगदेव जैसे पूजे जाते हैं वैसे ही यहाँ भी पुजते हैं, अथवा दूसरी प्रकार से। यह विचारकर वह, अदृश्य रूप से, उत्सव देखने लगी और भगवान् कामदेव की ही पूजा के लिए फूल भी चुनने लगी।

उधर रानी ने कांचनमाला से रक्त-अशोक के नीचे भगवान् कामदेव को स्थापित करने के लिए कहा। कांचनमाला ने वैसा ही कर दिया। नूपुर-शब्द अब बंद हो गया। इससे वसंतक ने समझा कि रानी अशोक वृक्ष के नीचे पहुँच गईं।

राजा उदयन और वसंतक भी रक्त-अशोक के पास आ गये। रानी ने महाराज को आसन पर बैठाया और भगवान् कामदेव की पूजा करने के लिये अशोक की ओर हाथ बढ़ाया। पूजा करके रानी ने, पुष्प-चंदन लेकर, महाराज का पूजन किया।

सागरिका जब फूल चुन चुकी तो सिंधुवार वृक्ष के पीछे छिपकर कामदेव की पूजा देखने लगी। उसने पूजा देखकर कहा—कैसे प्रत्यक्ष भगवान् कामदेव ही पूजा को ग्रहण कर रहे हैं ! हमारे पिता के अंतःपुर में तो चित्रलिखित कामदेव पूजे जाते हैं। सो मैं भी यहीं बैठकर इन फूलों से भगवान् कामदेव को पूजती हूँ।

अब सागरिका ने उनके लिए फूल फेंककर कहा—भगवान् कामदेव ! प्रणाम है । आपका दर्शन मुझे अब लाभदायक सिद्ध हो ! दर्शनीय को मैंने देख लिया ।

फिर औरों की दृष्टि से बचने के लिए सागरिका भवन की ओर जाने लगी तो उसी समय, वैतालिक द्वारा गाई हुई, राजा की स्तुति सुन पड़ी । सागरिका लौट आई और उत्सुकता से महाराज को देखकर कहने लगी कि ये तो राजा उदयन हैं, जिन्हें पिता ने मेरा दान किया है । फिर गहरी साँस लेकर कहने लगी कि पर-सेवा से दूषित मेरा जीवन, इनके दर्शन द्वारा सफल हो गया ।

अब संध्या का समय देखकर राजा और रानी वासवदत्ता आदि सब राजभवन को जाने के लिए चले । सागरिका भी शीघ्रता से राजभवन को जाने लगी । उसके हृदय में यही खेद था कि वह महाराज के दर्शन यथेच्छ न कर सकी ।

—* २ *

रानी वासवदत्ता की एक सखी सुसंगता थी । उसका सागरिका पर आधिक प्रेम था । एक दिन सागरिका सागरिका को सुसंगता के हाथ सौंप गई । उसे देर तक न आते देख सुसंगता चिंतित होकर उसे ढूँढ़ने लगी । निपुणिका से उसे विदित हुआ कि उसने व्याकुल-सी सागरिका को चित्रपट, कूँची और रंगों का डिब्बा लिये कदली-गृह को जाते देखा है । सुसंगता ने कदली-गृह में जाकर देखा कि सागरिका, बड़े अनुराग से, कुछ अंकित कर रही है । सागरिका ने उसे आते नहीं देखा । उसकी दृष्टि से सुसंगता देखने लगी कि वह क्या अंकित कर रही है । महाराज का चित्र देखने पर उसे आश्चर्य हुआ । वह मन-ही-मन कहने

लग्गि कि मैने यह बना तो लिया है। परंतु निरंतर टपक रहे आँसुओं से मेरी दृष्टि इसे देख नहीं पाती।

अब सागरिका ने मुँह ऊँचा करके आँसू पोंछे तो सुसंगता को देखकर वस्त्र से रंग का डिब्बा छिपा लिया और मुस्कराकर कहा—कौन ? प्रिय सखी सुसंगता ! आओ, बैठो।

सुसंगता ने पास बैठकर चित्र छीन लिया और पूछा—सखी ! यह क्या बनाया है ?

सागरिका ने लज्जा से कहा—‘मदन-महोत्सव’ के दिन भगवान् कामदेव—

सुसंगता ने हँसकर कहा—धन्य तेरी निपुणता ! यह चित्र अधूरा-सा क्यों जान पड़ता है ? मैं भी इसे रति सहित किये देती हूँ।

कूची लेकर सुसंगता ने, रति बनाने के बहाने, सागरिका का पूरा चित्र बना दिया।

इस चित्र को देखकर सागरिका ने क्रोध से कहा—सुसंगता ! मेरा चित्र क्यों बना दिया ?

सुसंगता ने हँसकर कहा—सखी ! अकारण क्यों क्रोध करती हो ? जैसे तुमने कामदेव का चित्र खोंचा है, वैसे मैंने भी रति बना दी है।

सागरिका ने समझ लिया कि सखी मुझे ताड़ गई है ! सो वह सुसंगता का हाथ पकड़कर कहने लगी—प्रिय सखी ! मुझे सचमुच बड़ी लज्जा है। ऐसा करो जिससे कोई दूसरा इस वृत्तांत को न जान ले।

सुसंगता—सखी ! लज्जा मत करो। ऐसे कन्य-रत्न की अवश्य ऐसे घर में अभिलाषा होनी चाहिए। तब भी कोई दूसरा इस वृत्तांत को न जानने पावेगा। परंतु इस चतुर सागरिका

से सावधान रहना । कहीं वह इस वार्त्तालाप के शब्द रटकर किसी के आगे न कह दे ।

सागरिका को प्रेम में अत्यंत व्याकुल देखकर सुसंगता ने धीरज दिया; परंतु इतने में ही साईसों से छूटा हुआ बंदर उत्पात मचाता इधर आ निकला । भयभीत सुसंगता और सागरिका तमाल-वृक्ष की ओट में भाग गईं । चित्रपट वहीं पड़ा रह गया । बंदर ने सारिका का पिंजड़ा खोल दिया । वह पिंजड़े से निकल गई ।

सारिका को पिंजड़े से निकली देखकर वे दोनों शीघ्र ही उसके पीछे गईं । उन्हें भय था कि हमारे वार्त्तालाप के ग्रहण किये हुए कुछ शब्दों को पकड़कर यह किसी के सामने दुहरा न दे ।

इनके जाते-जाते वसंतक इधर आ निकला । वह विस्मित होकर कहने लगा कि श्रीखंडदास धर्मात्मा ! तुम धन्य हो । तुम्हारे द्वारा इस नवमालिका की अभिज्ञापा पूर्ण होते ही यह ऐसी हो गई कि निरंतर पुष्पों के गुच्छों से लदी हुई इसकी शाखाएँ रानी वासवदत्ता की माधवी लता पर हँसने-सी लगी हैं ।

उधर राजा नवमालिका का वृत्तांत जानने के लिए उत्सुक हो रहे थे । वसंतक से मंत्रौषधि का प्रभाव सुनकर वे साथ चल पड़े । वहाँ उद्यान में पहुँचे तो एक वृक्ष की शाखा पर बैठी चतुर सारिका बोल रही थी । राजा और वसंतक ने उसका शब्द सुना ।

सारिका ने सुसंगता और सागरिका के वार्त्तालाप के जो शब्द सुने थे उन्हीं को वह दुहरा रही थी । वसंतक ने ध्यान से सुनकर कहा कि मित्र ! यह तो कहती है—सुसंगता मेरा चित्र क्यों बना दिया ? सखी ! अकारण क्यों क्रोध करती हो ? जैसे तुमने कामदेव का चित्र खींचा है, वैसे मैंने भी रति बना दी है ।

राजा—मित्र ! मैं समझता हूँ कि किसी ने अपने हृदयदेव को अनुराग से कामदेव के बहाने चित्र बनाकर सखी के सामने छिपा दिया। उस सखी ने भी जानकर चतुरता से उसी को वहाँ पर, रति के बहाने, चित्र खींच दिया।

यह तर्क वसंतक को भी ठीक ज़ुचा।

फिर दोनों सारिका का शब्द सुनने लगे। सारिका का शब्द सुनकर वसंतक ने कहा कि मित्र ! यह कहती है—सखी ! लज्जा मत करो। ऐसे कन्या-रत्न की अवश्य ऐसे वर में अभिलाषा होनी चाहिए। सो मित्र ! उस चित्रित कन्या को अवश्य देखना चाहिए। उसने आपको ही कामदेव के बहाने छिपाया है।

अब वसंतक, ताली बजाकर, जोर से हँस पड़ा। सारिका उड़कर कदली-गृह में चली गई। ये दोनों भी वहाँ पहुँचे। वहाँ वसंतक की दृष्टि उस चित्रपट पर पड़ गई। उसमें राजा का चित्र देखकर वसंतक को विस्मय हुआ। वह राजा से कहने लगा—यह तुम्हारा ही चित्र है। कामदेव के बहाने और कौन भला छिपाया गया है ? यह देखो, साथ में कन्या का भी चित्र है।

चित्र देखकर राजा मुग्ध हो गये। उसकी रचना की प्रशंसा करने लगे। इतने में सुसंगता और सागरिका यहाँ चित्रपट लेने आ गई।

वसंतक का शब्द सुनकर सुसंगता ने कहा—सखी ! तुम्हारा भाग्य खुल गया। यह तुम्हारा हृदयदेव तुम्हारा ही वर्णन कर रहा है।

सागरिका लज्जा से मुँह नीचा करके कहने लगी—परिहास के स्वभाव से मुझे क्यों लज्जित करती हो ?

वहाँ फिर शेष वार्त्तालाप सुनकर सुसंगता को निश्चय हो गया

कि राजा सागरिका के लिए बहुत उतावले हो रहे हैं। वह सागरिका से चित्रपट लाने के लिए कहकर राजा के पास चली गई।

उसे देखते ही राजा ने चित्रपट छिपाकर पूछा—सुसंगता ! तुमने यह कैसे जाना कि मैं यहाँ बैठा हूँ।

सुसंगता ने हँसकर कहा—महाराज ! केवल आपको ही नहीं, वरंच इस चित्रपट के साथ-साथ सब वृत्तांत को भी मैंने जान लिया है। सो जाकर रानी से निवेदन करती हूँ।

अब सुसंगता जाने लगी। वसंतक ने राजा को उसे पारितोषिक देने की मंत्रणा दी। राजा ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—सुसंगता ! यह तो निरा मंतोविनोद है। बिना कारण तुम्हें रानी को कष्ट न देना चाहिए। यह लो अपना पारितोषिक।

राजा ने उसे कर्णाभरण दे दिया। सुसंगता ने प्रणाम करके मुस्कराकर कहा—महाराज ! आप शंका न करें। मैंने भी आपकी प्रसन्नता के लिए यह खेल किया है। सो कर्णाभरण से क्या ? मेरे लिए तो यही उत्तम पारितोषिक है कि मेरी सखी सागरिका को आप जाकर मना लें। उसका चित्र मैंने बना दिया है और वह इसी कारण मुझ पर बिगड़ रही है।

राजा ने शीघ्र उठकर कहा—वह है कहाँ ?

सुसंगता उन्हें अपने साथ लेकर सागरिका के पास गई। उसके कहने से राजा ने सागरिका का हाथ पकड़ लिया।

यह देखकर वसंतक ने कहा—अरे ! यह तुम्हें अपूर्व लक्ष्मी मिली।

राजा—मित्र ! सत्य है। यह लक्ष्मी है। यदि इसके हाथ कल्पवृक्ष के पल्लव नहीं हैं तो पसीने के बहाने यह अमृतरस कहाँ से टपकता है ?

सुसंगता—सखी ! तू बड़ी निठुर है जो महाराज के इस प्रकार हाथ पकड़ने पर भी क्रोध नहीं छोड़ती ।

सागरिका ने भौंहें चढ़ाकर कहा—अरी सुसंगता ! तू अब भी चुप नहीं होती ?

राजा—अजी प्रसन्न हो जाओ ! सखियों से इस प्रकार अधिक क्रोध करना ठीक नहीं ।

वसंतक—यह दूसरी रानी वासवदत्ता है । *Hum १५५*

राजा ने चकित होकर सागरिका का हाथ छोड़ दिया । सागरिका और सुसंगता भी भयभीत होकर चली गई ।

राजा ने पूछा—मित्र ! रानी वासवदत्ता कहाँ हैं ?

वसंतक—मैं नहीं जानता । मैंने तो इसका अधिक क्रोध देखकर कहा था 'यह दूसरी रानी वासवदत्ता है ।'

राजा—चल मूर्ख ! भाग्य से वह किसी प्रकार मिल गई थी, सो तूने मेरे हाथ से खो दी ।

इसी समय अकस्मात् रानी वासवदत्ता, सखी कांचनमाला के साथ, आ गईं । वे महाराज की लगाई हुई नवमालिका के देखने को उत्सुक थीं । महाराज के वार्त्तालाप का शब्द सुनकर वे उनके पास ही आ पहुँचीं ।

रानी ने राजा को प्रणाम किया । राजा ने वसंतक से चित्र छिपाने को कहा । उसने काँख में चित्र छिपाकर चादर ओढ़ ली ।

१५५ रानी—महाराज ! क्या नवमालिका फूली ?

राजा—पहले यहाँ आकर भी हमने, तुम्हारे आने में विलंब हो जाने के कारण, उसे देखा नहीं है । आओ, तुम्हारे साथ ही देख लें ।

रानी ने राजा की ओर देखकर कहा—आपके मुँह के रंग ही मैंने जान लिया है कि नवमालिका फूल चुकी है । अब मैं न जाऊँगी ।

यह सुनकर “अहह ! तो हम जीते” कहकर वसंतक बाँहें फैलाकर नाचने लगा । नाचते समय उसकी काँख में से चित्रपट गिर पड़ा । कांचनमाला ने चित्र उठाकर देखा और रानी को दिखाया । चित्र को देखकर वासवदत्ता ने कहा—कांचनमाला ! ये तो महाराज हैं और यह है सागरिका । फिर राजा से क्रोध और हास्य से कहा—महाराज ! यह चित्र किसने बनाया है ?

राजा ने वसंतक की ओर देखा । उसने कहा—महारानी ! और कुछ मत सोचिए । ‘अपना चित्र कठिनता से बनाया जाता है ।’ मेरा यह वचन सुनकर मित्र ने यह चित्र बनाकर अपनी चतुराई दिखाई है ।

राजा—वसंतक का कहना सच है ।

वासवदत्ता ने चित्र दिखाकर कहा—तो आपके चित्र के पास जो दूसरा चित्र बना है, वह क्या श्री वसंतक की चतुराई है ?

राजा ने मुस्कराकर कहा—रानी ! कुछ और शंका मत करो । कल्पना करके किसी ऐसी कन्या का चित्र बना दिया है जिसे पहले देखा ही नहीं ।

वसंतक—महारानी ! यह ठीक है । मैं यज्ञोपवीत की शपथ लेता हूँ । ऐसी स्त्री हमने कभी नहीं देखी ।

कांचनमाला ने एकांत में कहा—महारानी ! धुरात्तर-न्याय से ऐसा हो सकता है ।

रानी ने एकांत में कहा—अरी भोली-भाली ! यह वसंतक है । तू इसकी टेढ़ी बातों को नहीं जानती ।

वासवदत्ता राजा से शिर-पीड़ा का बहाना बनाकर जाने लगीं तो राजा ने उनका अंचल पकड़कर कहा—यदि प्रसन्न हो जाओ कहता हूँ तो क्रोध के न होने पर यह कहना ठीक नहीं और यदि यह कहूँ कि फिर ऐसा न करूँगा तो अपराध की

स्वीकृति होती है। यदि कहूँ कि मेरा दोष नहीं तो असत्य मानोगी। मैं नहीं जानता कि क्या कहना चाहिए।

वासवदत्ता ने तब विनय से अंचल छुड़ाकर कहा—महाराज ! कुछ और मत समझिए। मुझे सचमुच शिर-पीड़ा व्याकुल कर रही है।

बस, रानी वासवदत्ता चली गई। उन्हें प्रसन्न करने के लिए राजा भी राजभवन की ओर चले गये।

—* ३ *—

वसंतक ने सुसंगता दासी से कहा—सुसंगता ! सागरिका के अतिरिक्त मेरे मित्र की अस्वस्थता का कारण और कुछ नहीं है। सो उसका उपाय सोचो।

सुसंगता—आज चित्रपट के वृत्तांत की शंका से सागरिका को मेरे हाथ में सौंपकर मुझे जो एकांत में पारितोषिक दिया है उसी से सागरिका को रानी के वेष में लेकर मैं, स्वयं कांचनमाला का वेष धारण कर, सायंकाल यहाँ आऊँगी। तुम भी यहीं, चित्रशाला के द्वार पर, प्रतीक्षा करना। फिर माधवी-लता-मंडप में उसके साथ राजा की भेंट होगी।

कांचनमाला ने इनकी यह मंत्रणा सुन ली और जाकर रानी से कह दिया।

इधर प्रसन्न होता हुआ वसंतक राजा के पास पहुँचा। उससे सब वृत्तांत सुनकर राजा प्रसन्न हुए। अपने हाथ से बाजूबंद उतारकर उन्होंने उसे पारितोषिक में दे दिया। वे, सायंकाल के समय, माधवी-लता-मंडप को चल पड़े। अंधेरा छा जाने से मार्ग भ्रम, घने वृत्तों के कारण, और भी अंधकार हो रहा था। वहाँ पहुँचकर राजा मरकत-मणि की शिला पर बैठ गये। महारानी के

वेष में सागरिका को लेने के लिए वसंतक गया। राजा घबड़ाहट से उसके लौटने की प्रतीक्षा करने लगे।

इसी समय वहाँ रानी वासवदत्ता और कांचनमाला आ गईं। ये जब चित्रशाला के द्वार पर पहुँच गईं तब कांचनमाला ने संकेत से वसंतक को बुलाया।

प्रसन्नता से पास आकर वसंतक मुस्कराहट से कहने लगा—सुसंगता ! तुमने कांचनमाला का वेष बहुत ठीक बनाया। सागरिका कहाँ है ?

कांचनमाला ने रानी की ओर अँगुली उठाई। उधर देखकर वसंतक ने विस्मय से कहा—ये तो प्रत्यक्ष रानी वासवदत्ता हैं।

वासवदत्ता ने समझा कि क्या मैं पहचान ली गई ?

वसंतक—सागरिका ! शीघ्र इधर आओ। पूर्व दिशा में चंद्रमा का उदय हो रहा है !

वासवदत्ता और कांचनमाला उसके साथ राजा की ओर गईं। पास जाकर वसंतक ने कहा—मित्र ! मैं सागरिका को ले आया। राजा ने प्रसन्न होकर, सहसा उठकर, कहा—मित्र ! कहाँ है ? वसंतक—यह है।

राजा ने पास जाकर कहा—चंद्रमुखी प्रिय सागरिका ! तुम निःशंक होकर सप्रेम वार्त्तालाप द्वारा हमें शांत करो।

वासवदत्ता केवल आँसू बहाती हुई खड़ी रहीं।

वसंतक—सागरिका ! शांत होकर महाराज से बातचीत कर लो। सदा रोष करनेवाली रानी वासवदत्ता के तीखे वचनों से अब भी इनके कान पीड़ित हैं; तुम्हारे मधुर वचनों का प्रस्ताव अब इन्हें सुखी करे।

यह सुनकर वासवदत्ता ने दासी से एकांत में कहा—कांचनमाला ! मैं ऐसी कटुभाषिणी हूँ और वसंतक प्रियवादी है।

वसंतक—मित्र ! देखो, कुपित स्त्री के गालों के समान भगवान् चंद्रमा पूर्व दिशा को प्रकाशित करते हुए उदय हुए हैं।

राजा—प्रिय सागरिका ! देखा, तुम्हारे मुँह से सारी कांति छीन करके, पर्वत-शिखर पर चढ़कर, प्रतिकार करने के लिए ऊँचे हाथ (किरणें) किये हुए चंद्रमा स्थित है।

वासवदत्ता ने रोष से घूँघट हटाकर कहा—क्या मैं सागरिका ही हूँ ? तुम तो सागरिका के लिए व्याकुल हुए हृदय से सब कुछ सागरिका-मय देख रहे हो।

राजा ने व्याकुलता के साथ कहा—वसंतक ! रानी वासवदत्ता यहाँ कैसे आ गई ? मित्र ! यह क्या ?

वसंतक ने दुःख से कहा—मित्र ! और क्या ? यह तो हमारे लिए संकट हो गया।

अब राजा बैठ गये। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—वासवदत्ता ! प्रसन्न हो जाओ।

वासवदत्ता ने राजा की ओर हाथ बढ़ाकर, आँसू रोकते हुए, कहा—महाराज ! ऐसा मत कहो। ये शब्द किसी और के लिए हैं।

वसंतक—महारानी ! आप तो उदार हैं। मेरे मित्र के इस अपराध को क्षमा कर दीजिए।

वासवदत्ता—वसंतक ! पहली ही भेंट में विघ्न डालकर अपराध तो मैंने किया है।

“प्रिये ! मेरा प्रत्यक्ष दोष देख लिया गया; अब मैं क्या कहूँ ? सो यही प्रार्थना है।” इतना कहते हुए राजा, रानी के चरणों पर, गिर पड़े और कहने लगे—मैं लज्जित हूँ। तुम्हारे चरण छूता हूँ; मुझ पर कृपा करो।

वासवदत्ता ने राजा को हाथ से हटाकर कहा—स्वामी !

उठिए। मैं अवश्य निर्लज्ज हूँ जो आपके इस हृदय को जूझकर भी क्रोध करती हूँ। आप सुख से ठहरें। मैं जाती हूँ।

वासवदत्ता जाने लगी तो कांचनमाला ने कहा—रानी! प्रसन्न हूजिए। चरणों पर गिरे हुए महाराज को छोड़कर जाने से आपको अवश्य पश्चात्ताप होगा।

वासवदत्ता—हट मूर्ख! यहाँ प्रसन्नता अथवा पश्चात्ताप का कारण कहाँ है? आओ; हम चलती हैं।

राजा ने फिर भी क्षमा माँगी परंतु रानी चली गई।

चिंतित राजा कहने लगे—प्रतिदिन अधिक आदर करते रहने से हमारी प्रीति बढ़ी हुई है। ऐसा अकार्य मैंने पहले नहीं किया था। उसी को देखकर वह असहनशील वासवदत्ता अवश्य आज जीवन त्याग देगी, क्योंकि बहुत गहरे प्रेम का दोष सहन नहीं किया जाता।

वसंतक—बिगड़कर रानी न जाने क्या करेगी? क्या जाने सागरिका जीवित है या नहीं?

इतने में वासवदत्ता का वेष धारण किये सागरिका आ रही थी। राजा भी रानी वासवदत्ता को प्रसन्न करने के लिए उधर चले।

सागरिका विचार में लीन थी। वह कह रही थी—अच्छा यही है कि फाँसी लगाकर प्राण दे दूँ, परंतु संकेत के वृत्तांत को जाननेवाली रानी से तिरस्कृत होना ठीक नहीं। सो मैं अशोक वृक्ष के नीचे जाकर जैसी इच्छा है, करूँगी।

मार्ग में उसके चरणों का शब्द सुनकर वसंतक बोला—“मित्र! चरणों का शब्द सुनाई देता है। कहीं पश्चात्ताप से रानी फिर न आ गई हों।” यही समझकर राजा भी देखने को आगे बढ़े।

रास से देखकर वसंतक कहने लगा—यह कौन है ? क्या रानी वासवदत्ता हैं ? फिर राजा से कहा—मित्र ! रक्षा करो । रानी वासवदत्ता फाँसी लगाकर मर रही हैं ।

राजा और वसंतक दोनों शीघ्र वहाँ गये । राजा ने गले से फाँसी हटाकर कहा—पिये ! तुम्हारे गले में फाँसी लगने से मेरे भी प्राण गले में आ गये हैं । अतः यह साहस छोड़ो ।

राजा को देखने से विस्मित होकर सागरिका कहने लगी—महाराज ! मुझे छोड़ दीजिए । मैं पराधीन हूँ । मरने को फिर ऐसा अवसर न मिलेगा ।

अब सागरिका ने गले में फिर फाँसी लगा ली । 'मेरी प्रिय सागरिका' कहकर राजा ने फाँसी हटा दी और उसकी बाँहें अपने गले में डाल लीं ।

इतने में वासवदत्ता और कांचनमाला फिर आ गईं । वासवदत्ता सोच रही थीं कि चरणों में गिरे हुए महाराज का अनादर करके मैंने निठुर काम किया है । इस विचार से वे अब स्वयं महाराज को प्रसन्न करने आईं ।

वसंतक इस समय कह रहा था—सागरिका ! महाराज से बेधड़क बातचीत करो ।

वासवदत्ता ने ये वचन सुन लिये । वे कांचनमाला से सक्रोध कहने लगीं—यहाँ सागरिका कैसे आई ? पहले सुन लूँ, पीछे वहाँ जाऊँगी ।

उधर सागरिका ने राजा को उत्तर दिया—महाराज ! इस असत्य दाक्षिण्यता के कारण आप, जीवन से भी प्रियतर, रानी के समीप अपने को क्यों अपराधी बनाते हैं ?

राजा—तुम असत्य कहती हो । रानी के प्रति हमारी सेवा उसकी स्वाभाविक कुलीनता के कारण है । वास्तव में प्रेम-बंधन से बढ़ी हुई अधिक रस-मय प्रीति तो तुम्हीं से है ।

यह सुनकर वासवदत्ता राजा के पास जाकर कहने लगी—
स्वामी ! यह ठीक है, यही तुम्हारे अनुकूल है ।

रानी को देखकर राजा ने व्याकुलता से कहा—रानी ! मुझे बिना कारण उलाहना देना ठीक नहीं । तुम्हारे वेष की सदृशता से ठगा हुआ मैं सचमुच ही तुम्हें ही समझकर यहाँ आ गया । क्षमा करो ।

अब राजा रानी के चरणों पर गिर पड़े । वासवदत्ता ने क्रोध से कहा—स्वामी ! उठिए । अब भी स्वाभाविक कुलीन की सेवा से आप दुःखित क्यों होते हैं ?

राजा ने समझ लिया कि इसने यह भी सुन लिया है । सो यह सोचकर कि मैं रानी को प्रसन्न करने में सर्वथा विफल हो गया हूँ, राजा ने सिर झुका लिया ।

वसंतक—महारानी ! आपके वेष की सदृशता से ठगा हुआ मैं महाराज को यहाँ इसलिए लाया था कि आप फाँसी लगाकर मर रही हैं । मेरी बातों पर विश्वास न हो तो इस लता-पाश को देख लीजिए ।

वासवदत्ता ने सक्रोध कहा—कांचनमाला ! इसी लता-पाश से इस ब्राह्मण को बाँध ले और इस धृष्ट कन्या को आगे कर ले ।

कांचनमाला ने, लता-पाश से वसंतक को बाँधते हुए कहा—
हताश ! अब अपनी दुर्नीति का फल भोग ।

कांचनमाला ने सागरिका को भी आगे कर लिया ।

सागरिका ने मन-ही-मन कहा—हाय ! मैं पापिन मरने की इच्छा को भी सफल न कर सकी ।

राजा यह सब दुःख के साथ देखते रहे । रानी जब इन सब को साथ लेकर चली गईं तब वे चिंता करते हुए रानी को प्रसन्न करने चले गये ।

—* ४ *—

प्रिय सखी सागरिका के वियोग में सुसंगता अधिक अधीर हो गई। उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे। उसे निठुर दैव पर खेद था जिसने ऐसी असाधारण रूप-लावण्यवती स्त्री बनाकर बिना कारण उसे ऐसी अवस्था को पहुँचा दिया। सागरिका ने जीवन की आशा छोड़कर अपनी रत्नमाला किसी ब्राह्मण को देने के लिए सुसंगता को सौंप दी थी। वसंतक को आते देखकर सुसंगता ने उसी को रत्नमाला देने का विचार किया।

वसंतक को इस समय, प्रिय मित्र के अनुरोध से प्रसन्न की गई रानी वासवदत्ता ने छोड़ दिया था। सुसंगता ने रोते-रोते पास आकर उससे ठहरने को कहा। उसे देखकर वसंतक ने कहा—सुसंगता ! तू रोती क्यों है ? सागरिका का तो कुछ अहित नहीं हुआ ?

सुसंगता—वसंतक ! उस बेचारी को तो रानी वासवदत्ता ने, उज्जयिनी भेजने का प्रवाद फैलाकर, आधी रात के समय न जाने कहाँ भेज दिया। सागरिका ने, जीवन की आशा छोड़कर, यह रत्नमाला मुझे दे दी है। इसे आप स्वीकार कर लें।

वसंतक ने कुछ विचारकर कहा—अच्छा, लाओ। इससे ही मित्र का, सागरिका के विरह का, दुःख शांत करूँगा।

अब वसंतक ने रत्नमाला ले ली। उसने रत्नमाला को देखकर साश्चर्य पृच्छा—सुसंगता ! ऐसी माला मिली कैसे ?

सुसंगता—मैंने भी कौतूहलवश यह पूछा था परंतु सागरिका ने ऊपर को देखकर, गहरी साँस लेकर, कहा कि सुसंगता ! तुम्हें इस बात से क्या प्रयोजन ? यह कहकर वह रोने लगी।

यह सुनकर वसंतक ने अनुमान किया कि साधारण मनुष्य

को ऐसी दुर्लभ रत्नमाला कैसे मिल सकती है। अवश्य ही यह उच्चकुल की कन्या होगी।

यह वार्त्तालाप हो रहा था कि सुसंगता की दृष्टि, रानी के भवन से स्फटिक-शिला के मंडप को जाते हुए, महाराज पर पड़ी। वह वसंतक को उधर भेजकर स्वयं रानी वासवदत्ता की ओर चली गई।

मित्र-वसंतक को देखकर महाराज प्रसन्न हुए। उन्होंने उसे गले से लगा लिया।

वसंतक—मित्र ! महारानी ने मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया।

राजा—तुम्हारे वेष से ही रानी का अनुग्रह स्पष्ट है। कहो, सागरिका का क्या हुआ।

वसंतक—सुना है कि वह उज्जयिनी भेज दी गई। यह सूचना मुझे सुसंगता से मिली है। उसके द्वारा मेरे लिए, किसी कारण, सागरिका ने रत्नमाला भेजी है।

राजा—और क्या ? मुझे धीरज देने के लिए। लाओ मित्र।

रत्नमाला को राजा ने हृदय पर रख लिया। इससे उन्हें कुछ धीरज हुआ। फिर उन्होंने माला मित्र के पहनने को दे दी जिससे उसे देख-देखकर वे धैर्य धारण किया करें। वसंतक ने माला पहन ली।

इतने में रुमणवान् का भान्जा विजयवर्मा, कुछ शुभ समाचार सुनाने के लिए, आ गया। उसने प्रणाम करके कहा—महाराज ! सौभाग्य से रुमणवान् विजयी हुए। महाराज के प्रभाव से कोशल देश जीत लिया गया।

राजा—विजयवर्मा ! बतलाओ, कैसे।

विजयवर्मा—महाराज ! हमने आपकी आज्ञा पाकर यहाँ से कुछ ही दिनों में अनेक हाथी, घोड़े और पैदलों से दुर्निवार बड़ी

सेना ले जाकर विंध्य-दुर्ग में स्थित कोशलेश्वर के द्वार को रोक लिया और सेना जुटाना आरंभ कर दिया ।

राजा—हाँ, तब ?

विजयवर्मा—तब कोशल-राज ने, घमंड से तिरस्कार असहन करके, हाथियों की सेना प्रस्तुत की । अस्त्र-शस्त्रों से सिर कट-कटकर गिरने लगे । रक्त की नदियाँ बह निकलीं । अंत में रुमणवान् के सैकड़ों तीरों से कोशल-राज की मृत्यु हो गई ।

राजा ने विजय की सूचना से प्रसन्न होकर विजयवर्मा को, पारितोषिक के लिए, यौगंधरायण के पास भेज दिया ।

इसी समय कांचनमाला ने महाराज के पास आकर निवेदन किया—महाराज ! महारानी कहती हैं कि उज्जयिनी से सर्वसिद्धि नाम का ऐंद्रजालिक आया है । महाराज उसके चमत्कार देख लें ।

राजा को भी ऐंद्रजालिक का चमत्कार देखने का कौतूहल हुआ । उन्होंने उसे शीघ्र बुला भेजा । उसके आ जाने पर राजा ने सर्वसिद्धि से कहा—भद्र ! इंद्रजाल आरंभ करो ।

कुछ समय तक कई प्रकार के नाट्य करके ऐंद्रजालिक ने कहा—आकाश में हरि, ब्रह्मा, और इंद्र आदि श्रेष्ठ देवताओं तथा सिद्ध, चारण और देवांगनाओं के समूह को नृत्य करते दिखाता हूँ ।

यह देखकर सबको आश्चर्य हुआ ।

वसंतक ने एकांत में कहा—ओह, ऐंद्रजालिक ! इन देवताओं और अप्सराओं के दिखाने से क्या ? यदि तू महाराज को प्रसन्न करना चाहता है तो सागरिका को दिखा ।

इस समय वसुंधरा ने आकर सूचना दी—यौगंधरायण ने निवेदन किया है कि विक्रमबाहु का प्रधान अमात्य वसुभूति, कंचुकी बाभ्रव्य के साथ आया है । आप सुअवसर पर उससे

मिल लें। मैं भी, शेष कार्य को समाप्त करके, आता ही हूँ।

यह सुनकर वासवदत्ता ने राजा से कहा—ऐंद्रजालिक को रहने दीजिए। मामा के घर से प्रधान-अमात्य वसुभूति आया है। सो आप पहले उससे मिल लीजिए।

राजा ने ऐंद्रजालिक से तनिक विश्राम करने को कहा। राजा से एक और खेल देख लेने की प्रार्थना करके ऐंद्रजालिक चला गया।

अब वसुंधरा के साथ वसंतक वसुभूति और बाभ्रव्य को लिवाने चला गया। वसंतक ने कहा—आइए, अमात्य ! आइए।

वसुभूति की दृष्टि वसंतक की रत्नमाला पर पड़ गई। उसने सोचा कि यह रत्नमाला तो राजा ने राजकुमारी को चलते समय दी थी।

राजा के पास आकर, यथोचित प्रणाम आदि के अनंतर, सब लोग अपने-अपने स्थान पर बैठ गये। राजा ने पूछा—अमात्य वसुभूति ! महाराज सिंहलेश्वर तो कुशल से हैं ?

वसुभूति—महाराज ! निवेदन करने में असमर्थ हूँ; तब भी मैं मंद-भाग्य कहता हूँ कि सिंहलेश्वर ने, रानी वासवदत्ता का आग में जल जाना सुनकर, आपके लिए पहले से माँगी हुई अपनी रत्नावली नाम की कन्या आपको दे दी।

राजा—रानी ! तुम्हारे मामा का अमात्य यह क्या असत्य कहता है ?

रानी—क्या जानें, असत्य कौन कहता है ?

वसंतक—फिर क्या हुआ ?

वसुभूति—तब वह यहाँ पहुँचाई जा रही थी कि, जहाज टूट जाने से, समुद्र में डूब गई।

इतना कहकर रोते हुए वसुभूति ने सिर झुका लिया।

रानी वासवदत्ता की आँखों में भी आँसू आ गये। वह कहने लगी—हाय ! मैं मंदभागिन मर गई। हा ! वहन रत्नावली ! तू कहाँ है ? मुझे उत्तर दे।

राजा ने रानी को धीरज देते हुए कहा—धीरज रखो। दैव की गति समझ में नहीं आती। जहाज टूट जाने से डूबे हुए ये लोग निकल आये, यही तुम्हारे लिए दृष्टांत हैं।

वासवदत्ता—ऐसा हो सकता है, परंतु मेरे भाग्य ऐसे कहाँ ?

इतने में कोलाहल हुआ कि अंतःपुर में अकस्मात् आग लग गई है। सब व्याकुल होकर उधर देखने लगे।

वासवदत्ता—महाराज ! मैंने निर्दयता से सागरिका को बेड़ियाँ डलवा दी हैं। वही जल रही है। उसकी रक्षा कीजिए।

“सागरिका जल रही है” इतना सुनते ही राजा वहाँ जाकर आग में कूद पड़े। वे किसी के रोके न रुके। अब वासवदत्ता भी आग में, स्वामी के पीछे, कूद पड़ीं। उन्हें आग में प्रवेश करते देखकर वसंतक भी कूद पड़ा। वसुभूति और बाभ्रव्य भी आग में कूदे बिना न रह सके।

राजा को आग में सागरिका दिखाई दी। उसकी रक्षा के लिए राजा उधर बढ़े। वे सागरिका को गोद में उठाकर आग से बाहर लाने लगे। उन्होंने क्षण भर में आँखें बंद की थीं कि संताप दूर हो गया। आँखें खोलकर देखा तो आश्चर्य के साथ कहने लगे—वह आग कहाँ गई ? अंतःपुर वैसा ही है। वासवदत्ता, वसंतक, वसुभूति और बाभ्रव्य आदि सब खड़े हैं। स्वप्न में बुद्धि को भ्रम हो गया था अथवा यह इंद्रजाल था ?

वसंतक—मित्र ! संदेह मत करो। यह इंद्रजाल ही है। उस दासी-पुत्र इंद्रजालिक ने कहा था कि मेरा एक खेल और देखना, सो यह वही खेल है।

सागरिका को देखते ही वसुभूति ने पहचान लिया। उसने कहा—महाराज ! यह कन्या कहाँ से आई ?

राजा—महारानी ही जानती हैं।

वासवदत्ता—मंत्री ! अमात्य यौगंधरायण ने इसे यह बतलाकर मुझे सौंपा था कि यह समुद्र से प्राप्त हुई है। अतः इसका नाम सागरिका पड़ गया।

राजा ने सोचा कि यौगंधरायण ने मुझसे कहे बिना कैसे सौंप दिया !

वसुभूति ने बाभ्रव्य से ओट में कहा—वसंतक के गले की रत्नमाला और इस कन्या के समुद्र में मिलने से स्पष्ट है कि यह सिंहलेश्वर की पुत्री रत्नावली है। फिर प्रकट रूप से कहा—आयुष्मती राजपुत्री रत्नावली ! तुम इस अवस्था को पहुँचीं !

सागरिका ने भी वसुभूति को देखकर, आँखों में आँसू भरकर, कहा—क्या आप अमात्य वसुभूति हैं ?

दोनों एक-दूसरे को पहचान कर मूर्च्छित हो गये। वासवदत्ता व्याकुल होकर बोलीं—बाभ्रव्य ! क्या यह मेरी वहन रत्नावली है ?

बाभ्रव्य—हाँ, महारानी ! ये वही हैं।

इस समय रत्नावली और वसुभूति सचेत हो गये। वासवदत्ता ने रत्नावली को गले से लगा लिया और राजा से ओट में कहा—महाराज ! मैं अपनी निर्दयता पर अधिक लज्जित हूँ। इसके बंधन खोल दीजिए।

रानी के कहने से राजा ने सागरिका की बेड़ियाँ खोल दीं।

इतने में यौगंधरायण भी वहाँ आ पहुँचा। उसने निवेदन किया—महाराज ! मैंने जो कार्य, बिना आपको जताये, किया था उसके लिए मुझे क्षमा कीजिए।

राजा—बिना जताये क्यों किया ?

यौगंधरायण—महाराज ! सिंहलेश्वर की इस कन्या के विषय में एक सिद्ध ने कहा था कि जो इससे विवाह करेगा, वह सार्वभौम राजा होगा । तब, उसी विश्वास से मैंने यह कन्या आपके लिए सिंहलेश्वर से बार-बार माँगी । परंतु उन्होंने, रानी वासवदत्ता के चित्त को ठेस न पहुँचाने के विचार से, जब इसे न दिया तब मैंने प्रसिद्ध कर दिया किलावाणक ग्राम के अग्नि-कांड में रानी जल गई हैं; और सिंहलेश्वर के पास बाभ्रव्य को भी भेज दिया ।

राजा—मंत्री ! रानी के हाथों इसे क्या समझकर सौंपा था ?

वसंतक—मित्र ! इसका अभिप्राय मैंने समझ लिया । बिना कहे भी जान पड़ता है कि यह अंतःपुर में रहेगी तो वहाँ आकर महाराज इसे सहज में देख लेंगे ।

यौगंधरायण—हाँ, यही बात है ।

राजा—तो ऐंद्रजालिक के आग लगाने का समाचार भी क्या तुम्हारा ही प्रयोग था ?

यौगंधरायण—राजन् ! नहीं तो अंतःपुर में बँधी हुई इस कन्या के दर्शन आपको कैसे होते, और बिना देखे वसुभूति से इस राजकुमारी की कैसे पहचान होती ?

यौगंधरायण ने अब हँसकर रानी से कहा—और अब पहचानी हुई बहन का रानी जो करना चाहें, करें ।

रानी ने हँसकर कहा—मंत्री ! यह क्यों नहीं कहते कि यह रत्नावली इन्हें दे दो ।

वसंतक—महारानी ! आपने मंत्री यौगंधरायण का अभिप्राय ठीक समझा ।

वासवदत्ता ने रत्नावली को अपने आभूषण पहनाकर राजा को सौंप दिया । राजा ने भी उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया ।

मोहन धारी

सीताजी का विरह

विरह (सीता जी का)

कुंदमाला

—* १ *—

एक दिन सीता को रथ में बैठाकर लक्ष्मण गंगा-दर्शन के लिए ले गये। सुमंत्र रथ हाँक रहा था। गंगा-तट पर घने वृक्षों और लताओं से घिर रहे वन के समीप पहुँचने पर रथ रुक गया। सीता और लक्ष्मण नीचे उतर पड़े। लंबी यात्रा से थके घोड़ों को विश्राम कराने के लिए सुमंत्र रथ को लेकर एक ओर चला गया। सीता और लक्ष्मण आगे पैदल चलने लगे।

अब लक्ष्मण सोचने लगे कि महाराज ने मुझे आज्ञा दी है कि “रावण के घर में रहने से सीता के चरित्र के विषय में पुरवासियों में अपवाद फैल रहा है। अतएव केवल सीता के लिए मैं, शरत्-चंद्र के समान निर्मल, इक्ष्वाकु-कुल में कलंक न लगाने दूँगा। दोहद में सीता ने मुझसे गंगा-दर्शन की प्रार्थना की है। अतः तुम उन्हें गंगा ले जाने के बहाने, रथ में बैठाकर, किसी वन-स्थान में छोड़ आओ।” सो मैं स्वजन के प्रति विश्वास के कारण निर्भय सीता को यहाँ लाकर वन पहुँचाने जा रहा हूँ मानों पालतू हरिणी को वध्य-भूमि पहुँचा रहा हूँ। हा ! मैं कैसा पापमय कर्म कर रहा हूँ।

इतने में नदी-तट समीप आ गया। स्नान के लिए गंगा के

ऊबड़खाबड़ तट से नीचे उतरते-उतरते सीता थक गई। वे एक पेड़ की छाया में थोड़ी देर विश्राम करने को बैठ गई। सीता को विश्राम कर चुकी जानकर लक्ष्मण, उनके चरणों पर सिर रखकर, बोले—आपके प्रवास के दुःख का चिर-सहचर अभागा लक्ष्मण प्रार्थना करता है कि आप अपने हृदय को स्थिर कर लें।

सीता ने स्तब्ध होकर पूछा—महाराज तो सकुशल हैं?

लक्ष्मण ने वन की ओर संकेत करके कहा—ऐसा होने पर कुशल कहाँ?

सीता—क्या माता ने फिर वनवास दे दिया?

लक्ष्मण—माता ने नहीं, महाराज ने।

सीता—वत्स ! स्पष्ट कहो क्या बात है।

लक्ष्मण—मैं मंदभाग्य और क्या कहूँ? महाराज ने आपको त्याग दिया है। आपको यहाँ छोड़कर मैं भी लौट जाऊँगा।

यह सुनकर सीता मूर्च्छित हो गई। गंगा के जल-बिंदु से शीतल और मृदु वायु द्वारा शीघ्र सचेत होकर बोली—वत्स ! मुझे किस दोष से निकाला है?

लक्ष्मण—आपमें कैसा दोष?

सीता ने व्याकुल होकर कहा—हाय ! मेरा दुर्भाग्य ! तो क्या बिना दोष ही मुझे निकाला है? मेरे लिए कोई संदेश हो तो कहो।

लक्ष्मण—उन्होंने कहा है कि “सीता ! मैं जानता हूँ कि तुम कुल और गुण में मेरे समान हो तथा सुख दुःख में चिरकाल से मेरी सहचरी हो; परंतु मैं तुम्हें लोकापवाद के भय से त्यागता हूँ, न कि तुम्हारे किसी वास्तविक दोष से।”

सीता—मुझमें क्या दोष है?

लक्ष्मण—ऋषियों के, लोकपालों के, राम के तथा मेरे सामने

आप अग्नि-परीक्षा में शुद्ध प्रमाणित हुई थीं; किंतु लोग निरंकुश हैं। उन्हें कौन रोक सकता है ?

अब तो सीता सब कुछ समझ गई। वे शोक-ग्रस्त होकर कहने लगीं—मेरे विषय में भी ऐसा कहा जाता है ! अथवा, स्त्री होने को ही अधिकार है ! हाय, मैं त्याग दी गई ! इस प्रकार स्वामी से परित्यक्त होकर मैं प्राण-त्याग क्यों न कर दूँ ? नहीं; मुझे तो उन कठोर की वैसी ही संतान की रक्षा के कारण, इस कलंक-रूपी कंटक से बिंध जाने पर भी अपने जीवन की रक्षा करनी ही होगी।

इस विचार पर उपकार मानते हुए लक्ष्मण ने आगे बताया कि महाराज ने यह भी कहा है—तुम मेरे हृदय में स्थित गृह-देवी हो, स्वप्न में प्रकट होकर मेरी शय्या की संगिनी हो। मुझे दूसरी स्त्री की इच्छा नहीं है। यज्ञ में तुम्हारी प्रतिमा ही मेरी धर्म-पत्नी होगी।

यह सुनने पर सीता का दुःख कम हो गया। लक्ष्मण ने जब संदेश का उत्तर माँगा तब सीता ने कहा—मेरी सासों से, चरण छूकर, निवेदन करना कि इस प्रकार हिंस्र जंतुओं से घिरे वन में रहती हुई मेरी वे हृदय से मंगल-कामना किया करें।

लक्ष्मण—यह आज्ञा मैंने सुन ली। महाराज के लिए आप कुछ न कहेंगी ?

सीता—उन जैसे निर्दय के लिए, तुम्हारे वचनों को निष्फल न बनाने के अभिप्राय से, मैं संदेश देती हूँ। उनसे मेरी ओर से कहना कि वे मुझ अभागिन के लिए शोक करके राज-धर्म के पालन में शिथिलता न करें। सत् धर्म और अपने शरीर के लिए सावधान रहें। वत्स ! उन्हें भला उलाहना क्या दूँ ?

लक्ष्मण—क्या आपमें इतना भी सामर्थ्य नहीं ?

सीता—तो उनसे इतना और कहना कि मुझ निरपराधिनी को हृदय से सहसा निकाल देना उचित न था; आपने तो देश से भी निकाल दिया। और यह भी निवेदन करना कि तपोवन-निवासिनी सीता हाथ जोड़कर प्रार्थना करती है कि यदि मैं निरर्थक हूँ, तो मुझे चिर-परिचित या अनाथ समझकर ही कभी-कभी स्मरण-मात्र से अनुगृहीत कर दिया करें।

यह सुनकर लक्ष्मण ने कहा—यह संदेश सुनकर महाराज को, क्षत पर क्षार के समान, अवश्य असह्य वेदना होगी।

सीता अब क्या कर सकती थीं? उन्होंने लक्ष्मण से, भाई के शरीर की ओर सावधानी रखने को कहा और फिर निवेदन किया कि मेरी ओर से रघुवंश की राजधानी भगवती अयोध्या को प्रणाम कहना, स्वर्गीय महाराज की मूर्ति की सेवा करना; सासों की आज्ञा का पालन करना; प्रियवादिनी मेरी प्रिय सखियों को धीरज देना; मुझ अभागिन को सदा स्मरण रखना।—इतना कहते-कहते सीता रोने लगीं। लक्ष्मण भी व्याकुल हो गये।

फिर सूर्यास्त समीप जानकर सीता ने लक्ष्मण को लौट जाने को कहा। लक्ष्मण ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और निवेदन किया—आप स्वामी, सखी या स्वजनों का स्मरण करती हुई शोक से आत्महत्या न कर लें। इक्ष्वाकु-वंश की संतान आपके गर्भ में है। आप इसकी यत्नपूर्वक रक्षा करें।

सीता ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

लक्ष्मण ने फिर कहा—मैं महाराज की आज्ञा से आपको वन में लाकर छोड़ रहा हूँ। देवी! मेरा अपराध क्षमा कीजिए।

सीता—तुम भाई की आज्ञा पालनेवाले हो। तुम्हें संतोष के स्थान में दोष की आशंका कैसी?

लक्ष्मण ने अब सीता की प्रदक्षिणा कर दिक्पाल, भगवती

भागीरथी, मुनिजन, वनदेवता आदि से उनकी रक्षा के लिए प्रार्थना की और इसके अनंतर सीता को प्रणाम करके लौट गये।

सीता व्याकुल होकर कहने लगीं—“क्या सचमुच लक्ष्मण मुझे अकेली को छोड़कर लौट गया ? हाय ! इस समय सूर्य अस्त हो गया। लक्ष्मण का शब्द भी नहीं सुन पड़ता। हरिण भी अपने विश्राम-स्थान को जाने लगे हैं; पक्षी अपने घोंसले को उड़ने लगे हैं। हिंसक जीव विचरने लगे हैं। अंधकार ने दृष्टि ढक दी है; वन निर्जन हो गया है। मैं दुर्भागिनी कहाँ जाऊँ ?.... हाय ! मैंने कौन-से पाप किये हैं जिनका परिणाम यह भोग रही हूँ। कैसे.... कैसे लक्ष्मण द्वारा नियुक्त किये हुए वन-देवता.... कैसे रघुवंश के परंपरागत वशिष्ठ, वाल्मीकि आदि महाप्रभावशाली वे महर्षि अब मुझे त्याग कर....”

इस प्रकार रोती हुई सीता मूर्च्छित हो गई। इस समय महर्षि वाल्मीकि वहाँ आ गये। मुनिपुत्रों ने सायंकाल गंगा-स्नान से लौटकर उनसे कहा था कि एक निराश्रया गर्भिणी स्त्री अकेली वन में रो रही है। इसी से वे शीघ्र ही आकर उसे ढूँढ़ रहे थे।

सीता को चेत हो आया। महर्षि कह रहे थे—“मैं यहाँ हूँ !”

सीता ने समझा कि कोई उन्हें ढूँढ़ रहा है। उन्होंने कहा—
लक्ष्मण ! क्या तुम लौट आये ?

वाल्मीकि—लक्ष्मण नहीं, मैं हूँ।

पर-पुरुष समझकर सीता ने घूँघट निकालकर कहा—मैं अकेली हूँ।

वाल्मीकि—बेटी ! मैं यहाँ खड़ा हूँ। तुम पर-पुरुष की शंका मत करो। सायंकालीन उपासना से निपटकर जब मुनि-पुत्र लौटे तब उनसे तुम्हारा वृत्तांत पाकर मैं तपस्वी तुम्हीं को सहायता देने आया हूँ। सो मुझे बताओ कि धर्म-युद्ध के विजेता राम के साम्राज्य में तुम पर कैसी विपत्ति है ?

सीता—उसी पूर्ण चंद्र से यह वज्राघात हुआ है।

वाल्मीकि—क्या राम से ही तुम्हें विपत्ति आई है ?

सीता—हाँ।

अब तो वाल्मीकि कहने लगे—यदि वर्णाश्रम-धर्म के प्रति-पालक महाराज ने तुम्हें निकाला है तो तुम्हारा कल्याण हो; मैं जाता हूँ।

सीता ने प्रार्थना की—यदि रघुवर द्वारा निर्वासित की जाने के कारण मैं दयापत्र नहीं हूँ तो रघु, सगर, दिलीप, दशरथ आदि की संतति को तो, जो मेरे गर्भ में है, बचाना चाहिए।

यह सुनकर वाल्मीकि लौट पड़े। उन्हें चिंता हुई कि इक्ष्वाकु-वंश का उदाहरण देनेवाली यह स्त्री कौन है ! वे पास आकर बोले—पुत्री ! क्या तुम दशरथ की पुत्र-वधू हो ?

सीता—आपका कथन ठीक है।

वाल्मीकि—और विदेहराज जनक की पुत्री ?

सीता—हाँ।

अब तो वाल्मीकि उन्हें सीता समझकर कहने लगे—क्या तुम्हीं सीता हो ?

दुःखित-हृदया सीता ने कहा—भगवान् ! मैं सीता नहीं, एक अभागिन हूँ।

वाल्मीकि—हा ! मैं मंदभाग्य नष्ट हो गया। बेटी ! राजप्रासाद से तुम्हारा अधःपात कैसे हुआ ?

लज्जा के कारण सीता चुप ही रहीं। वाल्मीकि ने दिव्य दृष्टि से सब कारण जानकर सीता से कहा—तुम निरपराधिनी हो। आओ, आश्रम को चलें।

सीता—आप कौन है ?

वाल्मीकि—मैं राजा जनक का मित्र और दशरथ का बाल-

सखा हूँ। मुझे दूसरा कोई मत समझो। मैं ही वाल्मीकि हूँ। मैं तुम्हारे लिए ससुर और पिता के तुल्य हूँ।

अब सीता ने उन्हें प्रणाम किया। वाल्मीकि ने आशीर्वाद दिया—वीर-पुत्र की माता होओ; तुम्हें स्वामी के पुनर्दर्शन हों।

अब तो सीता निःसंकोच उनके साथ आश्रम को चलने लगी। चलते समय उन्होंने हाथ जोड़कर गंगा से प्रतिज्ञा की कि सुखपूर्वक प्रसव होने पर मैं प्रतिदिन 'कुंद' (चमेली) पुष्पों की अच्छी गुंथी हुई माला तुम्हें भेंट किया करूँगी।

—* २ *—

राम के सट्ठश दो पुत्र, यथासमय, सीता के उत्पन्न हुए। बड़े का नाम कुश रक्खा गया, छोटे का लव। दोनों कुमार चंद्र-कला की नाई बढने लगे। मृगों के बच्चों के साथ दौड़ते समय वे, तपस्वियों के हृदयों को मोहते हुए, दो प्रतिद्वंद्वी सिंह-शावक प्रतीत होते थे। वे मुनियों की गोद में फिरते थे। कुछ बड़े होने पर वे वाल्मीकि द्वारा रची रामायण पढ़ने लगे। ऐसे पुत्रों के जन्म से तपोवन के स्त्री-पुरुष सीता को भाग्यवती कहते थे।

कुछ समय के पश्चात् महाराज रामचंद्र ने नैमिषारण्य में यज्ञ रचा। यज्ञ-सामग्री एकत्र हो गई। स्त्रियों सहित तपस्वियों को निमंत्रण दिया गया। महर्षि वाल्मीकि को भी राम का निमंत्रण मिला। परंतु सीता को यज्ञ के विषय में किसी से कोई सूचना न मिली।

चिंता में डूब रही सीता एक दिन, शालवृक्ष की छाया में बैठी थीं। वे सोचती थीं कि स्वभाव से ही निर्दय पुरुषों के हृदय का विश्वास नहीं। अथवा मैं स्वामी की निंदा क्यों करूँ? पहले मेरे स्वामी..... अब कोसों के अंतर पर हुए..... निष्कारण.....

मैं महा दुखिया बनाई गई हूँ। जब मैं स्वामी को प्रिय थी तब सारी मिथिला मेरा सत्कार करती थी। अब मेरी ऐसी दुरवस्था है कि परित्याग के दुःख से भी अधिक पीड़ा मुझे लज्जा देती है। अथवा अब तो कुमार उत्पन्न हो गये हैं, और भाग्य से वे बड़ भी रहे हैं। भगवान् वाल्मीकि मेरा आदर करते हैं। तपोवन के नियम के विरुद्ध लंबी साँस लेकर समय व्यतीत करना अनुचित है।

सीता ऐसी चिंता में लीन थीं जब उनकी प्रिय सखी वेदवती ने उन्हें पुकारा। उसने सीता को चिरकाल से नहीं देखा था। उसकी अनुपस्थिति में ही कुश-लव का जन्म हुआ था। सीता ने उसे छाती से लगा लिया।

वेदवती—कुश-लव तो कुशल से हैं ?

सीता—जैसी वनवासियों की कुशल होती है।

वेदवती—तुम कैसी हो ?

सीता ने अपनी वेणी दिखाकर कहा—इसे देख लो।

वेदवती समझ गई कि यह अभागिन दुःख से संतप्त हो रही है। राम द्वारा किये गये अपमान की चर्चा करके उसने सीता का दुःख घटाना चाहा। वह कहने लगी—अरी मूढ़ ! निर्दय स्वामी के लिए तुम, कृष्णपक्ष की चंद्र-कला की नाई, क्यों प्रतिदिन क्षीण होती जा रही हो ?

सीता—वे निर्दय क्यों हैं ?

वेदवती—इसलिए कि तुम्हें त्याग दिया है।

सीता—क्या मैं त्याग दी गई हूँ ?

वेदवती—लोग तो ऐसा ही कहते हैं।

सीता—उन्होंने शरीर से अवश्य त्याग दिया है; किंतु हृदय से नहीं त्यागा।

वेदवती—पराये हृदय को तुम कैसे जानती हो ?

सीता—उनका हृदय सीता के लिए पराया कैसे होगा ?

वेदवती—अहो, अनुराग नहीं घटा !

सीता—वे मेरे लिए अनुराग कैसे त्याग सकते हैं, जब यह प्रसिद्ध है कि मुझ अभागिन के लिए उन्होंने सेतु-बंधन आदि का परिश्रम सहन किया था ?

वेदवती—आत्मश्लाघिनी ! रावण के ऊपर क्रोध करना क्षत्रियों के लिए उचित ही था ; इसका कारण सीता पर अनुराग न था ।

परंतु सीता ऐसे विचार को मन में नहीं ला सकती थीं । वे कहने लगीं—तुम यह नहीं देखती हो कि सौतों के निःश्वास से उनका वक्षःस्थल अभी तक अपवित्र नहीं हुआ । क्या यह मेरा सत्कार नहीं है ?

वेदवती—इतनी अधीर मत होओ । राम की यज्ञ-दीक्षा का समय समीप है । तब उन्हें धर्मपत्नी का पाणि-ग्रहण करना पड़ेगा ।

सीता—स्वामी के हृदय पर मेरा अधिकार है, न कि उनके हाथ पर ।

वेदवती को विश्वास हो गया कि सीता का राम पर दृढ़ प्रेम है । अब उसने कहा—क्या पुत्रों के मुखदर्शन से तुम्हारा प्रवास-शोक नया हो गया है ?

सीता—शोक कम करने पर भी बढ़ता है । देखो, इन पुत्रों को देख-देखकर मुझे महाराज का स्मरण हो आता है । इससे मुझे और भी कष्ट होता है । हाय ! सखी वेदवती ! क्या स्वामी के पुनर्दर्शन कर मैं अपना जीवन सार्थक कर सकूंगी ?

इतना वार्तालाप हुआ था कि एक ओर से घोषणा का शब्द

सुनाई पड़ा—यहाँ से समीप ही अश्रमेधयज्ञ आरंभ हुआ है। यज्ञ की सब सामग्री एकत्र हो गई है। वशिष्ठ, आत्रेय आदि अनेक मुनि भिन्न-भिन्न प्रदेशों से पधार चुके हैं। केवल भगवान् वाल्मीकि के आने की प्रतीक्षा करते हुए महाराज ने अब तक यज्ञ-दीक्षा नहीं ली है। वाल्मीकि के तपोवन-निवासियों के निमंत्रण के लिए राम का दूत आया है। सो अब विलंब न करो।

इस आदेश के अनुसार मुनि-जन, शिष्य-मंडली सहित, चलने को तैयार हो गये। सीता ने भी शीघ्रता से कुश और लव को तिलक लगा दिया। वे स्वयं भी, अन्य तपस्विनियों के साथ, नैमिषारण्य को चल पड़ीं।

—* ३ *—

सीता, कुश, लव तथा अन्य तपस्विनों के साथ महर्षि वाल्मीकि नैमिषारण्य में, सायंकाल से पहले, पहुँच गये। दूसरे दिन इन महर्षि के दर्शन करने के लिए राम और लक्ष्मण, दोपहर से पहले, गोमती के तट पर उनके आश्रम को गये।

राम मार्ग में जाते समय सीता के लिए चिंतित हो रहे थे। लक्ष्मण भी फिर वन में आकर, सीता को वन में छोड़ जाने के स्मरण से दुःखित थे। उन्हें इस बात का शोक था कि वे ही निरपराध सीता को, छल से, घने वन में छोड़ने की इच्छा से लाये थे।

लक्ष्मण ने राम को सीता के लिए अधिक चिंतित देखकर, दूसरी ओर उनका ध्यान हटाने के विचार से, उनसे गोमती नदी की रमणीयता देखने का अनुरोध किया।

गोमती नदी की ओर देखते हुए लक्ष्मण की दृष्टि, नदी के लहरों में साँपिन की टेढ़ी-मेढ़ी चाल से बह रही, कुंद-पुष्पों की एक

माला पर जा पड़ी। चरण-स्पर्श की कामना से वह कुंदमाला, तरंगों में बहती हुई, राम के चरणों के पास आ लगी। लक्ष्मण ने राम से उसके गूँथने की चुराई को देखने को कहा।

राम ने माला को देखकर प्रसन्नता-पूर्वक लक्ष्मण से कहा—
बत्स ! मैंने इस माला का-सा विन्यास-कौशल पहले भी देखा है।

लक्ष्मण—कहाँ देखा है ?

राम—सीता के अतिरिक्त और कौन ऐसी माला गूँथ सकता है ?

लक्ष्मण—जगत्पति कैसी-कैसी क्रीड़ाएँ करता है, यह जानने की शक्ति हम अज्ञानियों में नहीं। आइए; अब गोमती-तट के साथ-साथ माला के उद्गम-स्थान की ओर चलें।

पड़ले तो राम ने कहा कि इन लोक में सादृश्य दुर्लभ नहीं है। हमारा ऐसा सौभाग्य कहाँ कि परित्यक्त सीता यहाँ, इतनी दूर, आ गई हो। परंतु तब भी उधर चलने का विचार हुआ जिससे कि नदी-तट के साथ-साथ चलकर उस स्थान पर शीघ्र पहुँच जायँ। थोड़ी दूर चलने पर वाल्मीकि का आश्रम समीप ही जान पड़ा।

कुछ और आगे बढ़े तो लक्ष्मण को रेतीली भूमि पर पद-चिह्न दिखाई पड़े। उनके दिखाने पर राम ने वह पद-चिह्न देखकर कहा—बत्स ! ये तो सीता के ही पद-चिह्न हैं।

पद-चिह्नों का अनुसरण करते हुए दोनों भाई उत्कंठा-पूर्वक वाल्मीकि के आश्रम की ओर चले।

उधर सीता उपासना से निपटकर, अपने हाथों गूँथी हुई, कुंदमाला भागीरथी (गोमती) को भेंट कर चुकी थी। इसके अनंतर अतिथि-पूजा के योग्य फल चुनने के लिए वे ऊँचे, घने, शीतल लता-कुंज में चली गईं। उनके पद-चिह्नों का

अनुसरण करते हुए लक्ष्मण और राम भी वहाँ लता-कुंज के बाहर तक पहुँच गये। वहीं तनिक विश्राम करके वाल्मीकि के आश्रम में पहुँचने का विचार हुआ।

वहाँ सीता को 'वत्स ! वत्स !' ये परिचित शब्द सुन पड़े। उनका शरीर पुलकित हो गया। उन्होंने समझा कि वही निर्दय यहाँ आ गये। उधर देखने लगीं तो विचार हुआ कि उन्हें देखने से मेरी आत्मा लज्जित होती है। सो उन्होंने उधर से मुँह फेर लिया। परंतु वे अपने को वश में न रख सकीं। दृष्टि बलात् उधर खिंच गई। उधर देखकर सीता कहने लगीं—अहो ! इन्हें देख लिया इससे संतोष है; चिर-प्रवास से क्रोध है; इन्हें क्षीण देखकर उद्वेग है; ये निर्दय हैं इस कारण अभिमान है; चिर-परिचित होने से अनुराग है; दर्शनीय होने के कारण उत्कंठा है; स्वामी हैं इस कारण इनके प्रति सम्मान है; कुश-त्व के पिता हैं इस कारण कुटुंबिनी का सद्भाव है; अपराधिनी कही गई हूँ इस कारण लज्जा है।

सीता के मन में ऐसे विविध विचार उठने लगे। अब वे कान लगाकर राम-लक्ष्मण का वार्त्तालाप सुनने लगीं।

लक्ष्मण ने राम द्वारा पुकारे जाने पर कहा—आपने मुझे सहसा बुलाकर क्यों सजल-नेत्र हो तथा मौन धारण कर सिर नीचा कर लिया है ?

राम—दंडक-वन के प्रवास का स्मरण आने से चित्त व्याकुल हो रहा है।

सीता ने मन-ही-मन कहा कि वनवास का स्मरण है; उस वन-वासिनी का नहीं ?

लक्ष्मण—उस दुःखमय वनवास के स्मरण से क्या लाभ ?

राम—वत्स लक्ष्मण ! क्या कहते हो ? देखो, मुझे सायंकाल

जैसे सीता का सुकुमार हाथ पकड़कर विविध प्रेमालाप करने का स्मरण आता है।

यह सुनकर सीता आप ही कहने लगीं—हे निर्दय ! इस अनुचित संताप से मुझ शरणहीना को और क्यों पीड़ा देते हो ?

लक्ष्मण ने राम से धैर्य रखने को कहा, परंतु वे कहने लगे—मैं धीरज रखूँ कैसे ? देखो, पहले वनवास, फिर लंका का युद्ध आदि और फिर यह निर्वासन ! मुझ जैसे पतित से सीता को दुःख पर दुःख मिल रहे हैं।

सीता ने मन में कहा कि नाथ ! आपका यह शोक निर्वासित सीता के अनुकूल नहीं है।

राम अब “जनक-राजपुत्री ! वनवास-सहायिनी ! तुम कहाँ चली गई हो ?” इत्यादि कहकर विलाप करने लगे। फिर लक्ष्मण से बोले—उसका कहीं पता लग सकता है ?

लक्ष्मण—पता लगना कठिन है।

अब शोक-विह्वल राम रोने लगे। यह देखकर सीता को शोक हुआ। वे सोचने लगीं कि अश्रुधारा से ढकी आँखों को साहस करके पोंछ दूँ। उन्होंने पैर बढ़ाया ही था कि फिर सोचने लगीं की लोकापवाद से बचना चाहिए। स्वामी कहीं मुझे देख न लें। मैं शोकावेग से विवश हुई अपने आपको वश में रखने में असमर्थ हूँ। यह मुनियों के आने-जाने का स्थान है। कोई अकस्मात् आकर मुझे देख लेगा।

दूसरे के द्वारा देखे जाने के भय से सीता आश्रम की ओर लता-जाल से घिरे मार्ग द्वारा कुश-लव के पास चली गई।

इस समय महर्षि वाल्मीकि द्वारा भेजे हुए वादरायण ऋषि, राम को लेने, वहाँ आये। वाल्मीकि ने सुन लिया था कि लक्ष्मण के साथ राम यहाँ आ रहे हैं। उन्हें शंका थी कि कहीं हमें

मध्याह्न-कर्मों में जुटा देखकर वे बाहर ही न बैठे रहें। अतः ऋषि से कहा कि मार्ग में जाकर राम को बुला लाओ।

वाङ्मन्य को आते देखकर राम ने आँसू पोंछ लिये। अब वे स्थिर होकर बैठ गये। ऋषि पास आकर राम-लक्ष्मण को आश्रम में लिया गये।

—* ४ *—

एक दिन भगवान् वाल्मीकि के तपोवन में, रामायण गाने के लिए, तिलोत्तमा अप्सरा बुलाई गई। उसने वेदवती से कहा कि वह, दिव्य-शक्ति द्वारा, सीता के रूप से राम के सामने जाकर जानना चाहती है कि राम सीता के ऊपर दयावान् हैं या नहीं। वेदवती ने यह सूचना यज्ञवेदि को दी और राम का विश्राम-स्थान पूछा। यज्ञवेदि ने कहा कि जब तुम्हारी यह बात तिलोत्तमा से हो रही थी तब लता की ओट में छिपे हुए राम के मित्र कौशिक ने यह सब मंत्रणा सुन ली थी। अब वेदवती ने सोचा कि राम के जान लेने पर भी यदि अब सीता का चरित किया जायगा तो यह उपहास के विपरीत होगा। सो वेदवती ने जाकर तिलोत्तमा को रोक देने का निश्चय किया।

इस दिन से सातवें दिन पहले एक विचित्र घटना हुई थी। सब तपस्विनियों ने भगवान् वाल्मीकि से प्रार्थना की थी कि आश्रम की यह पुष्करिणी अब महाराज के समीप होने के कारण, पर-पुरुष की दृष्टि पड़ने से, स्त्रियों के स्नान आदि के योग्य नहीं रही। तब वाल्मीकि ने ध्यान से निश्चल-नेत्र होकर, पल भर सोचकर, कहा कि इस पुष्करिणी पर आई हुई स्त्रियाँ पुरुष-दृष्टि से अदृश्य रहेंगी। तब से लेकर सीता, राम के दृष्टि-पथ से बचने के लिए, इस पुष्करिणी के तट पर सारा दिन व्यतीत कर देती थीं।

एक दिन, जब तिलोत्तमा आई थी, सीता अधिक शोक-विह्वल होकर पुष्करिणी के तट पर बैठी थीं। पहले वनवास में बनदेवी मायावती से स्मृति-रूप प्राप्त चंद्रमा-ले श्वेत सुगंधित दिव्य उत्तरीय को, जो राम और सीता दोनों के हाथ में रहने से अति प्रिय और चिरकाल तक दुःख का भागी रहा था, सीता ओढ़े हुए थीं। उनको आज-कल राम के तपोवन में होने से दुःख शोक हो रहा था। वे अकेली दिन-रात गहरी साँस लेती रहती थीं। उनको हृदय का आवेग दुःसह हो उठा था। वहाँ बैठी अधर होकर वे कभी तो रोने लगतीं और कभी चुप हो जाती थीं।

ऐसे समय में वहाँ राम को लेकर कण्व ऋषि आये। राम को चिंताकुल देखकर वाल्मीकि ने कण्व ऋषि से कहा था कि नैमिषारण्य के दृश्य दिखाकर इनका मनोविनोद करो।

राम के चित्त को वन की रमणीयता की ओर आकर्षित करके कण्व ने पूछा—यह वन आपको प्रिय है न ?

राम—इस वन के प्रति मेरे हृदय में बड़ा सम्मान है। प्रिय है या नहीं, इस प्रश्न के लिए अवकाश ही नहीं।

नैमिषारण्य के प्रति राम की भक्ति देखकर कण्व ऋषि ने नैमिषारण्य की ही प्रशंसा आरंभ कर दी। परंतु राम का ध्यान तब भी प्रवासी मनुष्य तथा जीव-जंतुओं की ओर ही जाता था। उनका शोकावेग कम न हुआ।

कुछ समय के पश्चात् कण्व ने होमाग्नि के धुएँ से भयभीत भौरों को कमलों के भीतर प्रवेश करने के लिए उड़ते देखा। निरंतर आहुति डालने से धुआँ इतना बढ़ गया कि राम की आँखें दुखने लगीं। तब उन्होंने कहा—सीता के विरह की अश्रुधारा टपकाती हुई मेरी दुःखित आँखें अब धुएँ से और पीड़ित हो रही हैं।

तब कएव ने राम को पुष्करिणी में स्नान कर और शीतल जल से आँखें धोकर विश्राम करने को कहा और वे स्वयं कुलपति के हवन में चले गये ।

राम उस पुष्करिणी में उतर गये । जल में एक छाया देखकर आश्चर्य से कहने लगे—यहाँ सीता कैसे आई ?

राम को देखकर सीता ने कहा—अरे ! हसों के देखने में मग्न होने के कारण मैंने इनको आते देखा ही नहीं ।

अब सीता वहाँ से हट गईं । उनके हट जाने से छाया भी हट गई ।

वहाँ छाया न देखकर राम ने कहा—मेरा सत्कार किये बिना सीता कैसे चली गई । उन्हें पकड़ने के लिए उधर हाथ बढ़ाकर वे कहने लगे—यह सीता नहीं है; यह तो पुष्करिणी-तट पर कहीं जाती हुई सीता की, जल में पड़ी, छाया है ।

राम अब छाया के मूल-कारण सीता को ढूँढ़ने लगे; परंतु पुष्करिणी का तट तो जन-शून्य था । आकृति के बिना उस प्रतिबिंब को असंभव जानकर राम सोचने लगे कि बात क्या है । उधर सीता ने इन्हें अपनी छाया से दुःखित देखकर अपनी छाया भी हटा ली । राम अब मूर्च्छित हो गये ।

राम को मूर्च्छित देखकर सीता उनके पास गये बिना न रह सकीं । पास जाकर राम को अचेत पड़ा देखा तो उन्होंने व्याकुल होकर उनका स्पर्श कर लिया । राम को चेत आ गया । सीता अलग हट गईं । राम को अपना शरीर रोमांचित-सा जान पड़ा । निर्वासित दशा में ऐसा साहस करने से सीता डर गईं ।

राम ने रोते हुए कहा—सीता ! मुझे पृथक् मत करो ।

सीता ने मन में कहा—मैं निरपराध हूँ ।

राम—वैदेही ! मुझे दर्शन दो ।

सीता—सिद्ध वाल्मीकि की आज्ञा टल नहीं सकती। इसीलिए आप मुझे देख नहीं पाते। मैं अभागिन क्या करूँ ?

राम फिर कहने लगे—इस लंबे क्रोध को त्याग दो।

सीता—मैं भी आपसे यही प्रार्थना करती हूँ।

राम—तुम मेरे लिए कठोर क्यों हो ?

सीता—नाथ ! यह उलाहना उल्टा है।

राम—जानकी ! मैं कहता हूँ कि तुम सच्चरित्र हो।

सीता प्रसन्न होकर बोलों—अहो ! तो फिर ये प्राण त्यागने योग्य नहीं हैं।

राम ने फिर कहा—तुम्हें जो देश से निकाल दिया है....।

सीता—आप तो सब सेवकों के रक्षक हैं।

राम ने अब प्रार्थना की—यह दोष होने पर भी तुम प्रसन्न हो जाओ।

सीता—मैं सदैव प्रसन्न हूँ।

इस प्रकार विलाप करते हुए राम को जब कुछ उत्तर सुनाई न दिया (क्योंकि मुनि के प्रभाव से सीता के वचन और दर्शन गुप्त थे) तब “हा वैदेही ! जनक-पुत्री !” कहकर वे फिर मूर्च्छित हो गये।

सीता दुपट्टे से हवा करने लगीं। राम ने सचेत होकर दुपट्टा पकड़ लिया और कहा कि यह दुपट्टे का पल्ला-सा क्या है ? यह क्या होगा ? फिर सोचकर बोले—सीता के बिना कोई नहीं दीखता जो अपने आँचल से मुझे निरंतर हवा कर सके।

सीता को देखने की इच्छा से राम ने आँखें खोलीं, परंतु आँसू निकलने के कारण कुछ भी दीख न पड़ा। आँसू पोंछने के लिए आँचल खींचने लगे।

सीता ने उत्तरीय को तो छोड़ दिया परंतु मन में कहा कि

पराये वस्त्र से आपका आँसू पोंछना उचित नहीं। गिरे हुए वस्त्र को देखकर राम ने कहा—यह क्या ! केवल उत्तरीय ही दिखता है, इसको धारण करनेवाला नहीं ! राम ने उत्तरीय को देखकर पहचान लिया कि यह तो वही है जिसे चित्रकूट की वनदेवी मायावती ने दिया था। परिचित उत्तरीय को देखकर राम अत्यंत प्रसन्न हुए और कहने लगे—इस उत्तरीय का विशेष सम्मान कैसे करूँ ? फिर कुछ विचारकर उन्होंने उत्तरीय स्वयं ओढ़ लिया। इसमें उन्हें असाधारण सम्मान दीख पड़ा। परंतु फिर कुछ विचार हुआ कि दूसरा उत्तरीय ओढ़े देखकर मुनिजन मुझे क्या कहेंगे। इस लिए अपना उत्तरीय उतार दिया।

पृथ्वी पर गिरने से पहले ही उस उत्तरीय को पकड़कर सीता ने ओढ़ लिया। नीचे गिरने से पहले ही उत्तरीय को हट गया देखकर राम विस्मित हुए। उन्होंने समझा कि अब मनोरथ की सफलता समीप है। फिर वे सोचने लगे कि उठाये जाते हुए उत्तरीय की छाया तो जल में दिखाई दी, पर सीता नहीं। सिद्ध तपस्वियों के द्वारा उसमें यह प्रभाव हो गया है। अब उसके दर्शन शीघ्र कैसे हों ?

ऐसा विचारकर राम ने फिर कहा—वैदेही ! पिछले वृत्तांत का भी कुछ स्मरण है जो मुझे इस प्रकार दर्शनमात्र से भी सत्कृत नहीं करती ?

सीता ने मन-ही-मन कहा—कैसा पिछला वृत्तांत ?

राम—तुम्हें स्मरण है कि चित्रकूट पर जब तुम फूल चुनने को जाती थीं तब मैं बिना कहे, पीछे से आकर, प्रेमपूर्वक भोली को पकड़कर बटोरे गये फूलों को पृथ्वी पर बिखेर देता था ?

सीता—साहसिक ! तुम्हीं ने मुझे दूर कर दिया है।

सायंकाल समीप जानकर सीता ने अब जाना चाहा। इस

समय राम की खोज में कौशिक वहाँ आ पहुँचा। कौशिक को आता देखकर सीता चली गई। कौशिक ने राम से कहा—आज आपको प्रातःकाल में ढूँढ़ते-ढूँढ़ते सायंकाल हो गया। मैंने सुना है कि मुनि-कन्याओं और अप्सरा ने एक तपोवन-रहस्य के विषय में मंत्रणा की है। वह आपको कुछ अप्रिय है। वही कहने को मैं व्याकुल हो रहा हूँ।

राम—कैसा तपोवन-रहस्य ?

कौशिक ने तिलोत्तमा के, सीता का रूप धारण कर, राम का उपहास करने की वार्ता कही। राम ने समझा कि यह ठीक ही है; अन्यथा सीता की निकटता का सूचक उत्तरीय तो दिखाई दे परंतु वह स्वयं न दिखे, यह मनुष्यों से असंभव है। मुझे कामरूपधारिणी तिलोत्तमा ने पूर्णतया ठग लिया।

कौशिक ने राम को विस्मित-सा देखकर कहा—उससे क्या आप ठगे गये है ?

राम—हाँ, मैं ठगा गया हूँ।

कौशिक—क्या मेरा सुना हुआ रहस्य मिथ्या हो सकता है ? इस समय सूर्यदेव अस्त हो गये।

—* ५ *—

प्रातःकाल नित्य-कृत्य से निपटकर राम तपोधनियों को प्रणाम करने के लिए मंडप में गये। परंतु पिछले दिन की घटना से वे विस्मित और चिंतित थे।

राम जब इस प्रकार चिंतित थे तब कौशिक ने उनसे सिंहासन पर बैठने को कहा। कौशिक ने सीता के विषय में उनका अभिप्राय जानना चाहा। अतः वह राम से कहने लगा—सिंहासन के ये सिंह, अधिक भार उठाने से थके हुए के समान, मुख-द्वारा

से निकले हुए मोतियों की माला के बहाने से भाग निकाल रहे हैं। मैं समझता हूँ कि भुजाओं से पृथ्वी को और हृदय से पृथ्वी की पुत्री सीता को उठाये रहने से आप अधिक भारी हो गये हैं।

राम समझ गये कि सीता का प्रसंग छोड़कर यह कुछ जानना चाहता है। यह बाल-सखा है; सो इससे मैं सब वृत्तांत कहे देता हूँ। वे कहने लगे—मित्र! मैं निरंतर सीता को स्मरण करता रहता हूँ।

कौशिक—दोष के कारण या गुण के कारण ?

राम—न दोष से, न गुण से।

इस उत्तर से विस्मित होकर कौशिक ने पूछा—इन दोनों को छोड़कर स्त्रियाँ कैसे स्मरण की जा सकती हैं ?

राम—अन्य मनुष्यों का प्रेमावेश कारण पर आश्रित रहता है, परंतु राम और सीता में यह बात नहीं है। सुख-दुःख में स्पष्ट होने पर भी सीता के लिए मेरा स्वाभाविक प्रेम-बंधन, जो दोष और गुण की अपेक्षा नहीं करता है, मेरी आत्मा के समान सीता पर चिरकाल से अप्रकट बना रहा है।

कौशिक—मित्र! कुसुम सद्यः कोमल वैदेही को भूटे मधुर वचनों से आप मेरे सामने न ठगें। आप ही देवी सीता के बिना.....

राम—यह विचार ठीक नहीं है कि मैं एकांत में सीता के प्रति उदासीन हूँ। मेरा प्रेम (प्रजा-रंजन के कार्य में लगे रहने के कारण) बाहर से कर्कश है, परंतु भीतर से (सीता के प्रति) राग-अनुराग से लिप्त, कठिन मृणाल के कोमल तंतुओं के समान, गुप्त है।

राम ने यह विषय दोनों के लिए दुःखदायी समझकर कौशिक को, बाहर द्वारपालों को यह संदेश दे आने के लिए, भेजा कि तपस्वियों के आने का समय हो गया है; जो आना चाहें उन्हें यहाँ सादर ले आवें।

कौशिक बाहर जाकर शीघ्र ही लौट आया और राम से

बोला—अपनी कला दिखाने के लिए बाहर दो तापस-कुमार आये हैं। उनका रंग साँवला-सिलोना है; उनके शरीर में यौवन प्रकट नहीं हुआ है; बाल्यावस्था के रूप-लावण्य के कारण वे कामदेव के पुत्रों के समान हैं; वे आकार में ऊँचे, स्वभाव से निरालस्य, स्फूर्तिमान्, बली, अत्यंत धीर और ललित तथा उदार हैं।

यह वर्णन सुनकर राम ने पूछा—तो मेरे पास आने में क्या बाधा है ?

कौशिक ने कहा—कुतूहल उत्पन्न करनेवाले इन दोनों कुमारों का परिचय पहले आप सुन लें। ये दोनों भगवान् वाल्मीकि के शिष्य हैं। वीणा वजाने में अति प्रवीण हैं। उन्होंने कहा है कि महर्षि की यह आज्ञा है—महाकवि की बनाई हुई, महापुरुष के चरित्र की रचना को, जो कठिन विन्यासवाली है, वीणा की तंत्रियों के रस से ताल-मेल करके गाना। वह रचना महान् अर्थ से गंभीर है, उसे पहले किसी ने सुना नहीं है, उसका प्रत्येक अक्षर योग द्वारा विरचित है और गांधर्व-वेद के संवाद से सरस है। यह रचना सुनकर संगीत कला से विशेष प्रसन्न होकर राजा जो करे सो जानना।

राम ने उनके कथन को विद्याभिमान और वीरता के गर्व से भरा हुआ जाना। उन्हें शीघ्र बुला लाने के लिए मित्र कौशिक से इसलिए कहा कि ऐसा न हो कि अधिक समय तक खड़े रहने से वे आत्म-ग्लानि के कारण लौट जायँ।

कौशिक—इसमें आत्म-ग्लानि कैसी ? परस्पर प्रेम, आकार की एकरूपता और काकपक्ष से विभूषित मुख को देखकर जैसे महाराज दशरथ के जीवन-काल में राम-लक्ष्मण राजधानी को अलंकृत किया करते थे, वैसे ही आपके बाल-भाव और महाराज को

स्मरण कर, डबडवाई आँखों से, सौविदल्ल कंचुकी बातचीत में उन्हें लगाये हुए हैं।

राम को यह सुनकर और भी अचंभा हुआ कि उनकी आकृति हमारे बाल्यकाल के सदृश है। उन्हें देखने के लिए कुतूहल बढ़ने लगा। उन्हें शीघ्र बुला भेजा। कौशिक उन्हें साथ ले आया।

उन तापस-कुमारों को देखकर राम अपने आपको भूल गये। हृदय में भय, हर्ष, शोक, दया आदि भावों के संमिश्रण से उनकी विचित्र अवस्था हो गई। उन्हें मूर्च्छा-सी आने लगी। आँखों से आँसू निकलने लगे।

इधर राम की ओर जैसे-जैसे कुश बढ़ने लगे वैसे-वैसे, हृदय के कंपित करनेवाले भय से अंगों पर से उनका वश जाता रहा। आत्माभिमान उनसे पृथक् होने लगा। राम के सामने बिना सिर झुकाये खड़े रहना उनके लिए कठिन हो गया। कुश ने राम के आगे सिर झुका ही दिया। तब लव ने भी, भाई की भाँति प्रभावित होकर, राम को प्रणाम किया।

उन्हें प्रणाम करते देखकर राम को, मर्यादा-भंग होने से, दुःख हुआ। प्रणाम के उत्तर में उन्होंने कहा—मेरी आज्ञा से यह प्रणाम आपके गुरु के ही चरणों में अर्पित हो।

अब कुश और लव ने राम से कुशल पूछी।

राम ने कहा—आपके दर्शन-मात्र से कुशल है।

राम ने उन्हें हृदय से लगा लिया। मन प्रफुल्लित हो गया। दोनों को आधे सिंहासन पर बैठा लिया। जब कुमारों ने सिंहासन पर बैठना अनुचित समझा तब राम ने दोनों को गोद में बैठा लिया। आँखों में आँसू उमड़ आये। उन्हें फिर छाती से लगाकर राम पूछने लगे—कौशिक ! सीता को निर्वासित किये कितने वर्ष हुए ?
कौशिक ने कुछ सोचकर कहा—यह दसवाँ वर्ष है।

राम ने कुमारों को देखकर कहा कि यदि प्रसव सकुशल हुआ हो और यदि उसकी संतान जीवित हो तो उसकी इस समय इतनी ही आयु होगी। यह विचार आने से कौशिक और राम दोनों को असह्य वेदना पीड़ित करने लगी। राम, कुमारों को छाती से लगाकर, रोने लगे।

इस समय कौशिक सहसा व्याकुल होकर बोला—हाय ! तपस्वी-कुमारों को छड़िए, ये जीवित रहें। सिंहासन से नीचे उतर आवें।

राम ने कुमारों को छोड़ दिया और कौशिक से ऐसा कहने का कारण पूछा।

कौशिक ने बताया—अयोध्या के रहनेवाले वृद्ध पुरुषों से मैंने सुना है कि इस सिंहासन पर रघु-वंशियों के अतिरिक्त जो बैठता है उसके सिर के सैकड़ों टुकड़े हो जाते हैं।

अब राम ने घबड़ाकर बालकों को शीघ्र नीचे उतार दिया और उनसे पूछा—तुम स्वस्थ हो न ?

कुश-लव—हम तो स्वस्थ हैं। हमारे सिरों में कुछ भी विकार नहीं है।

कौशिक इससे आश्चर्य करने लगा। परंतु राम ने कहा—इसमें आश्चर्य क्या ? तपस्वियों के शरीर स्वस्थयन-युक्त होते हैं।

राम ने फिर कुमारों की सुंदरता से बड़े हुए कुतूहल के कारण उनसे पूछा—तुमने अपने जन्म और दीक्षा से किस वर्ण और आश्रम को अलंकृत किया है ?

लव—मेरा दूसरा वर्ण और पहला आश्रम है।

राम को यह जानकर प्रसन्नता हुई कि ये ब्राह्मण नहीं हैं। अतएव उन्होंने सोचा कि इनके प्रणाम करने से मुझे कुछ दोष नहीं लगा। उन्होंने कुमारों से फिर पूछा—क्षत्रियकुलों के पितामह सूर्य और चंद्र में से तुम्हारे वंश का कर्त्ता कौन है ?

लव—सूर्यदेव ।

राम—कुल तो हमारे समान है ।

कौशिक—क्या दोनों का एक ही उत्तर है ?

लव—हाँ, हम सहोदर भाई हैं ।

राम—आकृति तो समान है । क्या आयु में कुछ अंतर नहीं है ?

लव—हम यमज हैं ।

राम—तुम दोनों में से बड़ा कौन है और क्या नाम है ?

लव ने कुश की ओर संकेत किया और दोनों के नाम बताये ।

राम—आपके गुरु का नाम क्या है ?

लव—भगवान् वाल्मीकि हमारे गुरु हैं ।

राम—किस संबंध से ?

लव—उपनयन-संबंध से ।

राम—मैं तुम्हारे शरीर के धाता (पिता) का नाम जानना चाहता हूँ ।

लव—मैं उनका नाम नहीं जानता । कोई भी इस तपोवन में उनका नाम नहीं लेता ।

परंतु कुश ने कहा—मैं उनका नाम जानता हूँ । उनका नाम 'निर्दय' है । माता उन्हें इसी नाम से पुकारती हैं ।

राम को इस नाम से आश्चर्य हुआ । कौशिक ने कुश से पूछा—क्या क्रोध में आकर वे ऐसा कहती हैं या साधारण दशा में भी ?

कुश—यदि बालभाव के कारण हममें कोई दोष देखती हैं तो इस प्रकार ताना दिया करती हैं "निर्दय के पुत्रो ! चपलता मत करो ।"

अब कौशिक ने कहा—इनके पिता का नाम यदि 'निर्दय'

है तो उसने इनकी माता का या तो अपमान किया होगा अथवा उसे निर्वासित किया होगा । उस 'निर्दय' का कुछ करने में असमर्थ होने के कारण इसी वचन से वह इन कुमारों को डाँटती होगी ।

राम भी इस पर सहमत हुए । परंतु उन्हें अपने ऊपर ग्लानि हुई । वे कहने लगे कि मुझें धिक्कार है । वह तपस्विनी मेरे अपराध के कारण अपने पुत्रों का इस प्रकार क्रोध-भरे वचनों से फटकारती है । इस विचार से राम की आँखें भर आईं । वे कुमारों से पूछने लगे—वह 'निर्दय' क्या तुम्हारे पास, आश्रम में, है ?

लव—नहीं ।

राम—क्या उसके विषय में कुछ सुना जाता है ?

लव चुप रहा । कुश ने कहा—हमने अब तक उसके चरणों में नमस्कार नहीं किया । माता की वेणी उसका जीवित होना बताती है ।

राम को अब इनकी माता का नाम जानने की इच्छा हुई; परंतु उन्होंने स्त्री के संबंध में, विशेषकर तपोवन में, प्रश्न करना उचित न समझा । अतः उन्होंने कौशिक से पूछने को कहा ।

कौशिक—तुम्हारी माता का क्या नाम है ?

लव—उनके दो नाम हैं । तपस्वी लोग उन्हें 'देवी' कहते हैं और भगवान् वाल्मीकि 'वधू' ।

यह सब सुनकर राम ने सोचा कि इन कुमारों का और हमारे कुटुंब का वृत्तांत एक-सा है । ऐसा सोचकर वे व्याकुल हो गये । परंतु जब कौशिक ने पूछा कि क्या आप इन्हें सीता के पुत्र समझते हैं तब राम 'हाँ' कह न सके । वे किसी तपस्विनी के साथ ऐसा संबंध जोड़ना ठीक नहीं समझते थे, किंतु इन युगल-कुमारों ने आयु, कुल, वर्ण, उन्नत शरीर और इस विपदा से मैथिली के

पुत्रों की संभावना को खड़ा करके राम को अति व्याकुल कर दिया।

कुमारों ने अब कविता गाने का कार्य आरंभ करना चाहा। राम ने यह सोचकर कि मानव-जाति के लिए सरस्वती देवी की अपूर्व रचना है, इसे अपने मित्र, सभासद् आदि के साथ सुनना चाहिए, उन्होंने लक्ष्मण को अपने पास बुला भेजा। गाने के लिए प्रबंध होने लगा। राम स्वयं जरा टहलकर चिरकाल आसन पर बैठने से टाँगों की थकावट मिटाने लगे।

—* ६ *—

कौशिक द्वारा राम की आज्ञा पाकर कंचुकी ने सभा-मंडप में सबके बैठने का प्रबंध कर दिया। सब रघुवंशी, नगर-निवासी और ग्राम-निवासी उपस्थित हो गये। परदे के भीतर महाराज की तीनों माताएँ और तीनों छोटे भाइयों की बहुएँ भी बैठी थीं। राम ने कुश-लव से गान आरंभ करने को कहा।

कुश-लव—पाणि-ग्रहण किया दशरथ ने धर्मरूप से कर स्वीकार।

कौशल्या कैकेयि सुमित्रा मध्यमांगिनी अति सुकुमार ॥

यह सुनकर राम-लक्ष्मण प्रसन्न हुए कि कवि ने पिता को ही कथा का नायक बनाया है।

कुश-लव—कौशल्या से हुए राम अब कैकेयी से भरत महान।

लक्ष्मण और शत्रुघ्न कुँवर दो हुए सुमित्रा के मतिमान ॥

सीता ब्याही गई राम से लक्ष्मणोर्मिला का उद्वाह।

भूप कुशध्वज-कन्याओं से हुआ भरत-शत्रुघ्न-विवाह ॥

शैशव-यौवन-संधि-स्थित वे वर्त्तमान नृप-राजकुमार।

तरुणी भोगोत्कंठा-नद में डूबे नहीं अनर्थ विचार ॥

लक्ष्मण—वाह ! वाह !

राम—विलंब न करो; गाओ :—

श्वेत हुए थे केश पिता के, काकपक्षधारी थे हम ।

ये तरु सब साकेत नगर के घुटने भर के थे उस दम ॥

कुश-लव—सिंहासन पर रामचंद्र के हुआ बैठने का जब साज ।

मामा के घर गये हुए थे भरत कुँवर करने कुछ काज ॥

अब राम ने मन में सोचा कि माता कैकेयी की निंदा यहाँ
अवश्य होगी । इस कारण इस प्रसंग को छोड़कर उन्होंने सीता-
हरण से गाने को कहा ।

कुश-लव—शर्पणखा से सुन रावण ने सीता का सौंदर्य-स्वरूप ।

थी उनकी सदेह की चोरी रक्षित रख चारित्र्य अनूप ॥

यह सुनकर लक्ष्मण ने राम की ओर देखा ।

कुश-लव—पुल बाँध वारिधि, मार रावण युद्ध के संघर्ष से ।

प्राप्त की सीता, पुनः लौटे अयोध्या हर्ष से ॥

राम—अहो, कैसा संक्षेप है ।

कुश-लव—राज्य प्राप्त कर राम ने सुना प्रजा-उपहास ।

लक्ष्मण द्वारा दे दिया सीता को वनवास ॥

भीगा हुआ आँसुओं से मुख उस अनाथ सीता का था ।

राघव-कुल-संतति-धारण से गर्भवास वह नीका था ॥

लौटे लक्ष्मण छोड़कर निर्जन वन को जान ।

हिंस्र जंतुओं से भरा था वह प्रांत महान ॥

लक्ष्मण—अहो, अपयश का भागी मैं ही हुआ !

राम—तुम्हारा इसमें क्या अपराध है ? ये काम तो मेरे
समझ जाते हैं ।

कुश-लव—बस, गान तो इतना ही है । इसके आगे निराश
सीता के प्राण-त्याग का वर्णन है । अतः अप्रिय कथा के भय से
कवि ने कथा समाप्त कर दी है ।

कुश ने इन दोनों को सीता-संबंधी कथा से अत्यंत दुःखी

देखकर लक्ष्मण से पूछा—आप क्या रामायण की कथा के नायक राम-लक्ष्मण हैं ?

लक्ष्मण—हाँ, हमें दुःख के भागी हैं।

कुश—क्या आप ही सीता को ले गये थे ?

लक्ष्मण ने लज्जित होकर कहा—हाँ।

कुश—सीता क्या राम की धर्मपत्नी हैं ?

लक्ष्मण—इसमें क्या संदेह ?

राम ने अब कुमारों से पूछा—तुमने यहाँ तक पढ़ा है अथवा कथा ही समाप्त हो गई ?

कुश—हम नहीं जानते।

राम ने अब कण्व से पूछना चाहा। उन्हें बुलाने के लिए लक्ष्मण को भेजा। कण्व आकर आसन पर बैठ गये और “लौटे लक्ष्मण छोड़कर” के आगे गाना आरंभ किया—

कण्व—शिष्यों से सीता की गाथा सुनके वाल्मीकि मुनिनाथ।

आशवासन दे चले तपोवन जनक-नंदिनी को ले साथ ॥

यह जानकर कि उन्हें वाल्मीकि महर्षि अपने आश्रम में ले गये, राम बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—महर्षि ने रघुकुल पर अनुग्रह किया। उन्होंने मुझे उबार लिया।

कुश-लव भी यह जानकर प्रसन्न हुए कि सीता सकुशल हैं। कुश ने लव से पूछा—भाई ! वाल्मीकि के तपोवन में वह सीता कौन है ?

लव—कोई भी नहीं; कविता की सीता के तो नाम के अक्षर-मात्र ही शेष रह गये हैं।

राम ने कण्व से पूछा—फिर क्या हुआ ?

कण्व—यथासमय सीता से ज-मे दो सुत तभी एक ही काल।

चंद्र-सूर्य पैदा होते हैं जैसे नभ में विशद विशाल ॥

लक्ष्मण ने यह सुनकर राम को पुत्र-जन्म पर बधाई दी। उन्हें रघुकुल की वृद्धि से हर्ष हुआ। कुश-लव ने भी राम को पुत्र-जन्म पर बधाई दी। राम ने मन-ही-मन कहा कि कदाचित् ये बालक कुश-लव ही हों।

कण्व—फिर करके विधिवत् जातकर्म, समयानुसार सब मान धर्म।

फिर किया नाम का संस्कार, आहूत हुए कुश लव कुमार ॥

अब तो सब रहस्य खुल गया। राम ने जान लिया कि ये ही सीता के पुत्र हैं। वे “हा पुत्र कुश! हा पुत्र लव!” पुकारने लगे। लक्ष्मण को भी यह जानकर हर्ष हुआ कि ये सीता-राम की ही संतान हैं। कुश-लव भी अचंभे में आ गये। राम ने उन्हें हृदय से लगा लिया और सब मूर्च्छित हो गये। लक्ष्मण भी सचेत न रह सके।

उन्हें मूर्च्छित देखकर कण्व व्याकुल हो गये। उन्होंने सोचा कि कहीं चारों रघुवीरों ने देह न छोड़ दी हो। परंतु उनकी साँस चलती देखकर उन्हें कुछ धैर्य हुआ। वे वाल्मीकि और सीता को शीघ्र बुला लाये।

वाल्मीकि ने सीता से कहा—जल्दी करो ॥ बिना उपाय की गई मूर्च्छा मृत्यु में बदल सकती है।

सीता को यह वचन सुनकर अधीरता हुई परंतु वाल्मीकि ने बताया कि साँस चल रही है, ये जीवित हैं।

वाल्मीकि ने अब सीता को राम पर दृष्टि डालने को कहा।

सीता ने लज्जा के साथ वाल्मीकि से कहा—भगवन्! उनकी आज्ञा है कि मैं उनके सामने न आऊँ।

वाल्मीकि—मेरी उपस्थिति में अनुमति देने या रोकनेवाला कौन है? जाओ, मैंने तुम्हें उनको देखने की अनुमति दे दी; अपने स्वामी के पास निडर होकर जाओ।

राम की दशा देखने से सीता को शोक हुआ। वे भूमि पर गिरकर रोने लगीं।

वाल्मीकि ने उन्हें धैर्य रखने का कहा, फिर ऋषि ने राम और लक्ष्मण को तथा सीता ने कुश और लव को सचेत किया।

राम ने सचेत होकर कण्व से पूछा—क्या वैदेही जीवित है?

वाल्मीकि—सामने ही तो है।

सीता को देखकर राम लज्जित हो गये।

लक्ष्मण ने स्थिर होकर पूछा—भाई क्या सचेत हो गये?

राम—अभागा स्थिर हो गया हूँ।

कुश और लव ने स्थिर होकर राम के पैर छुए। राम ने दोनों को हृदय से लगाकर शांत किया। दोनों कुमार आँसू पोंछकर खड़े हो गये।

सीता एक ओर मुँह किये खड़ी थीं। उन्हें ऐसे देखकर राम ने कहा—ओह ! सीता की उदासीनता तो देखो कि चिरकाल के बाद हमसे मिलकर इधर मुँह भी नहीं करती।

इस पर वाल्मीकि ने सक्रोध कहा—हे महाकुलीन विवेकशील राजन् ! कुश-लव की माता, भगवती पृथ्वी की पुत्री देवी सीता को, केवल लोकापवाद सुनकर, निर्वासित कर देना क्या उचित था ? जनक ने सीता का दान किया और दशरथ ने उस दान की स्वीकृति दी थी; अरुंधती ने सीता के लिए मंगल-विधान किया था; मैंने उसके चरित्र को विशुद्ध बताया था और आग ने उसकी शुद्धता की सान्नी दी थी।

राम ने व्याकुलता प्रकट की।

वाल्मीकि ने फिर कहा—लक्ष्मण ! क्या यह ठीक था ? अथवा तुम्हें क्या उलाहना दूँ, क्योंकि तुम तो छोटे हो, आज्ञा-पालन ही तुम्हारा धर्म है।

मुनि ने अब राम से कहा—रावण के वध के पश्चात् तुमने सीता के ग्रहण के लिए किस देवता को प्रमाण माना था ?

राम—अग्निदेवता

वाल्मीकि—तो उनमें अविश्वास होने का कारण ?

राम से इस प्रकार प्रश्न होते सुनकर सीता ने कहा—शोक !

मुझ अभागिन के लिए महाराज का तिरस्कार किया जा रहा है !

वाल्मीकि ने फिर कहा—कुश-लव की माता के चरित्र के साक्ष्य के लिए अग्निदेव के नियुक्त किये जाने पर भी तुमने निराधार लोकापवाद को हृदय में स्थान दिया ?

राम ने हाथ से महर्षि को छुआ ।

वाल्मीकि—मुझे हाथ से क्यों रोकते हो ? सिर खुजलाने से क्या ? कुश-लव को स्वीकार करो । हम अपने आश्रम को जाते हैं ।

वाल्मीकि ने अब सीता से कहा—वैदेही ! तपस्वियों को भी राजा दंड दे सकता है । तुम अपनी आत्मा की परिशुद्धि करो; विकार के उचित प्रतिकार की घोषणा करो ।

सीता ने हाथ जोड़कर कहा—सब लोकपाल, आकाशगामी देवता, गंधर्व, सिद्ध, विद्याधर, अपने प्रभाव से स्वर्गलोक के रहस्य को प्रत्यक्ष करनेवाले वाल्मीकि, विश्वामित्र, वशिष्ठ आदि श्रेष्ठ महर्षि और सबके शुभाशुभ कर्म के साक्षी—रघुकुल के पितामह—सूर्य भगवान् सुनें कि सीता चरित्र-शुद्धि के अनंतर इस प्रकार शपथ लेती है—

इतना कहते ही संसार के स्थावर और जंगम सभी जीव निःस्तब्ध हो गये । सीता कहने लगीं—देवताओं और असुरों में भी अद्वितीय धनुर्धर रघुकुलनंदन को छोड़कर यदि मैंने और किसी को, पातिव्रत्य के विरुद्ध भाव से, देखा हो या कुछ वचन कहे हों या हृदय से चिंता की हो तो इस सत्य वचन से सकल

लोक को प्रत्यक्ष दर्शन देती हुई दिव्य रूपवती वसुंधरा लोगों के सामने उसका स्पष्ट प्रमाण उपस्थित करें।

उसी समय पुष्प-वर्षा वरती हुई, एक-सी उज्ज्वल-वेशधारिणी स्त्रियों के साथ, पृथ्वी माता प्रकट हो गई। सबने हाथ जोड़कर उनका स्वागत किया।

पृथ्वी माता ने कहा—पति-गृह को लौट रही पतिव्रताओं की आज्ञा का उल्लंघन नहीं हो सकता। मैं यहाँ सीता के कारण ही प्रकट हुई हूँ। सब ऋषि, दानव, सिद्ध, गंधर्व, किन्नर, मनुष्य और लोकपाल क्षण भर ध्यान से सुनें। दशरथ के पुत्र राम को छोड़कर सीता ने मन से भी पर-पुरुष का ध्यान नहीं किया। सब लोग इसे भली-भाँति जान लें।

इसी समय आकाश से पुष्प-वृष्टि हुई और बाजे बजने लगे। सबको असीम हर्ष हुआ। सबने हाथ जोड़कर कहा—यह अलौकिक जोड़ी फिर मिल जाय।

बाल्मीकि—राम ! सीता की पवित्रता को स्वीकार करते हुए इसका सत्कार करो।

राम ने मुनि की आज्ञा स्वीकार कर ली। सीता ने हाथ जोड़कर राम का स्वागत किया।

लक्ष्मण ने हर्ष और लज्जा से कहा—यह वध्य पापी लक्ष्मण प्रणाम करता है।

सीता—अपनी निंदा क्यों करते हो ? इसी प्रकार बड़े भाई की आज्ञा का पालन करते हुए तुम चिरंजीव रहो।

बाल्मीकि—वत्स ! राम ! तुमने सीता को ग्रहण कर लिया। अब इसे स्वयं बुलाकर, हाथ-से-हाथ पकड़कर, यज्ञाधिकार में नियुक्त करो।

राम ने जब लज्जा के साथ सीता का हाथ पकड़ लिया तब सीता के प्राण में प्राण आये।

पृथ्वी माता आशीर्वाद देकर अंतर्धान हो गई।

राम ने वाल्मीकि से कहा—महर्षि ! आपकी आज्ञा से मैं लक्ष्मण का अभिषेक करना चाहता हूँ।

यह सुनते ही लक्ष्मण ने हाथ जोड़कर कहा—आप यदि प्रसन्न हैं तो युवराज शब्द को पुत्र के साथ जोड़कर चिरकाल के सेवक लक्ष्मण का सत्कार करें।

वाल्मीकि ने भी लक्ष्मण का समर्थन किया। राम को यही स्वीकार करना पड़ा। राम ने लक्ष्मण से अभिषेक की सामग्री लाने को कहा।

लक्ष्मण—देवताओं ने अभिषेक की सामग्री पहले ही जुटा दी है। देखिए, इंद्रदेव चंद्र-सा श्वेत छत्र पकड़े हुए हैं, गंगा की कन्या और इंद्राणी दो चमर लिये हुए हैं, और प्रजा-जन जल से भरे सोने के कलश उठाये खड़े हैं।

राम—तो हमारा राज-दंड को ग्रहण करने का अधिकार हुआ।

लक्ष्मण—इसमें मुझे भाग देकर अनुगृहीत कीजिए।

राम ने लक्ष्मण को राज-दंड दे दिया और वाल्मीकि से कहा कि अपने शिष्य का अभिषेक कीजिए।

महर्षि वाल्मीकि ने कुश का राज्याभिषेक कर दिया। चारों ओर जय-ध्वनि गूँज उठी। सब लोग प्रसन्न हो गये।

राम ने अब कुश से कहा—राजन् ! यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो मैं युवराज-पद पर लव का अभिषेक करना चाहता हूँ।

कुश ने पिता की आज्ञा स्वीकार कर ली। राम ने साभिजाप कलश लेकर लव का अभिषेक कर दिया। इससे सब लोगों को अपार हर्ष हुआ।

दूसरा भाग

[Faint, illegible handwritten text, possibly a signature or scribble]

[Faint, illegible handwritten text]

[Faint, illegible handwritten text, possibly a signature or scribble]

[Faint, illegible handwritten text]

स्वप्न-वासवदत्ता

—* १ *—

महाराज उदयन कौशांबी के एक प्रसिद्ध राजा थे। उनकी अत्यंत प्रिय रानी महाराज प्रद्योत की कन्या वासवदत्ता थी। उसके प्रेम में लीन होकर अंत में उन्होंने राज्य-भार अपने मंत्रियों पर छोड़ दिया। मंत्रियों ने अपने को राज्य-वृद्धि के लिए उत्तरदायी समझकर, इसी के निमित्त, अत्यंत सोच-विचार से एक उपाय निश्चित किया। मंत्री यौगंधरायण ने उसी उपाय के अनुसार कार्य करने की प्रतिज्ञा की।

मंत्री यौगंधरायण ने संन्यासी का वेष धारण किया और वासवदत्ता ने आवंतिका का। इसके पश्चात् दोनों मगध की ओर चल पड़े। मगध के निकट एक तपोवन में राजपुरुषों के 'हटो, हटो' शब्द सुनाई पड़े। इस अपरिचित तिरस्कार से उन्हें खेद हुआ; वासवदत्ता को तो असीम दुःख हुआ। यौगंधरायण ने यह कहकर उसे धीरज बँधाया कि अनजान में देवताओं का भी तिरस्कार हो जाता है। और फिर, ये सुख-दुःख तो चक्र के समान घूमते रहते हैं।

राजपुरुषों के फिर वही 'हटो, हटो' वचन सुनकर एक कंचुकी ने आकर उनको डाँटा और कहा—नहीं, नहीं, निकालो मत। यहाँ से भी निकालते हो? इससे राजा की अकीर्ति होती है। तपस्वियों के साथ कठोर व्यवहार करना उचित नहीं। नगर के कलह आदि से बचने के लिए ये महानुभाव वन में रहते हैं, यहाँ भी तुम कष्ट देते हो।

कंचुकी के इन भावों को देखकर निःशंक हुए मंत्री यौगंधरायण, वासवदत्ता सहित, उसकी ओर बढ़ गए। यौगंधरायण ने राजपुरुषों के दूर हटाने का कारण पूछा।

कंचुकी—सुनिए, ये महाराज दर्शक की बहन पद्मावती हैं। अपनी माता महादेवी के दर्शन के लिए तपोवन आई थीं। अब उनकी आज्ञा से राजगृह को जा रही हैं। आज, इस आश्रम में, विश्राम करने का विचार है। आप निर्भय होकर अपना कार्य करें। कोई बाधा नहीं होगी। यह राजकन्या धर्म-प्रिय है। इसके कुल का व्रत ही ऐसा है।

यौगंधरायण ने अब मन-ही-मन सोचा—यह मगधराज की पुत्री पद्मावती है, जो पुष्पकभद्र आदि ज्योतिषियों के कहने के अनुसार 'हमारी रानी होगी'। हमारे स्वामी की स्त्री होने के कारण इसके प्रति हमारी गहरी भक्ति उत्पन्न हो गई है।

वासवदत्ता—'राजकन्या है' यह सुनकर, उसके प्रति मुझे अपनी बहन का-सा स्नेह उठ रहा है।

अतः यौगंधरायण और वासवदत्ता को अब पद्मावती के देखने की इच्छा हुई। दोनों पद्मावती की ओर बढ़ गए। पद्मावती उस समय एक तापसी के निकट बैठी थी। तापसी एक दासी से पूछ रही थी कि इसके विवाह की कहीं बातचीत हुई है या नहीं।

दासी—हाँ, माता जी ! उज्जयिनी के राजा प्रद्योत ने अपने पुत्र के लिए कहला भेजा है।

इस उत्तर से वासवदत्ता को विशेष हर्ष हुआ। वह मन-ही-मन कहने लगी कि तब तो यह अपनी ही हो गई।

तापसी—ठीक है। इसकी सुंदरता बड़े मान के योग्य है। दोनों राजकुल अति प्रसिद्ध हैं।

इस विषय में उदासीनता प्रकट करने के लिए पद्मावती ने कंचुकी से पूछा—आर्य ! कोई ऐसे मुनि देखे हैं जिनके अभीष्ट पूर्ण कर मैं अनुगृहीत होऊँ ? आप तपस्वियों से निवेदन करें कि उन्हें क्या-क्या मनोवांछित है । ज्ञात होने पर वह पूर्ण किया जाय ।

कंचुकी ने ऐसी ही घोषणा कर दी । यह सुअवसर यौगंधरायण के हाथ लगा । वह कंचुकी से बोला—‘मेरी कुछ इच्छा है ।’ यह सुनकर पद्मावती ने अपना तपोवन में आना सफल समझा ।

कंचुकी ने यौगंधरायण से पूछा—आपकी क्या इच्छा है ?

यौगंधरायण—यह मेरी बहन है । इसका पति परदेश गया है । मेरी इतनी ही इच्छा है कि राजकन्या इसे कुछ समय तक अपने पास रख लें ।

कंचुकी इसमें टालमटोल करने लगा । परंतु पद्मावती ने कहा—स्वयं ही उन्हें मनोवांछित माँगने के लिए कहकर अब ‘नहीं’ कैसे कर सकते हो ? जो ये कहते हैं वह कार्य स्वीकार करना होगा ।

यौगंधरायण ने अपना कार्य स्वीकृत जानकर अपने को धन्य समझा । उसने वासवदत्ता से राजकन्या के पास जाने को कहा ।

वासवदत्ता—मैं अभागिन यह चली ।

ऐसा विचार करती हुई वह पद्मावती के पास चली गई ।

अब यौगंधरायण ने सोचा कि वासवदत्ता का भार मेरे सिर से टल गया । मंत्रियों के साथ जैसी मंत्रणा हुई थी वैसा ही हुआ । राजा के फिर प्रतिष्ठा पाने पर यही पद्मावती वासवदत्ता के सच्चरित्र की साक्षी होगी; क्योंकि ज्योतिषियों के कहने के अनुसार पद्मावती महाराज उदयन की रानी अवश्य होंगी । उन्होंने तो यह विपत्ति पहले ही बता दी थी । सो उन पर विश्वास कर मैंने यह चाल चली है ।

इस प्रकार मंत्री यौगंधरायण विचार कर रहा था कि एक विद्यार्थी वहाँ आ उपस्थित हुआ। वह स्त्रियों को तपोवन में देखकर विस्मित हुआ। परंतु कंचुकी ने “आश्रम तो सभी के लिए है” ऐसा कहकर उसे आगे बढ़ आने के लिए कहा। उसे देखकर पर-पुरुष के दर्शन से वचने के लिए वासवदत्ता एक ओर हट गई।

विद्यार्थी के आचमन आदि कर चुकने पर यौगंधरायण ने पूछा—आप कहाँ से आ रहे हैं? कहाँ जाना है? आपका कौन-सा स्थान है?

विद्यार्थी—सुनिए, मैं राजगृह से आ रहा हूँ। वत्सदेश में, मगध की सीमा पर, लावाणक नाम का एक स्थान है। वेदाध्ययन करने के लिए मैं वहीं रहता था। वहाँ अब एक दुर्घटना हो गई है। इस कारण विद्या समाप्त किए बिना ही आ गया हूँ।

यौगंधरायण—ऐसी क्या दुर्घटना हुई?

विद्यार्थी—उसी स्थान में उदयन राजा रहते हैं। वे अपनी रानी अवंतिपुत्री वासवदत्ता को अधिक मानते हैं। एक दिन राजा उदयन शिकार के लिए गए। उनकी अनुपस्थिति में रानी, गाँव में आग लग जाने से जल गई। मंत्री यौगंधरायण भी उसे बचाते-बचाते स्वयं जलकर मर गए। लौटने पर राजा को इस दुर्घटना से अत्यंत दुःख हुआ। वे आग में कूदकर प्राण देने के लिए तैयार हो गए। बड़ी कठिनाई से मंत्रियों ने उन्हें रोका। तब राजा उसके शरीर पर से जले हुए आभूषणों को हृदय से लगाकर शोक के कारण व्याकुल हुए और मूर्च्छित हो गये।

यह करुणामय वृत्तांत सुनकर सबका हृदय पिघल गया। हाय! हाय! शब्द अपने आप निकल पड़े। वासवदत्ता के तो आँसू भी निकल आये। आँसू बहते देखकर पद्मावती ने समझा कि मेरी सखी का हृदय बहुत दयालु है।

यौगंधरायण—हाँ, तब क्या हुआ ?

विद्यार्थी—तब कुछ समय के अनंतर राजा को चेत हुआ ।

चेतनता सुनकर पद्मावती ने अपनी कुशल समझी ।

विद्यार्थी—चैतन्य होकर राजा भूमि पर लोटते हुए उन्मत्त की नाई प्रलाप करने लगे—“हा वासवदत्ते ! हा अवंति-राजपुत्रि ! हा प्रिये !” उनका सारा शरीर धूलि से भर गया । इतना दुःख तो चकवा भी नहीं करता । अन्य पुरुष को भी वियोग से इतना दुःख नहीं होता । वह स्त्री धन्य है जिसे स्वामी इस प्रकार मानता है । वह जल जाने पर भी पति-स्नेह से जीवित है ।

यौगंधरायण—क्या किसी मंत्री ने राजा को शांत नहीं किया ?

विद्यार्थी—क्यों नहीं । मंत्री रुमण्वान् ने उनके शांत करने का भरसक प्रयत्न किया । राजा के न खाने पर उसने भी नहीं खाया; निरंतर रोते रहने से उसका मुख म्लान हो गया है । राजा के दुःख को मानता हुआ वह शरीर पर उचित वस्त्र भी धारण नहीं करता । दिन-रात राजा के शांत करने में लगा रहता है । यदि राजा ने प्राण त्याग दिये तो रुमण्वान् भी जीवित न रहेगा । बड़े यत्न से मंत्री रुमण्वान् महाराज को उस ग्राम से ले गया । जाते समय राजा यही विलाप करते जाते थे—“यहाँ मैं उसके साथ हँसता था; यहाँ उसके साथ संलाप करता था; यहाँ हम दोनों ने रात बिताई की थी । यहाँ हम दोनों भगड़ पड़े थे; इत्यादि ।”

राजा के चले जाने पर ग्राम उजड़ गया । मानो आकाश चंद्रमा तथा तारागण से रहित हो गया हो । अतः मैं भी वहाँ से चला आया हूँ ।

यह वृत्तांत सुनाकर विद्यार्थी ने, आज्ञा लेकर, अपना मार्ग लिया । यौगंधरायण भी राजकन्या पद्मावती तथा वासवदत्ता से आज्ञा लेकर अपने काम पर चला गया ।

Om Prakash
१-५-१९५५

—* २ *—

पद्मावती और वासवदत्ता की परस्पर प्रीति विशेष बढ़ गई। वे दोनों सदा एक साथ बैठती-उठती थीं। एक दिन दोनों गेंद खेलती हुई आपस में हँसी-ठट्टा कर रही थीं।

वासवदत्ता—सखी ! इतनी देर तक गेंद खेलने से तुम्हारे हाथ, लाल हो जाने के कारण, किसी दूसरे के-से हो गये हैं।

पद्मावती—जाने भी दो, तुम तो मुझे बना रही हो।

वासवदत्ता—नहीं, सखी ! कभी नहीं। सचमुच आज तुम अधिक सुंदर जान पड़ती हो। मैं चारों ओर तुम्हारा सुंदर मुख ही देखती हूँ।

पद्मावती—चलो हटो, मुझे बहुत मत बनाओ।

वासवदत्ता—अच्छा, महासेन प्रद्योत की पुत्रवधू ! मैं कुछ न कहूँगी।

तब एक दासी ने कहा—राजकुमारी उनसे विवाह नहीं करेंगी। वे तो वत्सराज उदयन के गुणों पर मोहित हैं।

वासवदत्ता ने सोचा—अच्छा, यह तो मेरे स्वामी के साथ ही विवाह की इच्छा करती है।

इस प्रकार बातचीत हो रही थी कि पद्मावती की धाय ने आकर शुभ सूचना दी—पद्मावती की सगाई वत्सराज उदयन से हो गई। उन्होंने विवाह करना स्वीकार कर लिया है।

वासवदत्ता को असीम दुःख हुआ। सहसा वह बोल उठी—कैसा अंधेर है ?

धाय—अंधेर कैसा ?

वासवदत्ता—क्यों ? इस प्रकार रो-पीटकर अब उदासीन हो गये हैं !

धाय—अजी ! महापुरुषों के हृदय पर शास्त्रों के कथन का अधिक प्रभाव पड़ता है। वे अपना शोक शीघ्र भूल जाते हैं। किसी कारण यहाँ महाराज उदयन को आये देखकर महाराज दर्शक ने पद्मावती के विवाह के विषय में स्वयं ही प्रस्ताव किया। उन्होंने स्वीकार कर लिया।

वासवदत्ता ने सोचा कि यदि ऐसा है तो महाराज निरपराध हैं। इस समय एक दासी ने आकर कहा—शीघ्र चलिए। आज ही इसके अनंतर वह शुभ दिन जानकर विवाहोत्सव आरंभ कर दिया गया है। आज ही विवाह का कँगना बाँधा जायगा। ऐसा महारानी कहती हैं।

—* ३ *

महाराज उदयन का विवाह पद्मावती के साथ होने का निश्चय सुनकर वासवदत्ता अति व्याकुल हुई। परंतु वह अभागिन कुछ कर नहीं सकती थी। मंत्री यौगंधरायण उसे गुप्त रहने का आदेश दे गया था। वह अपना हृदय भारी जानकर, भीतर आँगन में विवाह की भीड़-भाड़ के बीच पद्मावती को छोड़कर, अकेली प्रमदावन में चली गई। उसे कई प्रकार के विचार घेरने लगे। 'मेरे स्वामी भी अब और किसी के हो गए।' इस विचार से उसका हृदय दहल जाता था। वह कहती थी—मैं चकवी से भी निकृष्ट हूँ। बेचारी चकवी तो चकवे से पृथक् होते ही प्राणहीन हो जाती है परंतु मैं पति-वियोग से अभी तक जीवित हूँ।

इस प्रकार वासवदत्ता विचार-समुद्र में डूब रही थी, जब उसे दूँ दूँती हुई एक दासी आई। उसने प्रियंगु लता के नीचे शिला पर बैठी, चिंता में लीन, वासवदत्ता को देखा। पास पहुँचकर उसने जयमाल बनाने के लिए फूल आदि आगे रख दिए और

कहा कि हमारी महारानी कहती हैं—आप उच्च कुल की कन्या हैं, चतुर और कुशल हैं। इस कारण इस जयमाल को आप बना दें।

वासवदत्ता ने अति दुःखित होकर मन-ही-मन कहा—यह भी मुझे करना था ? ईश्वर बड़ा कठोर है।

दासी के कहने से वह माला गूँथने लगी। किसी-किसी पुष्प-पत्र आदि के लाभ के विषय में पूछ लेती थी। एक पत्ती के विषय में पूछने पर ज्ञात हुआ कि वह 'सदा-सौभाग्यवती' नामक जड़ी है। वासवदत्ता ने उसे माला में अधिक गूँथने का विचार किया। किसी और पत्ती के विषय में पूछने पर ज्ञात हुआ कि यह 'सपत्नी-नाशक' जड़ी है। वासवदत्ता ने उसे सर्वथा न गूँथने का निश्चय किया। उसने दासी के संतोष के लिए कह दिया—इससे अब क्या लाभ ? राजा की रानी तो मर चुकी है।

इतने में ही एक और दासी आई और कहने लगी—जल्दी करो, जल्दी करो। वर आँगन में सधवा स्त्रियों सहित जा रहा है।

दोनों दासियाँ जयमाल बनवाकर ले गईं। वासवदत्ता अपने दुर्भाग्य को कोसती हुई कहने लगी—हाय ! अनर्थ हो गया। अब मेरे स्वामी भी दूसरी के हो गए।

—* ४ *

वत्सराज उदयन का विवाहोत्सव सकुशल सम्पन्न हो गया। एक दिन पद्मावती और वासवदत्ता प्रमदावन गईं। वहाँ शोफालिका के फूलों की शोभा देखती हुई दोनों एक शिला पर बैठ गईं। एक दासी ने अंजलि भर फूल लाकर दिये। फूल बहुत सुंदर थे। दासी ने और फूल लाने के लिए पूछा। पद्मावती ने मना कर दिया।

वासवदत्ता ने मना करने का कारण पूछा तो पद्मावती ने

रहा—महाराज आकर यहाँ फूलों के ढेर देखेंगे तो मेरा सम्मान करेंगे।

वासवदत्ता—क्या महाराज से बहुत प्रेम करती हो ?

पद्मावती—कह नहीं सकती; परंतु उनके न रहने पर मुझे उदासी घेर लेती है।

वासवदत्ता ने मन-ही-मन सोचा—ओह ! यह भी ऐसा कहती है। मैं ही जानती हूँ जो मुझ पर बीत रही है।

पद्मावती ने फिर कहा—मुझे एक संदेह है। मैं नहीं समझ पाती कि क्या वासवदत्ता महाराज को उतना ही चाहती थीं जितना मैं ?

वासवदत्ता—इससे भी अधिक ॥ वासवदत्ता का प्रेम यदि थोड़ा होता तो वह अपने वंधुओं का त्याग न करती।

इस समय एक दासी ने कहा—राजकुमारी ! अवसर पाकर किसी दिन महाराज से कहना कि मैं भी वीणा बजाना सीखूँगी।

पद्मावती—मैंने एक दिन महाराज से कहा था। वे कुछ बोले ही नहीं। केवल ठंडी साँस लेकर चुप रह गये।

वासवदत्ता—किस कारण ?

पद्मावती—जान पड़ता है, महाराज को रानी वासवदत्ता की सुध आ गई और यदि मैं न होती तो वे रो भी पड़ते।

वासवदत्ता ने इससे अपने आपको भाग्यवती समझा।

इस समय महाराज उदयन वसंतक सहित पद्मावती को ढूँढ़ते हुए वहाँ पहुँच गये। अकस्मात् आकाश में पंक्ति बाँधे सारस पक्षी उड़ते हुए दिखाई दिये। उन सारसों को देखती हुई पद्मावती आदि स्त्रियों ने राजा को देख लिया। सबकी सब चमेली के कुंज में हट गईं।

राजा और वसंतक एक शिला पर बैठकर पद्मावती की प्रतीक्षा

करने लगे। परंतु धूप अधिक बढ़ जाने से वसंतक ने महाराज से चमेली के कुंज में ही चलने को कहा। ज्योंही उन्होंने उस कुंज में, जिसमें पद्मावती आदि पहले से ही बैठी हुई थीं, प्रवेश करने का यत्न किया त्योंही दासी ने पद्मावती के कहने से एक डाली को, जिस पर बहुत से भौरे बैठे थे, हिला दिया। भौरे उड़ने लगे और वसंतक तथा राजा बाहर ही बैठ गये। पद्मावती तथा वासवदत्ता आदि इस प्रकार कुंज में बंद-सी हो गई।

महाराज को देखकर वासवदत्ता की आँखों में आँसू आ गये। एक दासी ने वासवदत्ता की आँखों में आँसू देखकर इसका कारण पूछा। रहस्य को छिपाने के विचार से वासवदत्ता ने कहा—इन भौरों के एकाएक उड़ने से मेरी आँखों में कास के फूलों के पुराण उड़कर पड़ गये हैं।

कुंज के बाहर राजा और वसंतक बैठे बातचीत कर रहे थे।

वसंतक—महाराज ! यह प्रमदावन उजाड़-सा जान पड़ता है।

कृपया बताइए कि आपको पहली रानी वासवदत्ता अधिक प्रिय हैं या नई रानी पद्मावती ?

राजा ने कह भी दिया कि यह पूछकर मुझे संकट में क्यों डालते हो ? परंतु वसंतक स्पष्ट उत्तर चाहता था। उसके अधिक आग्रह करने पर राजा ने कहा—रानी पद्मावती को यद्यपि उनके रूप, शील और गुणों के कारण मैं बहुत चाहता हूँ पर अभी तक रानी वासवदत्ता में लगे हुए मेरे मन को वे अपनी ओर नहीं खींच सकीं।

वासवदत्ता ने भी यह उत्तर सहर्ष सुना। पद्मावती ने तो इस उत्तर को सर्वथा उचित समझा। परंतु दासी ने इस पर कहा—आपके स्वामी अदाक्षिण्य हैं।

पद्मावती—नहीं री, तू ऐसा न कह। महाराज बड़े ही कृतज्ञ हैं, जो वासवदत्ता के गुणों को अभी तक नहीं भूले।

वासवदत्ता के प्रसंग से राजा की आँखों में आँसू उमड़ आए । उन्होंने कहा—मित्र ! तुम समझते नहीं कि मैं किस विपत्ति में हूँ । पुराने प्रेम को सर्वथा भुला देना कठिन है । बार-बार ध्यान करने से दुःख नया होता जाता है । बात यह है कि जब मनुष्य रो लेता है तब उसका मन ठिकाने हो जाता है और उसके चित्त को शांति मिलती है ।

राजा को आँसुओं से भीगा मुख धोने के लिए जल लेने को वसंतक चला गया ।

इस समय महाराज की आँखों पर आँसुओं का परदा पड़ा देखकर वासवदत्ता चुपके से निकल गई । पद्मावती राजा के पास चली आई ।

जब वसंतक कमल-पत्र में पानी लेकर आ रहा था, तब वह मार्ग में पद्मावती को देखकर अति विस्मित हुआ । जल लाने का कारण पूछने पर वसंतक ने पद्मावती से कहा—महारानी ! कास के फूलों का पराग उड़कर महाराज की आँख में पड़ गया था । इसी से उनका मुख आँसुओं से भीग गया है । कृपया यह मुँह धोने का जल आप उनके पास पहुँचा दें ।

जल लेकर पद्मावती महाराज के पास गई । साथ में वसंतक था । पद्मावती ने महाराज से कहा—जल आ गया । मुँह धो लीजिए ।

पद्मावती को साथ देखकर राजा ने वसंतक से एक ओर मुँह करके पूछा—वसंतक ! यह क्या ?

वसंतक ने राजा के कान में कुछ कह दिया जिसे सुनकर राजा ने उसे शावाशी दी । राजा ने मुँह धोकर वसंतक द्वारा कही गई बात को ही आँसुओं का कारण बताया । महाराज ने सोचा कि यदि यथार्थ बात कह दूँ तो इस नव-विवाहिता रानी को

दुःख होगा। सो उन्होंने वसंतक द्वारा कहा कारण ही बताया। इस प्रकार पद्मावती के साथ विवाह हो जाने पर भी उदयन के हृदय में वासवदत्ता के लिए विशेष स्थान बना रहा।

—* * *

एक बार रानी पद्मावती के शिर में पीड़ा हो गई। वासवदत्ता को बुलाने के लिए मधुकरिका भेजी गई। महाराज उदयन को बुलाने के लिए पद्मिनिका ने, मार्ग में वसंतक को देखकर, उसके द्वारा उन्हें सूचना भेज दी कि शिर-पीड़ा से दुःखित पद्मावती समुद्रगृह में आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं।

वसंतक जब महाराज के पास पहुँचा तब महाराज स्वयं ही कह रहे थे—अब तो फिर विवाह का भार सिर पर आ ही गया। किंतु अब तक मेरा मन उस प्रशंसनीय अवंति-राजपुत्री का स्मरण किया करता है। हाय ! उसका कोमल मृदु शरीर लावाणक-दाह में, जाड़े में कोमल कमलिनी के समान, नष्ट हो गया।

उन्होंने जब पद्मावती की शिर-पीड़ा का वृत्तांत वसंतक से सुना तब उन्हें वासवदत्ता के कष्ट का फिर स्मरण हो आया। वह कहने लगे—हा ! सुंदरी, सुघड़, गुणवती स्त्री पाकर मेरा शोक अब कुछ कम हो गया था यद्यपि पुराना घाव अभी पूरा भराना था। एक बार विपत्ति का धक्का खाकर मैं पद्मावती के विषय में भी डरता ही रहता हूँ।

शोक-ग्रस्त उदयन अब वसंतक के साथ समुद्रगृह की ओर चले। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि एक शय्या के अतिरिक्त वहाँ और कुछ न था। शून्य स्थान देखकर वसंतक ने कहा—कदाचित् रानी यहाँ आकर चली गई हों। परंतु राजा कहने लगे—वह अभी आई ही नहीं। देखो, विद्यौने पर कोई सिलवट नहीं है, चादर

ज्यों की-स्त्यों बिछी है, न रजाई की तह खुली है और न तकिया किसी लेप से मलिन हुआ है। रोगी की दृष्टि के विनोद के लिए कहीं कुछ सजावट नहीं है। सचमुच कोई प्राणी रोग के कारण शय्या पर लेटा हुआ शय्या को अपने आप शीघ्र ही नहीं छोड़ता।

अतएव वहाँ बैठकर दोनों पद्मावती की प्रतीक्षा करने लगे।

राजा वहाँ पलंग पर बैठ गये; कुछ ही समय के पश्चात् उन्हें नींद आने लगी। मनोविनोद के लिए उन्होंने वसंतक से कोई कहानी सुनाने को कहा।

वसंतक—उज्जयिनी नाम की एक प्रसिद्ध नगरी है। वहाँ स्नान करने के लिए रमणीय स्थान है।

उज्जयिनी के नाम से राजा को वासवदत्ता का स्मरण हो आया। इस कारण उसने वसंतक को कोई और कहानी सुनाने को कहा। दूसरी कहानी अभी ठीक से आरंभ ही हुई थी कि राजा सो गए। राजा को सोते देखकर वसंतक ने उन्हें रजाई ओढ़ा दी और वह अपना अंगरखा लेने चला गया।

उधर वासवदत्ता पद्मावती की शिर-पीड़ा सुनकर समुद्रगृह में गई। जाकर और देखकर वह बोली—अहो! दासियाँ बड़ी असावधान हैं! ऐसी अवस्था में भी पद्मावती को केवल दीपक के भरोसे छोड़ दिया है। यह अच्छा है कि पद्मावती को नींद आ गई है और वह नियमपूर्वक साँस ले रही है। इसकी पीड़ा अवश्य हट गई होगी, अतएव सोती हुई पद्मावती को जगाना उचित नहीं।

पलंग का एक भाग शून्य देखकर वासवदत्ता ने समझा कि पद्मावती उसे साथ लेटने को आदेश करती है। अतएव वासवदत्ता वहीं लेट गई।

राजा उद्यन उस समय स्वप्न में बड़बड़ाने लगे—हा! वासव-
दत्ता!

वासवदत्ता चौंक उठी और उठकर बैठ गई। सोचने लगी—
अरे ! ये तो महाराज हैं, न कि पद्मावती। कहीं मुझे इन्होंने देख
तो नहीं लिया। अन्यथा यौगंधरायण की प्रतिज्ञा टूट जायगी।

राजा ने फिर बड़बड़ाते हुए कहा—“हा ! अवंति-राजपुत्री !”

वासवदत्ता—अहा, ये नींद में बोल रहे हैं। इस समय पाम
कोई भी नहीं है। कुछ देर यहाँ ठहरकर अपनी आँखें तो तृप्त
कर लूँ। अपने हृदय का बोझ तो हलका कर लूँ।

राजा फिर बोले—हा प्रिये ! हा प्रिय शिष्ये ! बोलती क्यों
नहीं ?

वासवदत्ता थोड़ी देर ठहरकर चल पड़ी। चलते समय वह
राजा के हाथ को, जो पलंग के नीचे लटक रहा था, पलंग के ऊपर
रख गई।

हाथ के स्पर्श से राजा चौंक उठे और वासवदत्ता से ‘ठहरो,
ठहरो’ कहने लगे। दौड़कर पीछा करते समय राजा किवाड़ से
टकरा गए। उन्हें भ्रम हुआ कि यह स्वप्न है। फिर विचार हुआ
कि यह तो यथार्थ घटना है।

वसंतक के लौटने पर राजा ने उससे कहा—वासवदत्ता मरी
नहीं, जीवित है।

उनकी बात बिना पूरी सुने ही वसंतक बोल उठा—हा वासव-
दत्ता ! रानी वासवदत्ता कहाँ ? उनको मरे तो बहुत दिन हो गये।

राजा—नहीं मित्र, ऐसा न कहो। जब मैं शय्या पर सो रहा था
तब मुझे जगाकर वह ओभल हो गई। मंत्री रुमणवान् ने मुझे
निःसंदेह ठगा है। वह जली नहीं।

वसंतक—हा ! यह कब संभव है ? आपने अवश्य उन्हें स्वप्न
में देखा है।

राजा ने खिन्न होकर कहा—यदि यह स्वप्न है तो अच्छा हो

कि मैं इसे सदा देखता रहूँ। यदि यह भ्रम है तो मैं इसी भ्रम में पड़ा रहना चाहता हूँ।

वसंतक—महाराज ! इस नगर में अवंति-सुंदरी नाम की एक यक्षिणी रहती है। आपने उसे देखा होगा।

राजा—नहीं मित्र ! नहीं। आँख खुलने पर मैंने वासवदत्ता की बिना अंजन लगी आँखें और खुले केश देखे हैं। वह चारित्र्य का पालन कर रही है, इसलिए उसका मुख दुर्बल हो गया है। और मित्र ! देखो ! यह भुजा, जिसका इसने स्पर्श अनुभव किया था, अभी तक रोमांचित है, यद्यपि ऐसा स्वप्न में ही हुआ था।

व्यर्थ की बातें सोचने से रोककर वसंतक राजा को राजभवन में ले गया। वहाँ कंचुकी द्वारा विदित हुआ कि महाराज दर्शक ने संदेश भेजा है कि अरुणि पर आक्रमण करने के लिए मंत्री रुमणवान् भारी सेना लेकर आया है और मगध की सेना भी सज्जित है। सो अब आप उठें। अब आपके शत्रुओं में फूट हो गई है। आपके गुणों से अनुरक्त प्रजा को धीरज दिया गया है। सेना की अनुपस्थिति में गृह-रक्षा का प्रबंध कर लिया गया है। शत्रु-नाश के लिए जो कुछ आवश्यक है, सब विद्यमान है। सेनायें गंगापार पहुँच चुकी हैं और वत्सों का देश अब आपके अधीन हो गया है।

यह समाचार सुनकर महाराज उदयन प्रसन्न हुए। वे स्वयं भी दुष्ट अरुणि पर आक्रमण करने के लिए तैयार हो गये।

—* ६ *—

एक बार महाराज महासेन का भेजा हुआ रैभ्य गोत्र का कंचुकी और महारानी अंगारवती की भेजी हुई देवी वासवदत्ता की धाय वसुंधरा दोनों महाराज उदयन के पास आये। पहले पर

प्रतिहारी विजया थी। उसने कह दिया कि यह अवसर मिलने का नहीं है। कारण पूछने पर विजया ने सारा वृत्तांत कह सुनाया कि महाराज के पूर्वीय प्रासाद में कोई वीणा बजा रहा था। उसे सुनकर महाराज ने कहा कि जान पड़ता है, कोई वासवदत्ता की प्रिय, घोषवती नाम की, वीणा बजा रहा है। उसके पास जाकर महाराज ने पूछा कि तुम्हें यह वीणा कहाँ मिली तो उसने कहा कि मैंने इसे नर्मदा-तट पर एक झाड़ी में पाया है। महाराज को आवश्यकता हो तो इसे ले लें। उससे वीणा लेते ही महाराज मूर्च्छित हो गये और सचेत होते ही फिर विलाप करने लगे। कहने लगे कि घोषवती ! तुम्हें तो मैं पा गया हूँ परंतु वासवदत्ता का कुछ पता नहीं। यही कारण बताकर दासी ने कहा कि ऐसे समय महाराज को आपकी सूचना कैसे दूँ।

कंचुकी—मेरी सूचना भी उसी के संबंध में है। जाकर निवेदन करो।

इतने में राजा को वीणा लिये हुए पूर्वीय राजभवन से नीचे उतरते देखकर विजया ने उनसे निवेदन कर दिया। राजा ने पद्मावती से इनके आने के विषय में कहा। इनके आने की सूचना पाकर पद्मावती अति प्रसन्न होकर बोली—मुझे अपने बंधुवर्ग का कुशल-वृत्तांत सुनना अभीष्ट है।

राजा—तू धन्य है जो वासवदत्ता के बंधुवर्ग को अपना बंधुवर्ग मानती है। यह उदारता तेरे कुल और शील के अनुकूल है।

पहले पद्मावती आसन पर न बैठी। कारण पूछने पर कहने लगी कि कहीं रैभ्य कंचुकी और धाय वसुंधरा को आपका दूसरा विवाह अप्रिय लगे। परंतु राजा ने उसे पास बैठा लिया।

पद्मावती और राजा अब गुरुजनों के संदेश के लिए उत्सुक

हो रहे थे। इतने में प्रतिहारी के साथ रैश्य कंचुकी और धाय वसुंधरा दोनों वहाँ आगये।

कंचुकी ने चलते-चलते सोचा कि संबंधी के राज्य में आकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई; पर राजकन्या की स्मृति आने से मुझे बड़ा दुःख होता है। हा देव ! यदि शत्रुओं ने राज्य न छीन लिया होता तो राजकुमारी अवश्य कुशल से रहतीं।

कंचुकी और धाय ने महाराज के सामने खड़े होकर उनका सत्कार किया। कुशल-लेम सुनने-सुनाने के पश्चात् कंचुकी ने कहा—महाराज ने कहा है कि शत्रुओं के हाथ से आपने अपना राज्य छीन लिया इस पर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई है। जो कायर और दुर्बल हैं वे सदा हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं। उद्यमी पुरुष ही राज-भोग करते हैं।

राजा—यह महाराज महासेन की कृपा का फल है। एक बार पराजित करके मुझे अपने पुत्रों की भाँति रक्खा, पर मैं उनकी कन्या को केवल भगा ही नहीं लाया बल्कि उसकी रक्षा भी न कर सका। अपनी कन्या की मृत्यु सुनकर भी उन्होंने मुझसे नाता नहीं तोड़ा। क्या यह महाराज की कृपा का फल नहीं है कि मुझे वत्सदेश फिर शत्रुओं से वापस मिल गया है ?

कंचुकी—महाराज ! मैंने आपको महाराज महासेन का संदेश सुना दिया, महारानी का संदेश धाय वसुंधरा कहेंगी।

धाय—महारानी ने कहा है कि वासवदत्ता तो अब है नहीं, पर फिर भी तुम मेरे लिए वैसे ही हो जैसे हमारे गोपालक और पालक। हम लोगों ने पहले से ही तुम्हें अपना आमाता बनाने का निश्चय कर लिया था। इसी प्रयोजन से हम लोग तुम्हें उज्जयिनी ले आये थे और वीणा सिखाये थे। यह तुम वासवदत्ता को, बिना अग्नि को साक्षी किये ही

दिया था। अपनी चंचलता के कारण, बिना विवाह किये ही, जब तुम उसे ले भागे तब हम लोगों ने दोनों का चित्र बनवाकर विवाह-कार्य पूरा किया। वही चित्र तुम्हारे पास भेजा है। इसे देखकर अब शांति पाओ।

राजा—ये प्रेमभरी कृपापूर्ण बातें माताजी के योग्य ही हैं। यह संदेश मुझे सैकड़ों राज्यों से भी प्रिय है। अपराधी होने पर भी मेरे ऊपर उनका स्नेह तो ज्यों का त्यों है।

पद्मावती—महाराज ! मैं चित्र में लिखे गुरुजनों के दर्शन करना चाहती हूँ।

धाय ने चित्र पद्मावती को दे दिया। पद्मावती ने चित्र देखकर साश्चर्य मन-ही-मन सोचा कि अरे ! यह तो ठीक आवंतिका जैसा रूप है और महाराज से पूछा—क्या यह बहन वासवदत्ता का ठीक चित्र है ?

राजा—चित्र नहीं, मुझे तो साक्षात् वही जान पड़ती है। हा ! ऐसे सुंदर रूप पर ऐसी दारुण विपत्ति ! हा ! कैसे यह सुंदर मुख उस आग में भस्म हुआ होगा !

पद्मावती—महाराज का चित्र देखने से मैं बता सकती हूँ कि देवी वासवदत्ता का चित्र ठीक बना है या नहीं।

धाय—देख लीजिए।

पद्मावती ने महाराज का चित्र देखकर कहा—महाराज का चित्र तो सर्वथा ठीक बना है, अतः दूसरा भी अवश्य ठीक बना होगा।

राजा—देवी ! मैं देखता हूँ कि चित्र देखकर एक बार तुम प्रसन्न और फिर कुछ व्यथित-सी दिखाई पड़ीं। इसका क्या कारण है ?

पद्मावती—महाराज ! इसी चित्र जैसी एक स्त्री इसी भवन

पद्मावती

वासवदत्ता जैसी ?

पद्मावती—हाँ, महाराज ।

राजा—तो उसे शीघ्र बुलवाओ ।

पद्मावती—महाराज ! मेरे विवाह के पहले एक ब्राह्मण मेरे पास उसे यह कहकर छोड़ गया था कि “यह मेरी बहन है । इसका प्रति परदेश में है । अतः यह पर-पुरुष के सामने नहीं आती ।”

राजा—यदि ब्राह्मण की बहन है तो कोई दूसरी होगी । संसार में परस्पर रूप की समानता पाई जाती है ।

इस प्रकार बातचीत हो रही थी कि प्रतिहारी ने महाराज को सूचना दी कि उज्जयिनी का रहनेवाला एक ब्राह्मण द्वार पर खड़ा है । वह कहता है कि मैं अपनी बहन को महारानी के पास छोड़ गया था । अब उसे वापस लेने आया हूँ ।

राजा ने उसे शीघ्र प्रवेश कराने के लिए आज्ञा दी । उधर पद्मावती वासवदत्ता को लाने गई । राजभवन में प्रवेश करते हुए उस ब्राह्मण यौगंधरायण को इत विचारों ने घेर लिया—ओह ! महाराज के हित के लिए ही मैंने महारानी को छिपाया था । मेरे प्रयत्न सिद्ध होने पर भी मुझे यह शंका होती है कि महाराज न जाने क्या कहें ।

महाराज के सामने पहुँचकर, सत्कार करने के लिए ‘जय हो’ कहकर, ब्राह्मण ने अपनी बहन वापस माँगी । इस समय पद्मावती भी वासवदत्ता सहित आ गई । महाराज ने धरोहर सौंपने के लिए यह सोचकर कि ‘धरोहर तो सबके सामने सौंपनी चाहिए’ रैभ्य और धाय वसुंधरा के सामने ही इसकी बहन के लौटाये जाने की आज्ञा दी ।

पद्मावती ने ब्राह्मण यौगंधरायण से कहा—आर्य ! अपनी बहन को सँभालो ।

धाय ने ध्यान से वासवदत्ता को देखकर कहा—अरे ! यह तो कुमारी वासवदत्ता है !

महाराज ने साश्चर्य पूछा—महासेन की पुत्री ? फिर वासवदत्ता से कहा—देवी ! पद्मावती के साथ राजभवन में जाओ ।

यौगंधरायण—नहीं, यह तो मेरी बहन है । महाराज ! आप भरत-वंश में उत्पन्न हुए हैं । आप बुद्धिमान, ज्ञानी और सदाचारी हैं । मुझसे मेरी बहन छीन लेना आपको उचित नहीं । आपको तो राजधर्म का आदर्श होना चाहिए ।

महाराज ने स्वयं जाँच करनी चाही । परदा खींचने के लिए कहा गया ।

इस समय यौगंधरायण ने अपने आपको प्रकट कर दिया । राजा अति विस्मित होकर बोले—अरे ! ये आर्य यौगंधरायण हैं । ये हैं देवी वासवदत्ता ? यह सत्य है या स्वप्न, जो मैं फिर से देवी को देख रहा हूँ ? उस बार भी मैंने इसी भाँति इन्हें देखा था और धोखा खाया था ।

यौगंधरायण ने स्वामी से, देवी को छिपाने के अपराध की, क्षमा माँगी । वह राजा के पैरों पर गिर पड़ा ।

राजा ने उसे उठा लिया और कहा—क्या आप सचमुच मंत्री यौगंधरायण हैं ? हम जब-जब विपत्ति के समुद्र में पड़े हैं तब-तब आपने मिथ्या-उन्माद से, युद्ध-द्वारा और शास्त्रोक्त अन्य उपायों का आश्रय लेकर हमारा उद्धार किया है ।

यौगंधरायण ने मुँह नीचा करके कहा—हम तो महाराज के भाग्य के अनुयायी हैं ।

पद्मावती ने भी वासवदत्ता से क्षमा माँगी और कहा—देवी ! अनजान में मैंने आपसे सखी का-सा व्यवहार करने का अपराध किया है, अतः आपके चरण छूकर क्षमा माँगती हूँ ।

वासवदत्ता ने पद्मावती को उठा लिया और कहा—सौभाग्य-वती ! इसमें मेरा ही अपराध है ।

राजा ने यौगंधरायण से पूछा—वासवदत्ता के छिपाने का क्या कारण था ?

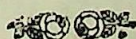
यौगंधरायण—इसका कारण केवल कौशांबी की रक्षा थी ।

राजा—पद्मावती के हाथ में उसे क्यों सौंपा था ?

यौगंधरायण—वात यह थी कि पुष्पक, भद्र आदि ज्योतिषियों ने कह रक्खा था कि राजकुमारी पद्मावती आपकी दूसरी रानी होंगी ।

राजा को अब ज्ञात हुआ कि यह सब वृत्तांत मंत्री रुमणवान् भी जानता था । परंतु यह कौशल सवने अपने स्वामी के कल्याण के लिए ही रचा था ।

महाराज उदयन ने अब रैभ्य, कंचुकी और वसुंधरा धाय के साथ—पद्मावती और वासवदत्ता सहित—उज्जयिनी में अपने ससुर महाराज प्रद्योत (महासेन) के पास जाने का निश्चय किया ।



227 322 71 2001
421 42 1001 2001
2001

2001

महावीर-चरित

—* १ *—

कुशिक-वंश में गांधि के पुत्र विश्वामित्र बड़े प्रसिद्ध ब्रह्मर्षि थे। उन्होंने राज-पाट त्यागकर ब्रह्मतेज प्राप्त किया था। लोग उन्हें चौथी पवित्र अग्नि, पाँचवाँ वेद, चलता-फिरता तीर्थ या शरीरधारी धर्म मानते थे। त्रिशंकु को आकाश में रोक देना, शूनःशेष के प्राण बचा लेना, रंभा को निश्चल कर देना इत्यादि आश्चर्यजनक घटनाएँ उनके उग्र तेज के प्रमाण हैं।

विश्वामित्र की कुटी, कौशिकी नदी के तट पर, सिद्धाश्रम नाम से प्रसिद्ध थी। उन दिनों ऋषियों के यज्ञों में राजस बड़े विघ्न डाला करते थे। एक समय विश्वामित्र ने यज्ञ करने का विचार किया। यज्ञ की रक्षा के लिए वे महाराज दशरथ से राम और लक्ष्मण को माँग लाए।

यज्ञोत्सव पर उन्होंने महाराज जनक को निमंत्रण दिया। उस समय वे स्वयं यज्ञ कर रहे थे। इससे उन्होंने अपने भाई कुशध्वज को, सीता और उर्मिला के साथ, भेज दिया।

राम-लक्ष्मण को साथ लेकर विश्वामित्र, उनके स्वागत के लिए, चले। राम-लक्ष्मण ने पूछा—ये महात्मा कौन हैं जिनके स्वागत के लिये आप भी इस प्रकार आगे बढ़ रहे हैं?

विश्वामित्र—तुमने सुना होगा कि निमिवंश के राजा विदेह देश में राज्य करते हैं।

राम-लक्ष्मण—जिनके यहाँ महादेव जी का धनुष पूजा जाता है?

विश्वामित्र—हाँ ।

राम-लक्ष्मण—वहाँ एक और आश्चर्य सुना जाता है; बिना ही माता के उत्पन्न हुई कन्या उनके यहाँ है ।

विश्वामित्र ने मुस्कराकर कहा—हाँ, वह भी है । उसी यजमान ने अपने छोटे भाई कुशध्वज को, सीता और उर्मिला के साथ, सप्रेम यहाँ भेजा है । वे स्वयं इस समय यज्ञ कर रहे हैं ।

विश्वामित्र के साथ इन दोनों कुमारों को देखकर राजा कुशध्वज बड़े विस्मित हुए । वे सोचने लगे कि स्वाभाविक सुलक्षणों से युक्त शरीर धारण किए ये क्षत्रियकुमार कौन हैं !

सीता और उर्मिला के हृदय भी इधर आकर्षित हो गए । वे कहने लगीं कि ये कुमार तो बड़े सुंदर हैं ।

इतने में विश्वामित्र और कुशध्वज आदि सब पास पहुँच गए । विश्वामित्र ने उनका यथोचित स्वागत किया और राम-लक्ष्मण का परिचय कराया । दोनों राजकुमारों ने आगे बढ़कर प्रणाम किया । राजा कुशध्वज ने उन्हें गले लगा लिया । उन्हें दशरथ का पुत्र जानकर राजा को और भी आनंद हुआ । बातचीत करते हुए वे आश्रम के निकट पहुँच गए और वहीं वृद्धों की छाया में बैठकर विश्राम करने लगे ।

वहाँ एक ओर से 'जय ! जगत्पति राम की जय' का शब्द सुन पड़ा । सब चकित हो गये । विश्वामित्र ने कहा—उत्थय के पुत्र गौतम की धर्मपत्नी अहल्या है । उसका पुत्र शतानंद है । इंद्र अहल्या पर आसक्त हो गया था । गौतम को स्त्री पर संदेह होगया । उन्होंने क्रुद्ध होकर स्त्री को शाप दे दिया कि पत्थर हो जा । उसी अहल्या का आज, उक्त शाप से राम के तेज द्वारा, उद्धार हुआ है ।

राजा कुशध्वज ने कहा कि यह सूर्यवंशी बालक ऐसा असाधारण प्रभावशाली कैसे हुआ !

सीता ने मन-ही-मन कहा कि शरीर की रचना के अनुकूल ही इनका प्रभाव होगा ।

राजा कुशध्वज ने लंबी साँस लेकर कहा—यदि बड़े भाई शिव के धनुर्भंग की प्रतिज्ञा को बीच में न डालें तो तेजस्वी राम को मैंने सीता दे दी ।

इतने में रावण का पुरोहित, सर्वमाय नाम का वृद्ध राक्षस, वहाँ आया । उसने निवेदन किया—नाना माल्यवान् के रोकने पर भी रावण ने, सीता को अपने साथ विवाहने का प्रस्ताव करने के लिए, मुझे मिथिला भेजा था । वहाँ मैं यजमान राजा जनक से मिला । उनके कहने से अब आपके पास आया हूँ ।

राम-लक्ष्मण और सीता तथा उर्मिला एक दूसरे को देखकर आकर्षित हो रहे थे । राक्षस का यह संदेश सुनकर उसके प्रति उन्हें घृणा हुई । राजा और विश्वामित्र भी इस विषय में सोचने लगे ।

लक्ष्मण ने भाई से कहा—रावण इससे विवाह करना चाहता है ।

राम—वत्स ! अन्य पुरुष भी साधारणतया निर्भय होकर कन्या के लिए प्रार्थना करते हैं । फिर जगत् के विजेता रावण का क्या कहना ?

लक्ष्मण—यह आपका सौजन्य है, तभी तो स्वभाव से वैरी राक्षस का आप इतना मान करते हैं । इसी राक्षस ने तीनों वेदों का नाश करके हमारे क्षात्र तेज को क्षीण कर दिया है । सुना है कि इसी ने, दिग्विजय के समय, इक्ष्वाकु-वंशी राजा अनरण्य को मारा था ।

राम—शत्रु होने के कारण वह वध्य है सही; परंतु उस महावीर, महातपस्वी, असाधारण पुरुष को साधारण पुरुष समझना तुम्हें उचित नहीं ।

इस प्रकार सब लोग अपने सोच-विचार में थे कि राजस ने कहा—आप सोचते क्या हैं ? आपकी कन्या जगद्विजयी रावण के पास सुख से रहेगी ।

इतने में एक ओर से कोलाहल हुआ । विदित हुआ कि यज्ञ में जो ऋषिगण पधारे हैं वे भयभीत होकर चिल्ला रहे हैं । सब लोग उठकर वहाँ जाने लगे तो लक्ष्मण ने देखकर पूछा—भीषण शरीर-वाली, दर्प से उद्धत होकर, वह कौन दौड़ रही है ?

विश्वामित्र—यह सुकेतु राजस की कन्या, सुन्द नाम के असुर की स्त्री और मारीच की माता ताड़का है ।

विश्वामित्र ने राम को उसे मारने का आदेश दिया । राम ने उत्तर दिया—गुरु जी ! वह तो स्त्री है ।

यह उत्तर सुनकर कुशध्वज ने कहा—साधु ! राम सचमुच इत्वाकुवंशी हैं ।

अब राजस ने जान लिया कि यह दशरथ का पुत्र है जो ताड़-सी ऊँची ताड़का का उछलना देखकर अविचलित खड़ा है और जो उसके मारने के लिए नियुक्त किया गया है, पर उसके स्त्री होने के कारण दुविधा में है ।

ताड़का का शीघ्र वध करने के लिए विश्वामित्र ने राम से कहा । वह कई ब्राह्मणों को मार चुकी थी । राम ने मन के विरुद्ध भी गुरु की आज्ञा का पालन किया । उन्होंने एक ही बाण से छाती विदीर्ण कर ताड़का को मार गिराया । उनकी वीरता देख सभी विस्मित हुए । उसकी मनुष्य द्वारा मृत्यु पर वृद्ध राजस दुःखित हुआ ।

सर्वमाय नामक राजस ने अब विश्वामित्र से अपने प्रश्न का उत्तर माँगा ।

विश्वामित्र ने कहा—कुशध्वज तो जनक के छोटे भाई हैं । जनक ही कुल-ज्येष्ठ हैं और वे ही इस कन्या के पिता हैं ।

राक्षस—जनक ने कहा है कि विवाह की बात कुशध्वज और आप जानें ।

कल्याणकारी दिव्यास्त्र देने का यही अवसर है, मुहूर्त भी अच्छा है; यह सोचकर विश्वामित्र कहने लगे—मित्र कुशध्वज ! कुशाश्व गुरु की सेवा से प्राप्त रहस्यमय जृम्भकास्त्रों का प्रयोग और उप-संहार तथा दिव्यास्त्रों की मंत्रविद्या की शक्ति राम को प्रत्यक्ष कराता हूँ ।

राजा ने इसका अनुमोदन किया । आकाश से भी पुष्पवृष्टि हुई और बाजे बजे । यह देखकर राक्षस कुढ़ने लगा ।

इसी समय सहसा दिव्यास्त्रों से दिशाएँ तुम कांचन के समान हो गई; रक्त वर्ण के कारण दिन संध्या से मिला हुआ-सा दीखने लगा; जलते हुए धूमकेतुओं और दिव्यास्त्रों से आकाश घिर गया और निरंतर विजली के चमकने से विचित्र-वर्ण का-सा हो गया ।

विश्वामित्र की आज्ञा से राम ने इन दिव्यास्त्रों को नमस्कार कर कहा—भगवन् ! मेरा निवेदन है कि यह दिव्यास्त्रों का समूह लक्ष्मण सहित मेरे अधीन हो ।

विश्वामित्र ने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली । दिव्यास्त्रों ने भी स्वीकृति-सूचक नाद किया ।

अब राम ने दिव्यास्त्रों को स्मरण कर प्रकट होने की प्रार्थना की और फिर विसर्जन कर दिया ।

इस अद्भुत घटना को देखकर राजा कुशध्वज मौन न रह सके । उन्होंने विश्वामित्र से कहा—आपसे अनुगृहीत और राम-भद्र से शोभित राजा दशरथ से मैं ईर्ष्या करता हूँ । यदि हमें जामाता-रूप में राम न मिले तो आपकी कृपा हमारे किस काम आवेगी ?

विश्वामित्र—क्या अब भी आपको संदेह है ? अच्छा, ध्यान कीजिए, जिसमें शिव का धनुष प्रकट हो जाय ।

राक्षस सर्वमाय ने इनका यह विचार देखकर कहा—महाराज कुशध्वज ! आप कब से विचार कर रहे हैं ?

कुशध्वज—हमने तो कह दिया कि भाई जानें ।

अब कुशध्वज के स्मरण करने पर सहस्रों वज्रों के समान शिव का धनुष प्रकट हो गया । राम ने भुजाओं से अनायास ही खींचकर उसे तोड़ डाला । उसके टूटने की ध्वनि देर तक आकाश में गूँजती रही ।

राम के प्रभाव से राक्षस भयभीत हो गया । कुशध्वज ने राम को चूमकर हृदय से लगा लिया । फिर विश्वामित्र से कहा—भगवन् ! राम ऐसा पति मिल जाने से सीता के लिए आपका आशीर्वाद पूरा हुआ । इसी अवसर पर मैं लक्ष्मण को उर्मिला देता हूँ ।

विश्वामित्र—यह बहुत ठीक हुआ । परंतु अभी आपको और भी कुछ करना है ।

कुशध्वज—आज्ञा कीजिए ।

विश्वामित्र—आपकी दो कन्याएँ श्रुतकीर्ति और मांडवी हैं । उन्हें हम भरत और शत्रुघ्न के लिए माँगते हैं ।

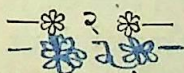
राजा ने यह भी स्वीकार कर लिया । शतानंद और सीरध्वज विश्वामित्र के प्रतिकूल कुछ कह नहीं सकते थे ।

विश्वामित्र ने अब शुनःशेष को बुलाकर आज्ञा दी—वत्स ! अयोध्या जाकर भगवान् वसिष्ठ से कहो कि दशरथ के चार पुत्र और निमिकुल की चार कन्याएँ हैं । हमने दोनों वंशों के प्रतिनिधि बनकर लड़के देकर लड़कियाँ ले लीं । अतः सब ऋषियों को निमंत्रण देकर दशरथ के साथ जनकपुरी पधारिए । यज्ञ की समाप्ति पर कुमारों का विवाह होगा ।

यह सब देखकर राक्षस बहुत कुढ़ा। उसने एक बार फिर रावण की प्रशंसा की परंतु सब व्यर्थ रहा।

इतने में ही राक्षस सुबा और मारीच आकर यज्ञ में विघ्न डालने लगे। विश्वामित्र की आज्ञा से राम-लक्ष्मण ने धनुष उठा लिया। सुबाहु और मारीच को देखकर राक्षस प्रसन्न होकर बोला—यह ठीक हुआ। अब भाग्य बदलेगा। उसे देखकर शेष कार्य के लिए माल्यवान् को सूचना दूँगा।

उधर विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण, धनुष लिये, उन राक्षसों के पीछे चले गये।



सर्वमाय से सिद्धाश्रम का वृत्तांत सुनकर रावण का नाना माल्यवान् चिंतित हुआ। ताड़का के पुत्र मारीच को तृणवत् फेंक देने से और ताड़का तथा सुबाहु के वध से माल्यवान् का हृदय काँप उठा। क्षण भर में मारीच के अनेक अनुचरों का नाश हो जाने से उसे आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा कि ब्रह्मा ने देवताओं के वीर्योत्कर्ष से जो धनुष बनाया था उस शिव-धनुष के राम ने दो टुकड़े कर दिए। उसी राम ने फिर कृशाश्व के शिष्य महर्षि विश्वामित्र से, अपरिमित विजय के सहायक, दिव्य अस्त्र प्राप्त कर लिये हैं। उसने देवताओं को हमारी ओर से निर्भय-सा कर दिया है। देवताओं ने ही तो दिव्यास्त्रग्रहण और धनुर्भंग के समय मंगल-गान किया था। ठीक है, प्रताप के क्षीण होने पर सबमें विकार आने लगता है।

माल्यवान् इस प्रकार चिंता कर रहा था कि शूर्पणखा आ गई। उसने कहा—नानाजी, सीता का विवाह राम के साथ हो गया। महर्षि अगस्त्य ने प्रेमोपहार में राम को माहेंद्र धनुष भेजा है।

माल्यवान् को इस कारण और भी चिंता हुई कि सभी श्रेष्ठ अस्त्र-शस्त्र ब्रह्मर्षि लोग राम को दे रहे हैं। वह कहने लगा— क्षत्रियों का अस्त्र और ब्राह्मणों का अनुग्रह अमोघ होता है। ब्रह्मतेजयुक्त क्षत्रियतेज दुष्प्राप्य है।

शूर्पणखा—निरे मनुष्य से इतनी चिंता किस लिए ?

माल्यवान्—पुत्री ! ऐसा मत कहो। जन्म-काल से ही राम का रूप जगत् में अद्भुत है। मनुष्य होने से क्या, जब कि देवता उसका चरित्र-गान करते हैं। वर-प्रदान के समय ब्रह्मा ने हमें मनुष्य से भय बताया है।

शूर्पणखा—इसमें क्या संदेह जब कि रावण की भी आँखें कुछ मलिन हो गई हैं और वह नेत्रों की चंचलता त्यागकर सिर नीचा किये हुए है। इससे मैं जानती हूँ कि उसके हृदय की तीव्र वेदना सहज में न हटेगी।

माल्यवान् इस प्रकार चिंता कर रहा था कि परशुराम का भेजा हुआ अनुचर पत्र लेकर आ गया। पत्र में मुनि ने लिखा था—“तुमको विदित हो कि मैंने दंडकारण्य के तपस्वियों को अभय-दान दिया है। वहाँ विराध, कबंध आदि नियम-विरुद्ध विचरते हैं। सो उन्हें रोककर मेरी और शिव की प्रीति प्राप्त करो। ब्राह्मणों का अपराध न करने से तुम्हारा ही भला होगा और मैं तुम्हारा मित्र रहूँगा, अन्यथा क्रोध करूँगा।”

पत्र सुनकर शूर्पणखा ने कहा—ये वाक्य कोमल तो थोड़े किंतु गंभीर अधिक हैं।

माल्यवान्—हाँ, जामदग्न्य है न। कुल, तप, विद्या और पराक्रम से शांति बढ़ी हुई है। सर्वत्याग से निःस्पृह है। अपनी इच्छा होने पर भी किसी प्रकार, शिव की प्रीति से, हमें उचित कार्य के लिए उपदेश करता है और अनुचित कार्य में कड़ा पड़ता है। (कुछ

सोचकर कहने लगा) शंभु के धनुष को तोड़नेवाला राम यदि शिव के शिष्य को मिल जाय तो वह कभी क्षमा न करे । युद्ध में राम और परशुराम दोनों का वध हो जाय अथवा दोनों में से एक की विजय भी हो तो भी हमारा भला हो । अतः परशुराम को ही उत्तेजित करना चाहिए; क्योंकि हमें यथार्थ में उसकी पराजय का विश्वास नहीं होता । चलो, मिथिला भेजने के लिए परशुराम को उत्तेजित करें ।

अब माल्यवान् और शूर्पणखा ने महेंद्र द्वीप में जाकर परशुराम को उत्तेजित किया । परशुराम जनकपुरी पहुँचे । दास-दासियों ने राम को सूचना दी कि अपने गुरु शिव के धनुर्भंग से क्रोधित परशुराम आपको खोज रहे हैं ।

यह सूचना पाकर राम प्रसन्न हुए । कहने लगे कि त्रिपुरारि के शिष्य, वेदाभ्यास से शुद्ध चरित, भृगुवंश के स्वामी, महाभाग्य-शाली, परशुराम के दर्शन करने चाहिएँ । वे भी मुझे देखने को इच्छुक हैं । परंतु नव-विवाहिता सीता ने, भय के कारण, उच्च कुल के योग्य लज्जा को त्यागकर, राम को रोकना चाहा । सखियों ने भी मना किया । परंतु राम कहने लगे—काम में विलंब करने से विरसता होती है ।

सीता को सखियाँ बोलीं—सुना है कि परशुराम ने बारंबार पृथिवी को क्षत्रियों से विहीन करके अपना मनोरथ पूर्ण किया है ।

इन बातों से राम कब डरनेवाले थे ? उन्होंने कहा—क्या एक दोष से उस महान् ज्ञान-निधि का माहात्म्य न्यून हो सकता है जिसने पृथ्वी पर क्षत्रिय-वंश के राजाओं का इक्कीस बार सर्वनाश किया ; बाहुबल-द्वारा कार्तिकेय अर्जुन को जीत कर ख्याति और प्रशंसा प्राप्त की ; अश्वमेध में गुरु कश्यप को द्वीपों सहित पृथिवी दान कर दी और जो अब ऐसे स्थान पर तपस्या करता है जो समुद्र को परशु से हटाकर प्राप्त किया गया है ?

सीता और उनकी सखियों को राम धीरज दे रहे थे कि परशुराम 'दशरथ का पुत्र राम कहाँ है?' कहते हुए अंतःपुर में आते दिखाई पड़े।

राम ने उन्हें देखकर कहा—अहा ! ये त्रिभुवन के अद्वितीय वीर भार्गव मुनि दुष्प्राप्य तेजराशि के समान हैं; ये प्रताप और तपस्या से प्रकाशमान शरीर धारण किये हुये हैं। प्रचंड वीररस की तो ये मूर्ति ही हैं।

इतने में परशुराम पास ही पहुँच गये। उनके कंधे पर चमकीला परशु तथा तरकस था। वे जटा, धनुष, कौपीन और मृगछाला धारण किये हुए थे। उनके रुद्राक्ष से लिपटे हाथ में बाण चमक रहा था। उनका यह वेष भय और शांति से मिश्रित शोभा का विस्तार कर रहा था।

राम ने सीता को वहाँ से हटने और घूँघट काढ़ने को कहा। मुनि को पास आते देखकर सीता डर गई। राम बोले—ये मुनि और वीर हैं, इस कारण मेरे प्रिय हैं। डरो मत। भीरु ! तुम क्षत्रिय-पुत्री हो। जगत् में विस्तृत कीर्तिवाले और गर्व से खुजाती हुई भुजाओंवाले का सामना करने के लिए मैं समर्थ हूँ। मैं राघव हूँ, क्षत्रिय हूँ।

उधर परशुराम ने निकट आते ही क्रोधित होकर कहा—ओह ! इस दुष्ट क्षत्रिय-बालक की मूढ़ता तो देखो ! धनुष को तोड़ते हुए यदि इसे प्राणियों के करुणासागर शांतात्मा भगवान् शिव से भय नहीं हुआ तो इसने मदमत्त तारकासुर के वध से विश्व को आनंदित करनेवाले उनके पुत्र स्कंद को, अथवा स्कंद के समान प्रिय शिष्य मुझको, क्यों नहीं जाना ? ओह ! यह मेरी ही शांति का कटु परिणाम है कि क्षत्रियों को फिर राज्य मिला है। उन्होंने अब फिर धनुष ग्रहण कर लिए। भुजबल से उन्मत्त क्षत्रियों के उद्धत चरित मैंने फिर सुने हैं।

इतना कहकर परशुराम सेवकों से राम को पूछने लगे। राम सम्मुख खड़े हो गये और बोले—भगवन् ! मैं राम हूँ। यहाँ आइये।

परशुराम—धन्य ! राजपुत्र धन्य ! तू सचमुच इन्द्राकुवंशी है। मारने के लिए मैं तुझे ढूँढ़ रहा था। तू सच्चा क्षत्रिय है, जो सगर्व स्वयं मेरे सामने आ गया।

राम की सुंदरता देखकर परशुराम का हृदय कोमल होने लगा। किंतु उन्होंने यही निश्चय किया कि यह वध्य है। फिर राम से बोले—अच्छा, क्षण भर ठहर। अभी इस परशु से तेरा अंत करता हूँ।

राम ने धैर्य से कहा—क्या यह वही परशु है जिसे भगवान् शिव ने, गणों समेत कार्तिकेय को जीतने पर, आपको उपहार में दिया था ?

परशुराम मन में सोचने लगे—अहो ! यहाँ तो बात ही और है। महिमा और सौजन्य निष्कारण ही है। उत्साह, क्रोध, गंभीरता और पौरुष साथ ही साथ हैं। फिर प्रकट कहा—हाँ, राम ! यही बात है। यही गुरुजी का प्रिय परशु (कुल्हाड़ा) है।

सीता की सखियों ने आपस में कहा—कुछ तो शांत हुए।

राम—भगवन् ! इसी से आपके पराक्रम की चर्चा आकाश-पाताल में व्याप्त है और आपको परशुराम की पदवी मिली है।

यह सुनकर सीता की सखियों ने आपस में कहा—राजकुमार तो गुरुजनों से मनोहर मंत्रणा करने में चतुर हैं।

परशुराम पर भी प्रभाव पड़े बिना न रहा। उन्होंने कहा—हे राम ! सद्भाव के अनुकूल नयनों की प्रियता को धारण करता हुआ तू अचिंत्य गुणों से रमणीय है। तू सब प्रकार मेरे मन को हर रहा है। सच कहता हूँ, तेरा आलिंगन करने की इच्छा होती है।

यह सुनकर सीता की सखियाँ प्रसन्न होकर सीता से बोलीं—

राजकुमारी ! राम के भाग्य को देखो । तुम सदा लज्जा के कारण पराङ्मुख होकर अपने को ठगती हो ।

सीता आँसू भरकर, लंबी साँस लेकर, चुप रहीं ।

राम—भगवन् ! आलिंगन तो मेरे दमन-कार्य के विपरीत होगा ।

सीता—धीरता और स्निग्धता सहित इनकी विनय उदारता से शोभायमान हो रही है ।

अब तो परशुराम पर गहरा प्रभाव पड़ा । वे सोचने लगे कि दूसरों के गुणोत्कर्ष के जानने पर भी सौजन्य से इस राजकुमार का अंतःकरण पवित्र हो रहा है । मंद बुद्धिवालों से इसका महागर्व विनय के कारण दुर्ज्जय है, निपुण बुद्धिवालों द्वारा ग्राह्य है । पता नहीं चलता, यह अलौकिक चरित्रवाला वीर बालक कौन है । यह असीम महत्ता से उत्कृष्ट है । इसका शरीर लोकों को अभयदान की पुण्य-राशि के योग्य है । इसका शरीर लक्ष्मी, तेज, धर्म, मान, विजय और पराक्रम आदि सात्त्विक गुणों से उज्ज्वल हो रहा है । अथवा लोकों की रक्षा के लिए धनुर्वेद ने शरीर धारण किया है; वेद की रक्षा के लिए क्षत्रिय-धर्म युक्त शरीर प्राप्त किया है । शक्तियों का समुदाय अथवा गुणों का समूह प्रकट होकर उपस्थित है । इस प्रकार अधिक समय तक सोचकर परशुराम ने कहा—राजकुमारी को भीतर ले जाओ ।

इतने में धनुष लिए सीरध्वज जनक और शतानंद वहाँ आते दिखाई पड़े । उन्हें देखकर सीता की सखियों को धीरज बँधा । संग्राम-लक्ष्मी से, राम की विजय के लिए, हाथ जोड़कर प्रार्थना करके सखियों के साथ सीता भीतर चली गई ।

परशुराम—है तो यह सदाचारी परंतु तब भी क्षत्रिय है । इस कारण क्रोध आता है ।

राम—आप इतनी करुणा क्यों दिखाते हैं ?

परशुराम—कुछ नहीं। तुमसे भेंट होने से चित्त में सुख अधिक उमड़ हो रहा है। तुम्हें देखने से नेत्रों को आनंद होता है। नया कंकण पहने हुए तुम मुझे प्रिय लग रहे हो। पर मेरे गुरु की अवज्ञा करने से तुम वंध्य हो। सो मुझे पहले से ही दुःख हो रहा है।

राम—मुझ पर आपकी बड़ी दया जान पड़ती है।

परशुराम—क्या तू बच गया ? ठहर, तुझ अमृत-भरे मेघ के समान स्निग्ध शरीरवाले के गले पर मेरा कुल्हाड़ा गिरता है।

राम ने फिर कहा—सचमुच आपको मुझ पर दया आ रही है।

परशुराम—ओह ! मुझी पर भौंहें चढ़ा रहा है ! अरे क्षत्रिय युवक ! तू बच्चा है। नई नन्हों बहू है। इस कारण मुझे अपूर्व दुःख होता है। वैसे यह तो तूने सुना होगा कि मैंने अपनी माता का शिर काट डाला था। और क्षत्रियकुलों पर क्रोध के कारण, रे मूढ़ ! मैंने उत्पन्न होनेवाले बालकों को भी टुकड़े-टुकड़े कर दिया था; सब राजवंशों का इक्कीस बार नाश किया था। उनके रक्त से सरोवर भर गए थे। उनमें स्नान और पितृ-तर्पण के महासुख से मैंने क्रोधाग्नि को शांत किया था। भला मेरे स्वभाव को कौन नहीं जानता ?

राम—नृशंसता तो पुरुष का दोष है; उसकी श्लाघा कैसी ?

परशुराम रुष्ट होकर बोले—अरे क्षत्रिय-बालक ! तू बड़ा धृष्ट है। धनुष खींच और बाण छोड़। मैं चाहता हूँ कि पहले तू प्रहार कर। चमकीले परशु से मेरे प्रहार करने पर तो तुरंत ही तेरा शरीर रुंड-मात्र शेष रह जायगा।

इसी समय जनक और शतानंद पास आ पहुँचे। वे परशुराम से बातचीत करने लगे। उन्होंने राम को कंकण खोलने के लिए अंतःपुर में जाने को कहा। परशुराम से आज्ञा लेकर रामचंद्र अंतःपुर में गये।

जनक और शतानन्द परशुराम को वशिष्ठ और विश्वामित्र के विश्राम-स्थान में ले गये ।

—* ३ *—

वशिष्ठ और विश्वामित्र परशुराम को समझाने लगे । उन्होंने कहा—हम उस वीर के पुरोहित हैं जो यज्ञ आदि के शत्रुओं का दमन करने से इंद्र का अति-प्रिय मित्र है तथा जिससे पृथ्वी वैसे ही उज्ज्वल है जैसे इंद्र के वज्र से आकाश । अधिक क्या कहें, यह सूर्यवंशी वृद्ध राजा पुत्र-प्रेम से तुमसे अभय माँगता है । इन निरर्थक भगड़ों से तुम्हें क्या प्रयोजन ?

परशुराम—यदि राम इतना पराक्रमी न होता तो मैं क्षमा कर देता । आप ही देखें, बालक होकर भी राम अद्भुत कर्मों से प्रसिद्ध हो गया है । फिर गुरु के धनुर्भंग-रूप कठिन तिरस्कार को सहकर भी भार्गव कैसे मौन बैठा रहे ? अकारण अल्पमात्र भी निंदा पाने पर, चारों ओर निरंतर यश एकत्र करने में लगे हुए, उत्तम पुरुषों की मलिन जनश्रुति फैल जाने पर किसी प्रकार भी नहीं हटती ।

वशिष्ठ—वत्स ! जीवन-पर्यंत इस अस्त्र धारण करने की प्रवृत्ति से क्या लाभ ? जामदग्न्य ! तुम श्रोत्रिय हो । पवित्र पथ पर चलो । तुम वनवासी हो । मित्रता, दुःख में करुणा, सुख में प्रसन्नता और पापियों पर उपेक्षा, इन चारों मनोहर गुणों का अभ्यास करो । इस परशु का त्याग कर दो । देखो, यह ऋषियों की सभा, वृद्ध राजा युधाजित्, मंत्रियों सहित राजा दशरथ, वृद्ध लोमपाद और वेदज्ञ विदेह-राज सभी तुमसे अभयदान की याचना करते हैं ।

परशुराम—शत्रु का नाश किए बिना गुरु महादेव को मैं कैसे मुँह दिखाऊँगा ?

विश्वामित्र—यदि गुरु की इतनी चिंता है, तो मेरा भी कुछ

ध्यान करो। पहले भृगु, वशिष्ठ और अंगिरा ये तीन ऋषि हुए थे। तुम भृगुवंशी हो, वशिष्ठ अंगिरा के वंश में उत्पन्न हैं। इस प्रकार तुम दोनों परस्पर संबंधी हो।

परंतु परशुराम की बुद्धि में कुछ न आता था। वे कहने लगे—पूज्य जनों के वचन न मानने के अपराध का मैं प्रायश्चित्त कर लूँगा, परंतु शस्त्र-ग्रहण के महाव्रत को दूषित न करूँगा। स्वभाव से ही शस्त्र-ग्रहण मुझे मुक्ति से अधिक प्रिय है। आप मेरी इस कर्कश भुजा को देखें जिस पर डोरी की रगड़ के चिह्न पड़े हैं।

वशिष्ठ ने मन ही मन कहा कि यद्यपि यह गुणों से महान् है पर है अति प्रचंड। दर्प ही दिखाये जा रहा है।

विश्वामित्र ने फिर समझाते हुए कहा—वत्स ! सुनो, अकेले कार्तवीर्य के गाय हर लेने के अपराध से कुपित होकर तुमने पहले इक्कीस बार क्षत्रियों का नाश किया था। तब तुम्हारे गुरुजनों तथा च्यवन आदि ऋषियों ने तुम्हें शांत किया था। इतना क्रोध मत करो।

परशुराम—पितृवध से प्रयुक्त हुआ मैं क्षत्रियों के संहार से हट गया था। च्यवन आदि के वाक्यों से मैंने क्रोधाग्नि और परशु को रोक लिया था, परंतु शिव-धनुष तोड़कर राम ने मुझे अब फिर बलपूर्वक उत्तेजित किया है। चपल राम का सिर काटकर मैं फिर वन को चला जाऊँगा। दशरथ और जनक स्वस्थ रहें। फिर ऐसा अत्याचार न हो।

ये वचन सुनकर शतानंद को क्रोध आ गया। उन्होंने कहा—किसकी शक्ति है कि मेरे अतिप्रिय राजर्षि यजमान विदेहराज की छाया को भी छू सके ? और फिर जामाता को कौन छुएगा ? यदि मेरा यजमान किसी से अपमानित हो तो मेरे आंगिरस कुल को धिक्कार है।

विश्वामित्र—धन्य गौतम ! धन्य ! तुम जैसे पुरोहित से राजा जनक कृतकृत्य हैं ।

परशुराम—गौतम ! अनेक क्षत्रियों के तुम्हारे जैसे पुरोहित ब्रह्मतेज से क्रूढ़ते थे । किंतु मेरे अलौकिक तेज के सामने उनका साधारण बल शांत हो गया ।

शतानंद को अब असीम क्रोध चढ़ आया । उन्होंने कहा—
अरे बैल ! निरपराध क्षत्रियों के नाशक, महापापी, अशिष्ट, विकृत चेष्टावाले, बीभत्सकर्मी, पाषंडी, शस्त्रोपजीवी, धर्मत्यागी ! मेरे सामने भी तू गर्व करता है ? तू अवश्य नीच ब्राह्मण है ।

परशुराम—रे दुष्ट स्वस्तिवाचन करनेवाले, क्रुद्ध राजा के पुरोहित, अरे अहल्या के पुत्र ! तेरे कहने से मैं शस्त्रोपजीवी हूँ !

अब शतानंद ने इस भृगुवंश के दूषण-रूप परशुराम को शाप देना चाहा । परंतु वशिष्ठ ने कठिनता से उन्हें शांत कर बाहर भेजा ।

परशुराम तब भी बोलते रहे । कहने लगे—क्षत्रिय के आश्रित बालक की गर्जना देखो । इससे क्या ? अरे दशरथ और जनक की दया पर जीनेवाले ब्राह्मण ! तेरे कुल में जिसे तप या शस्त्र का अभिमान हो वह मेरे भीषण तेज को अपने दर्प से नीचा दिखावे । मैं पृथिवी को राम, दशरथ और सीरध्वज से रहित करके शांत होऊँगा ।

इस समय जनक ने आकर परशुराम को डाँटते हुए कहा—
भार्गव ! तुम अधिक घमंड दिखा रहे हो । तुम शत्रुनाश कर चुके हो । अब वृद्धावस्था में यज्ञ आदि कार्य करते हुए परम-ब्रह्म-स्वरूप को प्राप्त करो । मेरा स्वाभाविक क्षात्र तेज यद्यपि शांत हो गया है तथापि वह फिर प्रदीप्त होकर मुझे धनुष धारण करने को विवश करता है ।

परशुराम—आप वेदज्ञ, वृद्ध और धार्मिक हैं; फिर वेदांत के मर्मज्ञ और याज्ञवल्क्य के शिष्य भी हैं। इस कारण यदि मैंने विनय-पूर्वक आपकी सेवा की है तो क्रोध के कारण, भय का विचार किये बिना, आप क्यों कठोर वचन बोलते हैं ?

जनक—अपमान करते जा रहे हो और बताते विनय हो ! मुझे धनुष उठाना ही पड़ेगा। बस, और कोई उपाय नहीं।

परशुराम ने क्रोध और हँसी के साथ कहा—क्या कहा ? क्या कहा ? धनुष ! यह तो आश्चर्य है ! शत्रुओं के सिर काटने से तीक्ष्ण हुआ मेरा भी यह कुल्हाड़ा तैयार है।

अब तो जनक धनुष पकड़ने को विवश हो गये। परंतु इसी समय वहाँ दशरथ आ पहुँचे। उन्होंने ब्राह्मण पर अस्त्र चलाने से जनक को रोका।

जनक—हमराजा दशरथ ! अपने तिरस्कार की मुझे चिंता नहीं है। ब्राह्मण के कड़वे बोलों पर मुझे दुःख नहीं है। परंतु यह पापात्मा ब्रह्मचारी, राम के अमंगल के लिए, बढ़-बढ़कर बातें मार रहा है। इसे कैसे क्षमा किया जाय ?

परशुराम—आः दुरात्मा, नीच क्षत्रिय ! मुझे पापात्मा कहकर तिरस्कृत करता है। ठहर ! कुल्हाड़े से तेरे टुकड़े-टुकड़े करता हूँ।

महाराज दशरथ ने अब जनक और परशुराम के बीच आकर कहा—भार्गव, सुनो। ये राजा हमसे भी श्रेष्ठ हैं। इनको तुमने जो कड़वे बोल कहे हैं उनसे हमें बड़ा दुःख हुआ है। हम तुम्हें क्षमा न करेंगे।

परशुराम—आप तो स्वामी की नाईं मुझे डाँट रहे हैं। स्मरण रखिए, मैं स्वभाव से सदा स्वतंत्र रहा हूँ और आप क्षत्रिय हैं।

दशरथ—इसी कारण तो हम तुम्हें क्षमा न करेंगे। उदंड पुरुषों के दमन करने का क्षत्रियों को अधिकार है। तुम उदंड हो,

परशुराम को माता की
नाम

हम तुम्हें सुधारनेवाले क्षत्रिय हैं। शीघ्र शांत हो जाओ, अन्यथा दंड पाओगे। कहाँ तो ब्राह्मण का शांत स्वभाव और कहाँ क्षत्रिय-धर्म के ये अस्त्र !

परशुराम ने हँसकर कहा—चिरकाल के पश्चात् परशुराम को सुधारनेवाला स्वामी मिला है ! मुझे सुधारनेवाले तो केवल शिव ही हैं। सब क्षत्रियों के संहार करनेवाले को क्षत्रिय कैसे सुधार सकता है !

इतने में राम भी वहाँ आ गये। अब तो युद्ध अनिवार्य था। परशुराम ने राम को ललकारा और कहा—राज-कुमार ! आओ, परशुराम को जीतो। फिर हँसकर कहा—जीत न सकोगे। रेगुका, का पुत्र तुम्हारा काल है !

—* ४ *—

राम द्वारा परशुराम को पराजित हुए देखकर देवता मंगल-गान करने लगे। यह देखकर शूर्पणखा और माल्यवान् व्याकुल हो गये। माल्यवान् ने कहा—बेटी ! तुमने देवताओं की एकता देखी, जो इंद्र आदि स्वयं ही बंदीजन बन रहे हैं। अब उसने एक और युक्ति सोची। उसकी पूर्ति के लिए उसने शूर्पणखा से कहा—“राजा दशरथ ने भरत की माता कैकेयी को पहले दो वर देने का वचन दिया है। मंथरा नाम की उसकी दासी है। वह दशरथ का कुशल-क्षेम पूछने के लिए अयोध्या से मिथिला को गई है। तुम्हें उसके शरीर में प्रवेश कर इस प्रकार कहना चाहिए।”

अब माल्यवान् ने उसके कान में कुछ कह दिया।

शूर्पणखा—राम ऐसा करना स्वीकार कर लेगा ?

माल्यवान्—इच्छाकु-वंशीय सद्बृत्त को वह त्याग नहीं सकता। विशेषकर ऐसा विजयी कब त्यागने लगा ?

शूर्पणखा—इस युक्ति का क्या लाभ होगा ?

माल्यवान्—फिर अधिक दूर पर, राज्ञसों के समीप लाकर हम उसे विंध्याचल की अज्ञात कंदराओं में विचरते हुए सहज ही पीड़ित कर देंगे। तब राजशक्ति से रहित राम को छलकर ठग लेना सहज होगा। रावण ने सीता को अपनी स्त्री बनाने का प्रण किया है। यह कार्य भी अनायास सफल हो जायगा और प्रयोजन भी सिद्ध होगा। सीता के हरने का एक और भी कारण है। शत्रुओं के स्त्री छीन लेने पर लज्जित राम या तो मर जायगा अथवा प्रतिष्ठा-हीन होने से मृत-प्राय हो जायगा, या संधि के लिए प्रार्थना करेगा। किंतु अपमान से प्रदीप्त हुए राम ने यदि आक्रमण कर दिया तो, समुद्र के वेग के समान, उसे कोई रोक न सकेगा। कदाचित् वहाँ पहुँचने से पहले रावण का मित्र वालि उसे मार सके तो मार डाले। परंतु पुत्री ! इस विषय में अभी बहुत सोचना है।

शूर्पणखा—क्या सोचना है ?

माल्यवान्—विभीषण रावण का स्वभाव से शत्रु है; परंतु प्रजा को प्रिय है। खर-दूषण, कुलाचार के अनुसार, रावण की सेवा तो करते हैं किंतु राजा से वैसे ही धन खींचते हैं जैसे बछड़ा गाय से दूध। सो यह राजकुल तो फूट से जर्जर हो रहा है। राम के आक्रमण से राज्ञसों का नाश हो जायगा। पहले विभीषण का प्रतीकार करना चाहिए। उसे प्रकट रूप से दंड देना ठीक नहीं। प्रजा बिगड़ जायगी। उसे या तो कारागार में डाल देना चाहिए अथवा देश से निकाल देना चाहिए। परंतु गुप्त दंड को भी चतुर पुरुष समझ जायँगे और राम के आक्रमण करने पर इसका परिणाम बुरा होगा। कारावास में डालने से उसके मित्र खर आदि रुष्ट हो जायँगे। सो इसे निकालने से पहले खर आदि की चिंता करना चाहिए।

इस प्रकार चिंता करते हुए माल्यवान् ने यह भी सोचा कि यदि

विभीषण हमारे मन में विकार देख लेगा तो अपने परम मित्र सुग्रीव के पास, ऋष्यमूक पर्वत पर, चला जायगा। तब हमें भी उसकी उपेक्षा करनी चाहिए और इस प्रकार भाई से हमें भय की शंका न माननी चाहिए। तब वह अपने अभ्युत्थान के लिए बालि से मिलकर यत्न करेगा न कि राम से। अथवा राम का आश्रय लेगा और बालि को न मानेगा।

शूर्पणखा—यदि परशुराम का विजेता राम बालि को भी मार डाले तो विभीषण और राम का संयोग अनर्थकारी हो जायगा। यह सुनकर माल्यवान् बोला—तब तो राक्षस-कुल का सर्वनाश हो जायगा। केवल एक विभीषण बचेगा जिसे धर्मात्मा रामचंद्र राज्य दे देंगे।

माल्यवान् की आँखों के सामने रावण आदि के नाश का चित्र-सा खिंच गया। परंतु कोई दूसरा उपाय न सूझता था। उसने शूर्पणखा को अपना काम करने के लिए भेज दिया।

उधर राम और परशुराम के युद्ध से जनक, वशिष्ठ आदि को राम से बड़ी आशाएँ थीं। वे महाराज दशरथ की प्रशंसा करते थे जिनके ऐसा पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ।

कुछ समय के पश्चात् राम और परशुराम लौटते दिखाई पड़े। राम का लोहा मानकर परशुराम शांत हो गये थे। युद्ध की धृष्टता के लिए रामचंद्र के क्षमा माँगने पर परशुराम ने कहा—वत्स ! तुमने तो मेरा उपकार ही किया है, अपकार नहीं। जिस अहंकार ने ब्राह्मण-जाति की वंश-मर्यादा, शास्त्र, चरित्र और ज्ञान-राशि को मुझसे हर लिया था, उस अनेक दोषों की खान अहंकार को तुमने अकेले शांत कर दिया। तुमने मेरा हानिकारक गर्व नष्ट करके सर्वथा उचित किया।

परशुराम ने दशरथ, जनक आदि के सामने आकर कहा—यह

राम सुकुमारता के कारण शांत, किंतु प्रचंड पराक्रमी है। राम की विजयिनी शक्ति को मैंने भी स्वीकार कर लिया।

राम ने सबको प्रणाम किया और सबने उन्हें आलिङ्गन किया। परशुराम ने भी वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि को प्रणाम किया और अपनी धृष्टता के लिए क्षमा माँगी। उन्होंने राजाओं की भी प्रशंसा करके पहले किये गये अपमान का प्रतीकार किया।

अब वशिष्ठ और विश्वामित्र, आज्ञा लेकर, अपने आश्रम को चले गये। चलते समय परशुराम ने राम को, अपना धनुष देकर, दंडक-वन के तपस्वियों की रक्षा का भार सौंपा।

राम ने सोचा कि किसी प्रकार दंडक-वन जाकर, राज्ञसों से पीड़ित, तपस्वियों की रक्षा करनी चाहिए। किंतु वहाँ जाने की आज्ञा न मिलने की संभावना से वे निराश हो गये।

इसी समय लक्ष्मण, शूर्पणखा को मंथरा के वेष में साथ लेकर राम के पास आये। मंथरा (शूर्पणखा) राम को देखते ही उन पर आसक्त हो गई।

राम ने उसे देखकर मँभली माता कैकेयी की कुशल पृच्छी। मंथरा (शूर्पणखा) ने कहा—वे सकुशल हैं। तुम्हें आलिङ्गन करके वे आज्ञा देती हैं कि पहले महाराज ने उन्हें दो वर देने का वचन दिया था। उसी के विषय में, तुम्हारे पिता के नाम, उनका पत्र है।

लक्ष्मण ने पत्र लेकर पढ़ा। उसमें लिखा था—एक वर से भरत राजा हों और दूसरे वर से चौदह वर्ष के लिए केवल सीता और लक्ष्मण के साथ राम दंडक वन को शीघ्र जायँ।

पत्र पढ़ने से लक्ष्मण को क्रोध हो आया। वे कैकेयी को दुर्वचन कहने लगे। किंतु राम प्रसन्न होकर कहने लगे—वहाँ जाने के लिए तो मेरी पहले से ही इच्छा थी। लक्ष्मण साथ चलेंगे तो मुझे स्वजनों का वियोग न खलेगा।

यह सुनकर लक्ष्मण ने कहा—मेरा सौभाग्य है कि आपने मुझे साथ रखना स्वीकार कर लिया है।

राम ने अब मंथरा से कह दिया—हम वन जाने को तैयार हैं।

मंथरा (शूर्पणखा) और क्या चाहती थी ? वह तुरंत लौट गई।

इतने में मामा युधाजित् के साथ भरत दशरथ के पास गये।

युधाजित् ने, प्रजा के इच्छानुसार, राम का राज्याभिषेक करने के लिये मंत्रणा दी। दशरथ तो पहले ही इस कार्य के लिए उत्सुक थे।

उन्होंने राज्याभिषेक के साथ परशुराम के जीतने का महोत्सव मनाने की भी इच्छा की।

इधर राम और लक्ष्मण वन जाने की इच्छा से पिता से आशीर्वाद लेने, वहाँ पहुँचे। राम ने, माता कैकेयी की ओर से पिता से वही दो वर माँगे। इससे दशरथ और जनक मूर्च्छित हो गये।

सीता को लाने के लिए राम ने लक्ष्मण को भेजा।

यह दृश्य देख भारत व्याकुल होकर मामा से कहने लगे—मामा ! यह तुम्हारे कुल के योग्य है !

युधाजित् को इस कुचक्र का कुछ पता न था। वे भी राम को वन जाने से रोकने लगे। परंतु राम ने न माना।

इतने में लक्ष्मण सीता को लेकर आ गये। राम, सीता और लक्ष्मण, गुरुजनों की प्रदक्षिणा करके, वन को चल पड़े। उन्हें जाते देखकर युधाजित् शीघ्र उठकर साथ हो लिये। भरत भी चल पड़े।

युधाजित्—राम ! देखो, वन में तुम्हारी चरण-सेवा के लिए भरत जा रहे हैं।

राम—उन्हें तो पिता ने प्रजा की रक्षा करने की आज्ञा दी है।

भरत—वह कार्य लक्ष्मण या शत्रुघ्न कर लेंगे।

राम—मेरे जीते-जी तुम या और कोई भाई पिता की आज्ञा का उल्लंघन न करने पावेगा।

निराश भरत मूर्च्छित होकर गिर पड़े। सचेत होने पर, युधाजित् के कहने से, उन्होंने राम से खड़ाऊँ ले लीं और राम के लौटने तक नन्दिग्राम में रहने का विचार किया। राम और सीता की प्रदक्षिणा करके भरत लौट पड़े।

राम के वनवास की सूचना पाकर प्रजा को अति शोक हुआ। अनेक पुरुष राम के पीछे-पीछे वन को चले। युधाजित् भी राम के साथ ही जा रहे थे। राम ने उन्हें समझा-बुझाकर कठिनता से लौटाया। प्रजा को लौटाने की अभिलाषा से रोते हुए युधाजित् लौट आये।

राम, सीता और लक्ष्मण तीनों जब शृंगवेरपुर रहते थे तब वहाँ के राजा निषादपति गुह ने विराध राक्षस के अत्याचारों का वर्णन सुनाया था। अतः पहले उसे मारने के लिए, मन्दाकिनी नदी के तटवर्ती पवित्र चित्रकूट पर पहुँचकर, वे मुनियों के दर्शन करने की इच्छा से चल पड़े। वहाँ राक्षसों को मारकर दंडकवन पहुँचकर, उन्हें गृध्रराज के पास जनस्थान जाने की इच्छा हुई।

—* ५ *—

एक दिन जटायु अपने बड़े भाई संपाति से मिलने मलय-पर्वत पर गया। दोनों में सप्रेम वार्त्तालाप होने लगा। संपाति ने पूछा—राम का पितृशोक कम हुआ या नहीं?

जटायु—राम स्वभाव से धैर्यवान् हैं; विद्या और तप में श्रेष्ठ हैं। अब उनका पितृशोक कम हो गया है। अगस्त्य मुनि के कहने से वे इस समय पंचवटी में रहते हैं। वहाँ अपनी इच्छा पूर्ण करने के लिए एक बार शूर्पणखा आई थी।

यह सुनकर संपाति को आश्चर्य हुआ। वह कहने लगा—वह बड़ी निर्लज्ज है। तब क्या हुआ?

जटायु—लक्ष्मण ने उसके नाक, कान और होंठ काट डाले। इससे खर-द्रूषण आदि चौदह हजार राक्षसों ने राम पर आक्रमण किया। रामचंद्र ने सबको मार डाला।

संपाति—तब तो प्रचंड वैर का आरंभ हो गया। वत्स! अब सीता, राम और लक्ष्मण को क्षण भर भी न छोड़ना। सगी बहन शूर्पणखा के अपमान का बदला लेने का यत्न रावण अवश्य करेगा।

इस प्रकार राम आदि की रक्षा के लिए आज्ञा लेकर जटायु वापस लौटा। मार्ग में, जनस्थान में, प्रसन्न पर्वत पर पंचवटी दीख पड़ी। वहाँ जटायु ने देखा कि राम को एक विचित्र मृग दूर ले गया है। लक्ष्मण उन्हीं को खोज रहे थे। तब एक तपस्वी ने कुटी में प्रवेश किया। जटायु तुरंत समझ गया कि यह नीच रावण ही वेष बदले हुए है।

इतने में रावण सहस्र गदहोंवाले रथ पर सीता को बैठाकर कहीं ले जाने लगा। यह देखकर जटायु से चुप न रहा गया। वह रावण को पुकारकर बोला—धिकार है! वेद-रक्षक कुल में जन्म लेने पर भी ऐसा कार्य कर रहे हो। तुमने त्रिलोकी के विजय का यश मिट्टी में मिला दिया।

जटायु ने यथाशक्ति सीता की रक्षा करने का प्रयत्न किया किंतु उसका सब प्रयत्न निष्फल रहा। रावण ने तलवार से पंख काटकर उसे असमर्थ कर दिया और सीता को लेकर भाग गया।

जब राम और लक्ष्मण कुटी में लौटे तब सीता को न देखकर अत्यंत दुःखित हुए। घायल गृध्रराज अभी सिसक रहा था। उसने उन्हें बताया कि सीता को रावण हर ले गया है। इतना कहते-कहते उसका प्राणान्त हो गया। राम-लक्ष्मण ने यथाविधि उसका दाह-कर्म किया।

इस अपमान के प्रतीकार का निश्चय कर दोनों भाई आगे बढ़े। मार्ग में एक स्थान पर भयानक वन दिखाई पड़ा। लक्ष्मण ने सोचा कि यहीं, जनस्थान के पश्चिम में, दंडक-वन का वह भाग है जहाँ कबंध नामक राक्षस रहता है। राम ने उस गुफा के मेंढक को देखना चाहा।

इतने में एक शब्द हुआ। किसी अबला को दुरात्मा कबंध खींचे लिए जा रहा था। वह सहायता के लिए पुकार रही थी। राम ने वहाँ लक्ष्मण को भेजा। कुछ समय के पश्चात् लक्ष्मण अपने साथ एक शबरी को लेकर राम के सामने उपस्थित हुए।

शबरी ने राम से निवेदन किया कि जब आपने खर-दूषण को मारा था तभी से विभीषण, किसी कारण बंधुओं को त्यागकर, ऋष्यमूक पर्वत पर मित्र सुग्रीव के यहाँ है। उसने यह पत्र दिया है। विभीषण ने पत्र में लिखा था कि हम विशिष्ट भाग्यवालों की दो प्रकार की गति है “या तो धर्म का आचरण करें अथवा धर्म के रक्षक आपका आश्रय ग्रहण करें।” राम ने विभीषण को अपना परम मित्र तथा लंकेश्वर बनाने की प्रतिज्ञा की। शबरी प्रसन्न हो गई।

लक्ष्मण ने शबरी से पूछा—सीता के विषय में विभीषण कुछ जानते हैं ?

शबरी—दुरात्मा राक्षस जब सीता को लिए जा रहा था तब उनका, अनसूया नाम से अंकित, दुपट्टा गिर पड़ा था। उसे उन्होंने उठा लिया था।

लक्ष्मण—देवी ! उसे किसने, किस कारण, उठाया ?

शबरी—ऋष्यमूक पर्वत पर—रामचंद्र के गुण-पक्षपात से—सुग्रीव, विभीषण और हनुमान् आदि ने उठाया था।

अब इन महानुभावों से मिलने की राम की इच्छा हुई। सो वे शबरी के साथ चल पड़े।

मार्ग में राम का ध्यान एक जलती हुई चिता की ओर गया। उन्होंने शबरी से पूछा—दक्षिण की ओर आग कैसी जल रही है ?

शबरी—लक्ष्मण ने योजनबाहु की चिता बनाई है।

राम ने इस कार्य पर लक्ष्मण को धन्यवाद दिया ही था कि एक दिव्य पुरुष उनके सामने आ खड़ा हुआ। उसने निवेदन किया कि मैं लक्ष्मण का दनु नाम का पुत्र हूँ, शाप से राक्षस हो गया था और इंद्र के वज्र की चोट से कबंध हो गया था। अब आपके संग से शाप से मुक्त हुआ हूँ। माल्यवान् के कहने से मैं आपको मारने के लिए आया था। अब आपके तेज से मुझे अपना स्वाभाविक तेज फिर मिल गया है। आपने मेरा अत्यंत उपकार किया है। इस कारण आपको बताता हूँ कि माल्यवान् ने बालि को, रावण की मित्रता का स्मरण कराकर, आपके मारने के लिए नियुक्त किया है।

उसके दर्शन से राम अनुगृहीत हुये। उसे बिदा कर वे आगे बढ़े। मार्ग में लक्ष्मण ने शबरी से बालि और रावण की मित्रता का कारण पूछा।

शबरी—कैलास पर्वत को जीतने से गर्वित रावण बालि के साथ युद्ध करने गया था। सो बालि ने उसे काँख में दबा लिया। फिर सातों समुद्रों में संध्या-कर्म आदि समाप्त कर उसे छोड़ दिया। तब शिर झुकाए हुए रावण को बालि ने मित्र बना लिया।

कुछ दूर आगे चलने पर एक सफेद टीला दिखाई पड़ा। शबरी ने बताया कि यह दुंदुभि दैत्य की अस्थियों का समूह है। राम ने पैर के अँगूठे से इस टीले को दूर फेंक दिया; क्योंकि इससे मार्ग रुक रहा था। अब आगे सुंदर नीली विस्तृत वन-भूमि दिखाई पड़ी। शबरी ने बताया कि यह ऋष्यमूक और पंपा सरोवर के पास की भूमि है और आगे मतंग मुनि का आश्रम है।

इन्हें मारने के अभिप्राय से बालि भी इस समय वहाँ आ पहुँचा। वह सोने का कंठा और इंद्रदेव से प्राप्त सुवर्ण-कमलों की माला पहने था। उसका लाल शरीर संध्या के समय विजली से युक्त बादल के समान शोभायमान हो रहा था। अपना अंग सिकोड़कर जब वह उछलता था तब गेरु के पर्वत के समान प्रतीत होता था।

बालि आ तो गया था परंतु यह सोच रहा था कि अनुरोध के कारण मनुष्य नरक में भी गिर जाता है। माल्यवान् ने, रावण के साथ मैत्री का स्मरण कराकर, राम के वध के लिए मुझे नियुक्त किया है। अहा ! कितना हठ करता था ! सबेरे से मुझे घेरे था। मुझे किष्किंधा पहुँचाकर तब लौटा है।

बालि ने दूत द्वारा जान लिया था कि विभीषण ने, सुग्रीव से बिना कहे ही, शबरी को रामचंद्र के पास भेजा है और रामचंद्र ने उसे लंका का राज्य देने का वचन दिया है।

बालि ने राम-लक्ष्मण को वहाँ खड़े देखा। राम की मोहनी मूर्ति ने उसके हृदय में घर कर लिया। उसने समझा कि मेरा हृदय पवित्र हो गया। परंतु अब यदि मैं युद्ध नहीं करता तो अपयश का भागी होता हूँ; प्रतिज्ञा का खंडन होता है। सो उसने युद्ध करने का ही निश्चय किया। बालि ने राम को युद्ध के लिए ललकारा। दोनों मैदान में चले गये। जब राम ने धनुष खींचा तब बालि ने घोर गर्जना की। परंतु रामचंद्र ने उसे एक ही बाण से मार गिराया।

विभीषण और सुग्रीव भी वहाँ आ पहुँचे। आसपास खड़े सब सेवक शोक करने लगे। आँखों में आँसू भरे हुए सुग्रीव भी बालि को देखने लगा। भाई को गले लगाने के बहाने बालि ने सुग्रीव के गले में “कमलमाला” डाल दी।

सुग्रीव और विभीषण ने शबरी से बालि के वध का कारण

पूछा। शबरी ने माल्यवान् का सब वृत्तांत उनके कान में कह दिया। सुग्रीव की की आँखें भर आईं। बालि ने सुग्रीव को राम के हाथ सौंप दिया। उसने राम और सुग्रीव से परस्पर मैत्री की प्रतिज्ञा अपने सामने करवा दी। उसने समझ लिया कि रावण का भी अंत-समय समीप ही है। अब बालि के प्राण निकलनेवाले थे। उसके कहने पर सब उसे भरने के किनारे ले गये।

—* ६ *—

बालि का वध सुनकर माल्यवान् अति चिंतित हुआ। उसने सोचा कि रावण की दुर्नीति का पौधा अब कलियों से लद गया है। सीता को माँगना इस पौधे का बीज है; शूर्पणखा की यात्रा अंकुर है; मारीच की माया पल्लव हैं और सीता का हरण शाखाएँ हैं। उन शाखाओं का फूटना बालि का वध तथा विभीषण और सुग्रीव की राम के साथ मैत्री है। थोड़े समय में ही इसका फल दिखाई देगा। ओह ! भाग्य हमारे प्रतिकूल है। जब इस क्षत्रिय युवक ने चक्रवर्ती बालि को मार डाला तब इसके लिए क्या कठिन है ? सुना है, सीता की खोज के लिए चतुर दूत भेजे गये हैं।

इसी समय एक ओर से शब्द आया कि लंका जल रही है। चारों ओर से आग की लपटें निकल रही हैं।

इतने में त्रिजटा व्याकुल होकर छाती पीटती वहाँ आई। वह रक्षा के लिए पुकारती हुई गिर पड़ी। माल्यवान् ने विपत्ति का कारण पूछा तो त्रिजटा ने उठकर कहा—नानाजी ! क्या कहूँ ? एक वानर ने सारी नगरी जला डाली; बाणों की नाई राक्षसों को खींच-खींचकर फेंक दिया है। अक्षकुमार से सामना होने पर उसे भी आग में फेंककर वह भाग गया।

यह वृत्तांत सुनकर माल्यवान् को ध्यान आया कि उसके गुप्त-

चर ने राम के इस दूत का नाम हनुमान् बताया था। रुई के समान लंका के जल जाने से उसे रावण के प्रताप का हास प्रतीत होने लगा। उसने त्रिजटा से पूछा—तो वह वानर सीता से मिला था ?

त्रिजटा—पहले एक नन्हा-सा वानर सीता से मंत्रणा कर रहा था। सीता ने उसे चूड़ामणि उतारकर दी थी।

माल्यवान् को अब चिंता हुई। वह कहने लगा—जब इस नन्हे-से वानर ने ऐसा कार्य कर दिखाया है तब सुग्रीव के राज्य में तो ऐसे करोड़ों वानर हैं।

त्रिजटा—सुकुमारी सीता हम राक्षसों से भी बढ़कर राक्षसी कैसे हो गई ?

माल्यवान्—यह और कुछ नहीं, केवल पतिव्रता का प्रताप है। अथवा तुमने उसे राक्षसी कहा है; सो दुष्कर्मों का परिणाम स्वयं पापियों को जला देता है। अस्तु, भय मत करो। अगम्य पर्वत पर लंका नगरी बसी है। उसके चारों ओर प्राकार तथा अगाध समुद्र है।

परंतु अब स्वयं माल्यवान् को चिंता सताने लगी। उसे राम की विजय प्रत्यक्ष दिखने लगी। कहने लगा—विशुद्धात्मा रावण, प्रबल भविष्य के अतिरिक्त और कहीं न तो नीति के मार्ग से गिरा और न बुद्धि के मार्ग से। अब दैव ही इसके प्रतिबुल दिखता है।

रावण का ध्यान आने पर माल्यवान् पूछने लगा—त्रिजटा ! रावण इस समय क्या कर रहा है ?

त्रिजटा—वे सर्वतोभद्र अटारी पर बैठकर अशोक-वाटिका में बैठी, राक्षस-वंश के लिए काल-स्वरूप, सीता को देख रहे हैं। इधर आते समय मैंने सुना था कि महारानी जी नगर की दुर्दशा सुनकर, उदास हो, उन्हें समझाने जा रही हैं।

यह सुनकर गुप्त मंत्रणा के लिए त्रिजटा के साथ माल्यवान् भी चला गया।

उधर सर्वतोभद्र अट्टालिका पर बैठा रावण सीता को देख रहा था कि वहाँ मंदोदरी आ पहुँची। उसने रावण से शत्रु की चढ़ाई के विषय में पूछा कि क्या उपाय सोचा है।

रावण ने मुस्कराकर कहा—कैसा शत्रु और कैसी चढ़ाई ?

मंदोदरी—सुना है, वानरों की सेना सहित सुग्रीव को आगे किये हुए राम-लक्ष्मण.....

रावण—अरे ! वह तपस्वी और उसका छोटा भाई ! वे क्या कर सकेंगे ?

मंदोदरी—उनको दलबन्दी से भय होता है। मैंने यह भी सुना है कि तट पर सेना ठहराकर राम ने समुद्र को पुकारा परंतु वह बाहर नहीं निकला। तब उस तपस्वी ने समुद्र में एक बाण चलाया जिससे सारा जल चक्कर खाता हुआ, उष्णता उत्पन्न हो जाने के कारण सूखने लगा। असंख्य जल-जीव व्याकुल हो उठे और महान् कोलाहल हुआ।

रावण ने अवज्ञा के साथ पूछा—तब फिर ?

मंदोदरी—महाराज ! तब बाण से विह्वल समुद्र ने शीघ्र बाहर निकलकर प्रार्थना की और मार्ग बता दिया। साहसी समुद्र ने राम को सहायता देने का वचन दिया है।

रावण ने हँसकर कहा—हाँ, सुन रहे हैं।

मंदोदरी—सहस्रों वानरों द्वारा पर्वत मँगवाकर ^{सुत}सेतु बाँधा गया है।

रावण—महारानी ! तुम्हें किसी ने धोखा दिया है। समुद्र की गंभीरता किसी को नहीं मालूम। जंबूद्वीप पर अथवा दूसरे द्वीपों पर जितने पर्वत हैं उन सबसे समुद्र का एक कोना भी न भरेगा। तुमने उसे साहसी कहा है तो क्या मेरे साहस को भूल गई हो ?

इसी समय एक ओर कोलाहल हुआ। मंदोदरी भयभीत होकर रक्षा के लिए पुकारने लगी। इतने में सेनापति प्रहस्त ने आकर सूचना दी—नगरी चारों ओर से घेर ली गई है। फाटक बंद कर दिये गये हैं। चारों ओर राजभक्त राक्षस रक्षा कर रहे हैं।

रावण ने अब भी उपेक्षा के साथ पूछा—क्या ?

प्रहस्त—छोटे भाई के संग एक मनुष्य ने नगरी घेर ली है। भोज्य-सामग्री नहीं मिलती। नर-नारी व्याकुल हैं।

इतने में ही एक दासी ने आकर सूचना दी—राम का दूत बाहर खड़ा है।

दूत (अंगद) ने रावण के सामने आकर कहा—अहंकारी राक्षस-रूप वन के लिए दावाग्नि-रूप राम की आज्ञा से मैं तुम्हें उपदेश देने आया हूँ। सीता को मुक्त कर दो, बंधु-बाँधवों सहित लक्ष्मण की सेवा करो; अन्यथा ये बाणों से तुम्हें मार डालेंगे।

यह सुनकर रावण को क्रोध आ गया। उसने अंगद का रूप विगाड़ने के लिए आज्ञा दी। प्रहस्त ने कहा भी कि यह दूत है; इस पर क्रोध करना अनुचित है। परंतु रावण ने कुछ न सुना।

संदेश का उत्तर जानकर अंगद चले गये।

अंगद के चले जाने पर प्रहस्त ने रावण से अपने लिए आज्ञा माँगी। उसने आज्ञा दी—लंका के सब फाटक खोल दिये जायँ। शत्रु का कुचल डालनेवाले राक्षसों की लोक-प्रसिद्ध सेना बाहर जाकर युद्ध करे। भीषण अस्त्रों का निपुणता से प्रयोग किया जाय। वानरों के टुकड़े-टुकड़े कर डाले जायँ।

यह आज्ञा लेकर प्रहस्त गया हो था कि एक ओर से फिर कोलाहल हुआ। विदित हुआ कि वानर, भयंकर रूप धारण करके, राक्षसों का संहार कर रहे हैं; नगरी के फाटक खुलवाने के लिए पथर बरसा रहे हैं।

रावण का ध्यान इस समय आकाश की ओर खिंच गया। उसने देखा कि देवता राम का पक्ष लेकर, अपने आपको भूलकर, आकाश में भी उसके द्वेषी होकर कूद रहे हैं। रावण ने अब मंदोदरी को भीतर भेजकर युद्ध के लिए स्वयं प्रस्थान किया।

उधर युद्ध देखने के लिए मातलि सहित इंद्र आ गये। कुछ समय के अनंतर गंधर्वराज चित्ररथ भी आ पहुँचे। उनको युद्ध देखने की इच्छा तो थी ही परंतु साथ ही उन्हें अलकाधिपति कुबेर की ओर से युद्ध का वृत्तांत जानने की आज्ञा भी थी। यद्यपि कुबेर और रावण दोनों भाई थे तथापि उन दोनों में जन्म से ही शत्रुता थी। रावण द्वारा कुबेर की निधि और पुष्पक आदि छिन जाने की घटना तो प्रसिद्ध ही है। इस समय इंद्र ने वानरों की सेना को अस्त-व्यस्त होते देखकर कहा कि रावण ने अपना अस्त्र चला दिया। देखो, कितना कोलाहल मचा हुआ है।

चित्ररथ की दृष्टि रथ पर विराजमान रावण पर पड़ी। वह युद्ध की प्रतिज्ञा करके रथ पर बैठा था। बारंबार 'जय जय' की ध्वनि से कान बहरे हो रहे थे।

दोनों पक्ष की युद्ध-सामग्री असाधारण देखकर इंद्र ने राम के पास अपना युद्ध-रथ भेज दिया और वे स्वयं चित्ररथ के रथ पर बैठकर युद्ध देखने लगे।

अब दोनों ओर से भयंकर युद्ध होने लगा। अस्त्र-शस्त्रों से वीर हताहत होने लगे। रक्त से लथपथ होने पर सैनिकों के लिए खड़े रहना कठिन हो गया। सिर और धड़ कट जाने पर वीरों की विशाल भुजाएँ ही मार-काट कर रही थीं। मृतों और आहतों के कारण रणभूमि में पर्वत का-सा ढेर लग गया।

इस समय रावण का युद्ध में उतरना अपूर्व था। वह सौ छोटे भाइयों से घिरा हुआ था। बाईं ओर इंद्र-विजयी मेघनाद था;

दाहिनी ओर नींद से जगाया गया कुंभकर्ण था। पीछे रावण की माता के बंधुवर्ग तथा दूसरे लोग थे।

रावण को इस प्रकार चढ़ाई के लिए उद्यत देखकर भी राम निर्भय थे। युद्ध आरंभ होने पर शीघ्रता से बाण चलाये जाने लगे। राम की सेवा में श्रेष्ठ सेनापति भी खड़े थे। रथ के आगे सुग्रीव और पीछे अंगद थे। जांबवान् और विभीषण भी उनके पास थे। हनुमान् लक्ष्मण के साथ थे। इस प्रकार सब वानर अपनी स्वामि-भक्ति और शीरता दिखा रहे थे। इस मनुष्य-लोक में स्नेह ही सब इंद्रियों का वशीकरण चूर्ण है।

इधर लक्ष्मण और मेघनाद युद्ध कर रहे थे; उधर राम और रावण एक दूसरे पर बाणों की वर्षा कर रहे थे। परंतु तब भी वे (राम और रावण) क्रमशः अपने भाई और पुत्र की ओर देख लेते थे।

लक्ष्मण के वज्र-सदृश बाणों से सैकड़ों सैनिक खेत रहे। रावण अपने कुछ पुत्रों को मरा देखकर अनिष्ट की आशंका से युद्ध त्यागकर मेघनाद के पास जा पहुँचा। परंतु रावण अधिक समय तक युद्धभूमि में नहीं ठहर सका। वह सवेग संग्राम से एक ओर निकल भागा। युद्धाभिलाषी कुंभकर्ण राम के बाणों से घायल हो गया। उसका पुत्र कुंभ, पिता की यह दशा देखकर, काँपने लगा। पर्वत के समान कुंभ को, राम की ओर मूर्तिमान् गर्व के सदृश, बढ़ते देख सुग्रीव ने तुरंत भुजाओं में दबाकर पीस डाला। पुत्र की यह दशा देखकर कुंभकर्ण सुग्रीव पर झपटा। चतुर सुग्रीव ने तुरंत बचकर, शूर्पणखा की नाक कटने की लज्जा का प्रतिकार हुए बिना ही, उसकी भी नाक काट डाली।

रावण युद्ध में फिर आ डटा। लक्ष्मण ने रावण और मेघनाद पर एक अद्भुत अस्त्र फेंका जिससे दोनों क्रोधांध हो गये। मेघनाद ने मंत्रों के प्रभाव से दुर्भेद्य एक नागास्त्र चलाया। उसे लक्ष्मण

जिसके काँटों पर रावण

काटने भी न पाये थे कि क्रोधांध रावण ने लक्ष्मण को शतघ्नी मारकर अचेत-सा कर दिया।

इस समय का युद्ध अद्भुत था। विभीषण से भाई की मूर्च्छा का वृत्तांत जानकर राम करुणा और वीरता से एक साथ ही प्रभावित हो गये। वे लक्ष्मण के देखने को उत्सुक थे; किंतु फिर भी, चारों ओर राक्षसी सेना से घिरे होने के कारण, उसका सामना कर रहे थे। राम ने क्षण भर में कुंभकर्ण को यमालय भेज दिया। कुछ अवसर पाकर वे लक्ष्मण को देखने लगे। पुत्र की मृत्यु से रावण दुःखित हो रहा था। इसी समय वीर हनुमान् ओषधियोंवाले द्रोण पर्वत को ही उठा लाये। ओषधि की गंध से सुगंधित पर्वत की वायु से लक्ष्मण तुरंत सचेत हो गये।

इस समय रावण, प्रलयकाल में समुद्र के जलकी नाई, राक्षस-सेना समेत विपन्न की ओर बढ़ा। अब धर्मयुद्ध होने लगा। बहुतेरे प्रधान राक्षस मारे गये। मुख्य राक्षसों में केवल रावण और मेघनाद बच रहे। इनके साथ की छुद्र राक्षस-सेना को राम-लक्ष्मण कुछ नहीं गिनते थे।

इस समय ओषधि के प्रभाव से लक्ष्मण का तेज पहले जैसा ही हो गया था। फिर घमसान युद्ध होने लगा। राम-रावण तथा लक्ष्मण-मेघनाद परस्पर भिड़ गये। अनेक अस्त्र-शस्त्र चलने लगे। वीरों का सिंहनाद होने लगा। आकाश बाणों से घिर गया। शत्रुओं के शरीरों से पृथिवी ढक गई। राम-लक्ष्मण तब भी राक्षसों के सिर काटते जाते थे। अब राम और लक्ष्मण ने, ऋषियों के कथनानुसार, रावण और मेघनाद के वध के लिए ब्रह्मास्त्र चलाया। बस, उनके सिर कटकर नीचे गिर पड़े। इसके पश्चात् ही उनके धड़ और अंतःपुर की स्त्रियाँ एक साथ गिर गईं।

इस शुभ अवसर पर आकाश से पुष्पवृष्टि हुई। उत्सव मनाने

के लिए महर्षि लोग इंद्र को बुलाने लगे। चित्ररथ को कुबेर के पास भेजकर इंद्र ने भूलोक का मार्ग लिया।

—* ७ *—

रावण की मृत्यु के अनंतर लंकापुरी की देवी लंकादेवी, अपने स्वामी रावण के लिए विलाप करने लगी। उसे रावण-कुल में से कोई भी अपना दिखाई न पड़ता था। इस कारण उसे भारी शोक था। लंकादेवी की बड़ी बहन अलकादेवी ने उसे कुछ धीरज दिया, परंतु अलकादेवी ने कहा—मुझे धीरज कैसे हो? केवल स्त्रियाँ वच रही हैं। कुलाश्रय एक विभीषण ही बचा है। वह भी शत्रुपक्ष में है।

अलका—बहन ! ऐसा मत कहो। वह हमारा शत्रु नहीं है। जिसका शत्रु था वह गया। वह शत्रुता भी गई। अब त्रिलोकी के हितैषी राम स्वभाव से हमारे हितकारी हैं।

लंका ने लंबी साँस लेकर कहा—यदि ऐसा है तो उन्होंने रावण को क्यों मारा ?

अलका—रावण उनकी स्त्री को हर लाया था। यह उसी पाप का फल है।

लंका—तो अब तुम कहाँ जाती हो ?

अलका—रावण के सौतेले भाई कुबेर ने यह समाचार सुनकर मुझसे कहा है कि जाकर राज्ञसों को समझा-बुझा आओ। विभीषण का राज्याभिषेक भी देख आओ। उन्होंने आज्ञा दी है कि पुष्पक विमान, जिसे रावण ने हर लिया था, रामचंद्र की सेवा में रहे।

यह सुनकर लंका विस्मित होकर बोली—क्या कुबेर भी राम के पक्षपाती हैं ?

अलका—इसमें क्या आश्चर्य ? साधुजनों की रक्षा के लिए

भगवान् अवतार लेते हैं। रावण तो शाप के वश में था। उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी। उसका भी दोष न था।

इस समय एक ओर से शब्द हुआ। विदित हुआ कि सीता को, अग्नि-परीक्षा में शुद्ध जानकर, राम ने स्वीकार कर लिया है। तदुपरांत बाजों की ध्वनि हुई। ध्यानपूर्वक सुनने से उन्हें ज्ञात हुआ कि अप्सराएँ तथा देवता, ऋषि आदि—जो सीता की शुद्धि के अनुमोदन के लिए आये थे—राम की आज्ञा से विभीषण को राजतिलक देकर अब अपने स्थानों को लौट रहे हैं। पुष्पक विमान को आगे किये विभीषण, रामचंद्र के पास, जा रहा है। यह सुनकर लंका और अलका भी राम को देखने के लिए गईं।

रामचंद्र, लक्ष्मण, सीता, सुग्रीव आदि सब खड़े थे। विभीषण पुष्पक विमान लेकर वहाँ पहुँचे और निवेदन करने लगे—आपकी आज्ञा से सब बंदी मुक्त कर दिये गये। सदा इच्छानुकूल चलनेवाला यह पुष्पक विमान है।

पुष्पक विमान को देखकर राम प्रसन्न हुए और मित्र सुग्रीव से पूछने लगे कि अब क्या करना चाहिए।

सुग्रीव—हनुमान् जब द्रोण पर्वत को लेकर आ रहे थे तब उनसे भरत ने अनिष्ट वृत्तांत सुना था। वे अभी व्याकुल हो रहे होंगे। सो भरत के पास हनुमान् को सूचना के लिए भेजना चाहिए। आप पुष्पक विमान पर विराजें।

राम, सीता और लक्ष्मण—सुग्रीव, विभीषण आदि के साथ—विमान पर बैठ गये। चौदह वर्ष के वनवास की अवधि समाप्त होने में केवल एक दिन शेष था। विमान पर बैठकर सब अयोध्या की ओर चले। मार्ग में समुद्र, सेतु, दंडकारण्य, विंध्याचल आदि के दृश्य देखते हुए विश्वामित्र के आश्रम पर पहुँचे। जहाँ गुरु पैदल चलते हैं वहाँ विमान पर चढ़कर चलना राम ने अनुचित

समझा। परंतु विश्वामित्र ने, नीचे बैठे-बैठे ही उनका आंतरिक भाव जानकर, आज्ञा दी—सीधे चले चलो। वशिष्ठ आदि तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मैं भी दो घंटे में वहाँ आता हूँ।

विमान फिर चलने लगा।

उधर हनुमान् से राम के आने की सूचना पाकर भरत-शत्रुघ्न, स्वागत के लिए, सेना समेत आ गये। विमान जब अयोध्या पहुँचा तब आनंद का समुद्र उमड़ आया। चिर-काल से विछड़े हुए भाई-बंधु फिर मिले।

भरत ने राम से निवेदन किया—आपके राज्याभिषेक का प्रबंध करके महाराज वशिष्ठ प्रतीक्षा कर रहे हैं। उधर पधारिए।

राम, सीता और लक्ष्मण आदि अब अयोध्या के राजमंदिर के लिए चले। वहाँ वशिष्ठ, अरुंधती, कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी आदि इनकी राह देख रही थीं। सब प्रसन्न थीं। कैकेयी को उदास बैठी देखकर अरुंधती ने पूछा—बहू! तुम क्यों उदास हो रही हो?

कैकेयी—माता! मुझ पापिन के दुर्भाग्य ने सर्वत्र यही प्रसिद्ध है कि “मँभली माता कैकेयी ने, मंथरा से संश्लेष भिजवाकर, कुमारों को वनवास दिलाया था।” सो अब मैं यह कैसे मँह दिखाऊँ?

अरुंधती—बहू! अपकीर्ति की गिता मत करो। इसका भेद तुम्हारे गुरुजनों ने दिव्य-दृष्टि से जान लिया है। माल्यवान् के कहने पर शूर्पणखा ने मंथरा का रूप धारण कर यह सब किया था।

इस समय राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, सीता और विभीषण आदि सब वहाँ पहुँच गये। प्रेम का समुद्र उमड़ उठा। शिष्यों के साथ विश्वामित्र भी वहाँ इसी समय आ गये।

रामचंद्र का राज्याभिषेक यथाविधि कर दिया गया। आकाश में मंगल-गान और पुष्पवृष्टि हुई।

विश्वामित्र ने राम से कहा—सुग्रीव और विभीषण को विदा

कर दो। पुष्पक विमान भी कुबेर को लौटा दो। जब आवश्यकता हो, मँगा लेना।

सुग्रीव और विभीषण अपने-अपने देशों को लौट गये। पुष्पक विमान कुबेर को लौटा दिया गया। रामचंद्र राज-कार्य का निरीक्षण करने लगे।

१-३-५३

मैंने देखा है कि चारों ओर
जो शक्ति है उसकी चारों ओर
कदाचित्त के दिन उसकी दया जव



जीवन भारी
करेल

भूषण कवच



उत्तर-रामचरित

—* १ *—

रामचंद्र के अभिषेक के समय अयोध्या में दिन-रात उत्सव होता रहा। अभिषेकोत्सव समाप्त होने पर लंका-युद्ध के मित्र वानर और राक्षस तथा आशीर्वाद देने के लिए विभिन्न प्रदेशों से आये हुए ब्रह्मर्षि और राजर्षि विदा हो गये।

कुछ समय के अनंतर अरुंधती को आगे किये हुए राम की तीनों माताएँ, वशिष्ठ मुनि के साथ जामाता ऋष्यशृंग के यज्ञ में गईं। विभांडक मुनि के पुत्र ऋष्यशृंग का विवाह शांता के साथ हुआ था, जिसे लोमपाद ने राजा दशरथ से गोद लिया था। ऋष्यशृंग ने बारह वर्ष के यज्ञ का अनुष्ठान किया था। उनके अनुरोध से गुरुजन, पूर्ण गर्भवती जानकी को छोड़कर, वहाँ चले गये थे।

इन दिनों प्रजा में एक प्रवाद फैल रहा था। राक्षस के घर में रहने के कारण सीता को अनेक लोग दोष देते थे। उन लोगों को अग्नि-परीक्षा में विश्वास नहीं था। परंतु यह लोकापवाद अभी राम के कानों तक न पहुँचा था।

राजा जनक के चले जाने पर उदासीन सीता को राम धीरज दे रहे थे कि ऋष्यशृंग के आश्रम से अष्टावक्र मुनि आ गये। उनको प्रणाम आदि करने के पश्चात् सीता और राम ने स्वजनों का कुशल-द्वेष पृच्छा।

कुशल-समाचार निवेदन करके अष्टावक्र ने सीता से कहा—
देवी ! भगवान् वशिष्ठ ने तुम्हें कहा है—“पृथ्वी तुम्हारी माता है, प्रजापति के समान राजा जनक तुम्हारे पिता हैं, उन राजाओं की

तुम पुत्र-वधू हो जिनके कुल के सूर्य और हम गुरु हैं। सो तुम्हारे लिए और कुछ आवश्यक नहीं, यही आशीर्वाद है कि तुम वीर-जननी होओ"। भगवती अरुंधती माताओं तथा शांता ने बारंबार कह दिया है कि सीता की प्रत्येक दोहद-इच्छा शीघ्र पूरी की जाय।

राम—वे तो जो इच्छा करती हैं वह पूरी कर दी जाती है।

अष्टावक्र फिर बोला—ऋष्यशृंग ने तथा माताओं ने यह कहा है—पुत्री ! तुम पूर्ण गर्भवती हो, इस कारण तुम्हें साथ नहीं लाये। राम को तुम्हारे मनो विनोद के लिए ही छोड़ दिया है। सो तुम आयुष्मती की गोद को हम पुत्र से भरी हुई देखेंगे।

राम—क्या भगवान् वशिष्ठ ने कुछ आदेश नहीं दिया है ?

अष्टावक्र—उन्होंने कहा है कि जामाता के यज्ञ से हम रुके हुए हैं। तुम अभी बालक हो, राज्य नया है। तुम्हें प्रजा की प्रसन्नता में दत्तचित्त रहना चाहिए। इसी में यश है, जो तुम्हारे वंश का परम धन है।

राम—स्नेह, दया, मित्रता, किंबहुना जानकी को भी—प्रजा की प्रसन्नता के लिए—त्यागने में मुझे दुःख नहीं है।

संदेश सुनकर राम ने अष्टावक्र के विश्राम करने के लिए लक्ष्मण को बुलाकर साथ कर दिया।

लक्ष्मण ने फिर आकर निवेदन किया—चित्रकार अर्जुन ने, मेरे कथनानुसार, वीथिका में आपके चरितों को अंकित कर दिया है। आप देख लें।

राम—चित्र कहाँ तक बने हैं ?

लक्ष्मण—महारानी की अग्नि-परीक्षा तक।

राम—ऐसा मत कहो। जन्म से ही पवित्र रानी को अन्य शोधकों से क्या काम ? तीर्थ, जल और आग आदि दूसरे पदार्थों से वे शुद्धि के योग्य नहीं हैं।

फिर सीता से कहा—हे यज्ञ से उत्पन्न हुई देवी ! क्षमा करना । तुम्हारे जीवन-भर के लिए यह प्रवाद हो गया । खेद है, हम जैसे कुलधनियों को प्रजा की प्रसन्नता का यत्न करना पड़ता है । सो मैंने जो अशुभ कठोर वचन तुम्हें कहे थे उनके लिए तुम क्षमा करना ।

सीता—जाने दीजिए । चलिए, आपके चित्र को देखूँ ।

फिर सब लोग उठकर चित्र देखने चले गये । चित्र में कई दृश्य बने थे । एक स्थान पर जृम्भक अस्त्र थे जो भगवान् कृशाश्व से विश्वामित्र को मिले थे तथा जिन्हें उन्होंने, ताड़का-वध से प्रसन्न होकर, राम को दे दिये थे । राम के आदेश से यही अस्त्र, भविष्य में राम के पुत्रों को प्राप्त हुए । इसके आगे मिथिला में विवाह का दृश्य था । कहीं पर राम का चित्र था । कहीं पर जनक और शतानन्द वशिष्ठ आदि का सत्कार करते दिखाये गये थे । साथ ही चारों भाइयों के विवाह का चित्र था । सीता, उर्मिला, माण्डवी और श्रुतकीर्ति चारों बहनों का भी चित्र था । इससे सीता के सामने मानों वही समय उपस्थित हो गया । परन्तु परशुराम का चित्र देखकर वे डर गईं ।

अब लक्ष्मण ने अयोध्या के चित्र की ओर राम का ध्यान दिलाया । उसे देखकर राम को पिता का स्मरण आ गया ।

लक्ष्मण ने मंथरा का चित्र दिखाया ।

परन्तु राम, बिना कुछ कहे, अगले चित्र को देखकर कहने लगे—यह शृंगवेर-नगरी में इंगुदी का वृक्ष है, जहाँ पर पहले मित्र निषादराज से हमारी भेंट हुई थी ।

लक्ष्मण ने समझ लिया कि माता कैकेयी के वृत्तांत को भाई ने छोड़ दिया ।

आगे पुण्य जलवाली भागीरथी नदी का चित्र था । राम ने

भागीरथी से, सीता के कल्याण के लिए, सावधान रहने की प्रार्थना की।

फिर विंध्याचल के चित्र आरंभ हो गए। पहले ही विराध-वध का चित्र था। आगे जनस्थान में प्रसवण पर्वत के दृश्य थे। एक ओर पंचवटी में शूर्पणखा का चित्र था। एक ओर स्वर्ण-मृग से राक्षसों द्वारा की हुई करतूत अंकित थी। इसके स्मरण से राम के नेत्रों में आँसू भर आये।

लक्ष्मण ने अब उनका ध्यान जटायु के चित्र की ओर दिलाया। वहाँ दंडकारण्य, चित्रकुंजवान्, ऋष्यमूक पर्वत पर मतंग ऋषि का आश्रम, सिद्ध शबरी और पंपा आदि के दृश्य थे। अगले दृश्य में अंजना के पुत्र हनुमान् का चित्र था। परंतु राम को सीता के वियोग का स्मरण करके, अब इन चित्रों का देखना कठिन हो गया। सीता भी थक गई थीं। अतः अब चित्र देखना छोड़कर सब लोग विश्राम करने लगे।

चित्रों के देखने से सीता को कुछ और ही विचार हुआ। वे कहने लगीं—स्वामी ! मुझे शांत और घने वनों में विचरने की इच्छा होती है। मैं पवित्र भागीरथी में स्नान करना चाहती हूँ।

राम ने तुरंत लक्ष्मण से कहा—वत्स ! इनकी दोहद-इच्छा शीघ्र पूरी करनी चाहिए। गुरुजनों का भी यही संदेश है। सो शांत गति से चलनेवाला रथ लाओ।

सीता—स्वामी ! आपको भी साथ चलना चाहिए।

राम—अरी कठोर हृदयवाली ! क्या इसके कहने की आवश्यकता है ?

लक्ष्मण रथ लेने गये। राम और सीता खिड़की के पास विश्राम करने के लिए, लेट गये। चित्र देखने के परिश्रम से सीता थक गई थीं। वे राम की बाँह पर सिर रखकर लेटी-लेटी सो

गईं। उन्हें देखकर राम मन में कहने लगे कि यह मेरी गृह-लक्ष्मी है, आँखों के लिए अमृत की सलाई है, इसका स्पर्श मेरे शरीर के लिए चंदन से बढ़कर शीतल है। इसका सब कुछ प्रिय है; केवल इसका विरह ही असह्य है।

इतने में राम को समीपवर्ती दुर्मुख दूत के आने की सूचना मिली। राम ने उसे बुला भेजा।

सीता इस समय नींद में बड़बड़ा उठी—हा स्वामी ! आप कहाँ हैं ?

राम ने समझा कि चित्र देखने के कारण विरह के भाव से, यह उद्विग्न हो रही हैं।

इतने में दुर्मुख आ गया। राम ने पूछा—कहो, क्या समाचार मिला है ?

दुर्मुख—सब प्रजा आपकी स्तुति करती है कि राम के कारण हम महाराज दशरथ की स्मृति को भूल गये हैं।

राम—यह तो मेरी प्रशंसा हुई। कोई दोष बतलाओ जो हटाया जाय।

दुर्मुख ने राम के कान में कुछ कह दिया। इससे वे मूर्च्छित हो गये। सचेत होकर उन्होंने कहा—हा ! शोक है। सीता का, पराये घर में रहने का, दूषण अद्भुत उपायों से शांत हो गया था। दुर्भाग्य से अब वह फिर, पागल कुत्ते के विष के समान, सर्वत्र फैल गया है। मैं अभागा क्या करूँ ?

राम ने फिर विचार कर कहा—और क्या करूँ ? अच्छे राजाओं को, जैसे बने प्रजा का रंजन करना ही चाहिए। मुझे भी भगवान् वशिष्ठ ने यही कहला भेजा है। अब यदि मेरे विषय में गृहित लोकापवाद फैले तो मैं सचमुच पापिष्ठ हूँ।

राम को सीता के पवित्र चरित्र पर सब प्रकार से विश्वास

था। वे कहते थे कि यह देवयज्ञ से उत्पन्न हुई है; इसके जन्म से पृथ्वी पवित्र हुई है; पृथ्वी ही क्यों, तीनों लोक पवित्र हुए हैं। परंतु खेद है कि उसी सीता के विषय में मनुष्यों का ऐसा घृणित कथन है !

राम ने अब दुर्मुख के कान में, लक्ष्मण को आदेश के लिए, कुछ कह दिया। यह सुनकर दुर्मुख कहने लगा—आग से शुद्ध की गई, पवित्र रघुकुल की संतान की गर्भधारिणी, रानी के विषय में दुर्जनों के वचन के कारण आप ऐसा क्यों सोचते हैं ?

राम—शांत रहो। प्रजा दुर्जन कैसे है ? इक्ष्वाकु-वंश प्रजा को प्रिय है ! दैव से निंदा का बीज उत्पन्न हो गया है, और विशुद्धि के समय जो अद्भुत कृत्य दूर देश में हुआ था, उस पर कौन विश्वास करे ?

दुर्मुख चुपचाप आज्ञा-पालन करने को चला गया।

इस निश्चय के कारण राम अपने को धिक्कारते हुए कहने लगे “मैं अति बीभत्स कर्म से घातक हो गया हूँ। बाल्यकाल से पाली हुई सीता को मैं छल से मृत्यु के मुँह में वैसे ही ढकेल रहा हूँ, जैसे मांस-विक्रेता, पाले हुए, पक्षी का वध करे। अतः मैं तो पातकी और स्पर्श के अयोग्य ठहरा। भला मैं देवी को क्यों दूषित करूँ ?”

ऐसा विचारकर राम ने, सीता के सिर के नीचे से, अपनी बाँह धीरे से निकाल ली और कहने लगे—“अरी मूढ़ ! मुझे छोड़ दे, मैं तो चांडाल का-सा कर्म कर रहा हूँ। तूने चंदन-वृक्ष के भ्रम से, भयंकर विष-वृक्ष का आश्रय लिया है। मैं निरुपाय हूँ। क्या करूँ ?” इस प्रकार संतप्त होकर राम रोने लगे।

इतने में बाहर से “वचाओ ! वचाओ” का शब्द सुनाई दिया। राम ने इस शब्द का कारण जानने को कहा। सूचना मिली कि लवण से पीड़ित होकर ऋषि लोग, रक्षा के लिए आये हैं।

राम ने क्रोध से कहा कि आह, अब भी राक्षसों का भय बना हुआ है ? ऋषियों की रक्षा के लिए उन्होंने शत्रुघ्न को भेज दिया ।

अब भगवती वसुंधरा को पुत्री जानकी की रक्षा के लिये प्रार्थना करके वे चले गये ।

सीता नींद में फिर बोलो—हा ! स्वामी ! आप कहाँ हैं ? फिर सहसा उठकर कहने लगीं—हा ! शोक है । बुरे स्वप्न से ठगी हुई मैं स्वामी को पुकार रही हूँ । ओह ! स्वामी मुझे अकेली छोड़कर चले गये । यह क्या ? अच्छा, जब उन्हें देखूँगी तब, वश में हुई तो, उन पर क्रोध करूँगी ।

इतने में दुर्मुख रथ लेकर आ गया । उसने सीता से कहा—रानी ! कुमार लक्ष्मण निवेदन करते हैं कि रथ तैयार है, चढ़िए ।

सीता रथ पर चढ़ कर वन के लिए चली गई । साथ लक्ष्मण थे ।

—❀ २ ❀—

बारह वर्ष व्यतीत हो गये । एक दिन वनदेवी ने एक तापसी का फल-पुष्प-पल्लव के अर्घ्य से अतिथि-सत्कार किया । यह तापसी आत्रेयी थी । वनदेवी ने पूछा—देवी ! आप कहाँ से आ रही हैं, दंडक वन में आने का क्या प्रयोजन है ?

आत्रेयी—यहाँ अगस्त्य आदि अनेक साधवेदी ऋषि रहते हैं । उनसे वेदांत पढ़ने के लिए मैं, वाल्मीकि के पास से, आई हूँ ।

वनदेवी ने विस्मित होकर कहा—जब दूसरे मुनि भी उसी पुरातन ब्रह्मवादी प्राचेतस् ऋषि की सेवा में, वेदाध्ययन के लिए, उपस्थित होते हैं तब आप यह लंबे प्रवास का यत्न क्यों करती हैं ?

आत्रेयी—वहाँ अध्ययन में बाधा पड़ती है । उन ऋषिजी के पास, सब प्रकार से अद्भुत, दो दुधमुहें बच्चों को कोई देवता ले

आया है। वे बच्चे न केवल ऋषियों के, बरंच चराचर जीवों के भी अंतःकरण को स्नेह से भर देते हैं।

वनदेवी—आप उनके नाम जानती हैं ?

आत्रेयी—कहा जाता है कि उस देवता ने ही उनके नाम कुशल वताकर उनका प्रभाव बतला दिया है। उन बच्चों को जन्म से ही जुंभकास्त्र, रहस्य सहित, सिद्ध हैं।

यह सुनकर वनदेवी विस्मित हुई।

आत्रेयी ने फिर कहा—वास्तव में उन बच्चों को महर्षि वाल्मीकि ने, धाय की तरह पाला है। चूड़ाकर्म हो जाने पर, वेद के अतिरिक्त, और सब विद्याएँ वाल्मीकि ने उन्हें सावधानी से पढ़ा दीं। इसके अनंतर ग्यारहवें वर्ष में छात्र-विधि के अनुसार यज्ञोपवीत हो जाने पर, उन्हें तीनों वेद पढ़ा दिये। उन कुशाग्र-बुद्धि मेधावी बालकों के साथ हम जड़ बुद्धिवालों के सहाध्ययन का योग नहीं है।

वनदेवी—क्या अध्ययन में यही विघ्न है ?

आत्रेयी—और भी है। वे ब्रह्मर्षि एक बार माध्यंदिन-सवन के लिए तमसा नदी को गये। वहाँ उन्होंने क्रौंचयुगल में से एक को व्याध से बिंध जाते देखा और अकस्मात् स्फुरित सुबद्ध वरुणों सहित अनुष्टुप् छंद में परिणत वाग्देवी का वचन कहा—

[‘मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।

यत् क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥’]

रति-विलास की चाह सों, मदमाती सानंद ।

क्रौंचनि की जोड़ी फिरत विहरत जो स्वच्छंद ॥

हति तिनमें सों एक को, कियो परम पराध ।

युग-युग लौं तोहि नहि मिलहिं, कबहुँ बड़ाई व्याध ॥

यह छंद सुनकर वनदेवी ने कहा—यह तो वेद से भिन्न नये छंद की रचना हुई है ।

आत्रेयी—तब समय पर प्रकट हुये शब्द-ब्रह्मप्रकाश-युक्त उक्त ऋषि के, पास आकर भूतभावन ब्रह्मा ने कहा—“हे ऋषि ! तुम शब्द-स्वरूप ब्रह्म में प्रवृद्ध हो, सो रामचरित कहो । तुम्हारी प्रतिभा को आर्ष-चक्षु की ज्योति निर्विघ्न प्राप्त होगी । तुम आदिकवि हो ।” ब्रह्मा के अंतर्धान हो जाने पर भगवान् प्राचेतस् ने पहले-पहल, मनुष्य-लोक में, शब्द-ब्रह्म के उस विवर्त को इतिहास-रामायण में रचा । अच्छा, यह मैंने विघ्न बतला दिया । अब मुझे अगस्त्य मुनि के आश्रम का मार्ग बताओ ।

मार्ग बताती हुई वनदेवता ने कहा—यहाँ से पंचवटी में जाकर गोदावरी तट पर ही चलती चली जाना ।

आत्रेयी ने आँखों में आँसू भरकर पूछा—तो यह तपोवन है; यह पंचवटी है, यह गोदावरी है, यह प्रसवण पर्वत है, और आप हैं जनस्थान की देवी वासंती ?

वासंती—हाँ, यह सब ठीक है ।

आत्रेयी—सीता के संबंधवाले पदार्थ आदि से मेरे सामने अब केवल नामशेष सीता दिखाई देती है ।

वासंती ने भयभीत होकर कहा—सीता देवी का क्या अनिष्ट हुआ ?

“केवल अनिष्ट ही नहीं वरंच अपवाद भी ।” इतना कहकर आत्रेयी ने वासंती के कान में कुछ कह दिया ।

वासंती मूर्च्छित हो गई । सचेत होकर पूछने लगी—उस वन में लक्ष्मण द्वारा त्याग दी जाने पर सीतादेवी का क्या हुआ ? कुछ सुना है ?

आत्रेयी—कुछ नहीं सुना ।

इस उत्तर से दुःखित होकर वासंती कहने लगी—अरुंधती वशिष्ठ आदि से अधिष्ठित और बूढ़ी स्त्रियों के जीवन-काल में रघुकुल में यह कैसे हुआ ?

आत्रेयी—तब गुरुजन तो ऋष्यशृंग के यज्ञ में गये थे। अब बारह वर्षों का यज्ञ समाप्त होने पर, ऋष्यशृंग से सत्कृत होकर, गुरुजन विदा हुये हैं। तब भगवती अरुंधती ने कहा कि मैं सीता से शून्य अयोध्या में न जाऊँगी। राम की माताओं ने भी इसका अनुमोदन किया। यह अनुरोध मानकर भगवान् वशिष्ठ ने वाल्मीकि के तपोवन में जाकर निवास करने का विचार किया।

वासंती—इसके अनंतर उस राजा ने क्या किया ?

आत्रेयी—उस राजा ने अश्वमेध यज्ञ का आरंभ किया है।

वासंती ने विस्मय के साथ पूछा—तो क्या राम ने विवाह भी कर लिया ?

आत्रेयी—उन्होंने सीता की सुवर्ण-प्रतिमा बनवाई है।

इस पर वासंती ने कहा—हा ! श्रेष्ठ पुरुषों के वज्र से भी कठोर और कुसुम से भी कोमल हृदयों को जानने में कौन समर्थ है ?

आत्रेयी ने फिर कहा—यज्ञ का घोड़ा छोड़ दिया गया है। वामदेव ने मंत्रों द्वारा उस घोड़े की पूजा की थी। विधि के अनुसार उसके रक्षक नियुक्त किये गये हैं। दिव्यास्त्रों से सजी चतुरंगिणी सेना के साथ लक्ष्मण का पुत्र चंद्रकेतु भेजा गया है।

वासंती ने स्नेह से कहा—अहा ! कुमार लक्ष्मण के भी पुत्र है। मैं सौभाग्यवती हूँ।

आत्रेयी ने आगे कहा—इसके अनंतर एक ब्राह्मण मरे हुए पुत्र को राज-द्वार पर लाकर, अपना छाती पीटकर, रक्षा करने के लिए चिल्लाने लगा। तब “राजा के दुर्व्यवहार के बिना प्रजा में अकाल-

मृत्यु नहीं होती” यह सोचकर, अपना दोष देखने पर, करुणामय रामचंद्र को सहसा एक दिव्य वाणी हुई—शंबूक नाम का वृषल पृथ्वी पर तप कर रहा है। तुम उसका सिर काट करके ब्राह्मण को पुनर्जीवित करो।

यह सुनकर उस शूद्र तपस्वी को ढूँढ़ने के लिए तलवार हाथ में ले, पुष्पक-विमान पर चढ़कर, सब दिशाओं में जगत्पति राम ने विचरना आरंभ किया है।

यह सुनकर वासंती को आशा हुई कि कदाचित् राम इस वन को फिर अलंकृत करें।

उधर सौभाग्य से वन की दूसरी ओर पुष्पक-विमान पर चढ़े हुए राम ने सचमुच प्रवेश किया। अपनी इच्छा के विरुद्ध उन्होंने किसी प्रकार प्रहार करके शूद्र का वध किया और प्रार्थना की कि वह ब्राह्मण का पुत्र पुनर्जीवित हो जाय।

इसी समय एक दिव्य पुरुष प्रकट हो गया। उसने कहा—मैं तुम्हारे चरणों में सिर झुकाता हूँ। यम से भी अभय किये जाने पर, और तुम्हारे दंड धारण करने पर, वह शिशु पुनर्जीवित हो। यह दिव्य रूप मेरी संपदा है। सत्संग से उत्पन्न मृत्यु भी श्रेयस्कर है।

यह दृश्य देखकर राम प्रसन्न हो गये और कहने लगे—मुझे दोनों बातें प्रिय हैं। सो अपने उग्र तप का फल भोगो।

शंबूक—यह आपके चरणों की महिमा है, न कि तपस्या का फल। नहीं तो कहाँ अयोध्या और कहाँ दंडक वन में आपका आना।

राम विस्मित होकर बोले—क्या यह दंडक वन है?

शंबूक—यही दंडक वन है। सुना है, यहाँ रहकर पहले आपने चौदह हजार क्रूर राक्षसों और खर, दूषण तथा त्रिशिरा

को युद्ध में मारा था। इस कारण सिद्ध-क्षेत्र जनस्थान में भरे जैसे भीरु जनों को विचरना निर्भय हो गया है।

अब राम ने समझ लिया कि यह न केवल दंडक वन है वरंच जनस्थान भी है। जनस्थान के विचार से राम को सब पूर्व-वृत्तान्त प्रत्यक्ष दिखाई देने लगे। उन्हें सीता का स्मरण हो आया। वे चारों ओर देखकर कहने लगे—यह वही वन है जो वैदेही को बहुत प्रिय था। इससे अधिक भयानक और क्या होगा?

राम के नेत्र सजल हो गये। शंबूक ने वन के मनोहर दृश्य द्वारा उनके चित्त को स्वस्थ करना चाहा, परंतु निष्फल था। राम ने आँसू पोंछकर उसे विदा किया।

शंबूक भी, शाश्वत स्थान को जाने से पहले, अगस्त्य ऋषि को प्रणाम करने चला गया। अब राम अकेले फिर पहले सीता के साथ रहने के दिनों के चिंतन में डूब गये। स्मरण आया कि यह वही पंचवटी है जहाँ चिरकाल तक निवास करने से विविध स्वच्छंद विहारों की अधिकता के साक्षी प्रदेश हैं और प्रिया की प्रिय सखी वासंती रहती है। आज मुझे यह क्या हो गया? चिरकाल से घनीभूत शोक, नये के समान, मुझे वैसे ही व्याकुल करता है, जैसे तेज विष फैलकर चिरकाल के पश्चात् वेगपूर्वक पीड़ा देता है; अथवा जैसे भीतर वाण का टुकड़ा वेग से हिल रहा हो, अथवा जैसे—मांस आ जाने से बंद हुए—हृदय के मर्मों में फोड़ा फिर से फूट पड़ा हो।

राम अब पूर्व-परिचित प्रदेश के भागों को देखने लगे। पंचवटी उन्हें दलपूर्वक अपनी ओर खींचने लगी। इतने में शंबूक ने आकर निवेदन किया कि भगवान् अगस्त्य, मुझसे आपका आवाज सुनकर, कहते हैं कि लोपामुद्रा तथा दूसरे सब महर्षि आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। आप दर्शन देकर उन्हें सत्कृत करें।

राम ने अगस्त्य की आज्ञा स्वीकार कर ली। अब दोनों उधर चले गये।

—* ३ *—

तमसा नदी ने मुरला को शीघ्रता से जाते देखकर पूछा—
सखी मुरला ! तुम व्याकुल-सी क्यों हो ?

मुरला—भगवती तमसा ! भगवान् अगस्त्य की पत्नी लोपा-
मुद्रा ने नदी-श्रेष्ठ गोदावरी से यह कहने के लिए मुझे भेजा है—
“तुम जानती ही हो कि स्त्री का त्याग कर देने से राम का शोक,
गंभीर स्वभाव के कारण, हृदय में अव्यक्त महान् पीड़ा से—वन्द
वर्तन में उवाले जाने के समान—कैसा भीषण है। और उस लंबे
शोक के संताप से अब राम बहुत दुर्बल हो गये हैं। उन्हें देखकर
मेरा हृदय काँपता-सा है। अब राम लौटते हुए अवश्य ही पंचवटी
में स्त्री के साथ रहने के स्वच्छंद विहारों के साक्षी प्रदेश को
देखेंगे। सहज गंभीर राम के लिए स्थान-स्थान पर, पूर्व-स्मृति से
उत्पन्न क्षोभ और शोकावेग के कारण, अनिष्ट का भय है।
भगवती गोदावरी ! तुम सावधान रहना। जब कभी राम मूर्च्छित
हों तब तुम ठंडे जल-कणों से युक्त, कमल-पराग से सुगंधित,
वायु प्रेरित कर उन्हें प्रसन्न करना।

तमसा—यह उदारता उनके स्नेह के योग्य ही है। राम के
संजीवन का उपाय तो पहले से ही प्रस्तुत है। सुना है, पहले
वाल्मीकि के तपोवन के निकट जब लक्ष्मण सीता-देवी को त्याग-
कर चले गये, तब प्रसव-वेदना के अत्यधिक दुःख के कारण वे
गंगाजी में कूद पड़ीं। तब वहीं उनके दो पुत्र उत्पन्न हुए। पृथ्वी और
गंगादेवी, अनुग्रह कर, उन्हें रसातल ले गईं और दूध छोड़ देने पर
दोनों शिशुओं को गंगादेवी ने प्राचेतस् महर्षि को स्वयं सौंप दिया।

मुरला यह सुनकर विस्मय से कहने लगी—ऐसे महात्माओं का दुःख भी परम अद्भुत हो जाता है, जहाँ गंगा आदि जैसे व्यक्ति उपकार करने को प्रस्तुत होते हैं।

तमसा ने आगे कहा—अब शंकुक के वृत्तांत से राम के जनस्थान में आने की संभावना को सरयू के मुख से सुनकर भगवती भागीरथी, जो शंका लोपामुद्रा ने स्नेह के कारण की थी वही शंका करके सीता के साथ किसी घरेलू काम-काज के बहाने गोदावरी को देखने आई हैं। इसी कारण भगवती भागीरथी ने सीता से कहा है—बेटी सीता ! आज ही चिरंजीव कुशलव की बारहवीं वर्ष-गाँठ है। सो अपने पुरातन ससुर मनु के राजवंश के प्रवर्तक पापनाशक सूर्यदेव की अपने हाथों चुने हुए फूलों से, पूजा करो। मेरे प्रभाव से तुम्हें, वनदेवता भी, पृथ्वी पर चलते न देखेंगे; मनुष्यों की तो बात ही क्या ? उन्होंने मुझे आज्ञा दी है कि तमसा ! जानकी तुमसे अत्यंत प्रेम करती है, सो तुम्हीं इसकी सखी बनो। अतः मैं आज्ञा-पालन के लिए उपस्थित हूँ।

मुरला यह वृत्तांत जानकर लोपामुद्रा से कहने चली गई।

उधर एक ओर सीता फूल चुन रही थीं। वहाँ तमसा भी पहुँच गई।

इसी समय एक ओर से शब्द हुआ—विमानराज ! यहीं ठहर जाओ।

यह सुनकर सीता चौंक पड़ीं। फिर हर्ष और क्षोभ से कहने लगीं अहो ! यह शब्द कहाँ से मुझ अभागिन को तुरंत धीरज दे रहा है ? यह तो स्वामी का ही शब्द है।

तमसा—सुना है कि तपस्या करते हुए शूद्र को दंड देने के लिए इक्ष्वाकु-वंशी राजा जनस्थान में आये हैं।

सीता—सौभाग्य से वे राजधर्म में दत्तचित्त हैं।

सीता ने उधर देखा तो दुर्बल-शरीर स्वामी को पहचानकर वे मूर्च्छित हो गईं !

उधर, उसी ओर, राम ने कहा—इस पंचवटी के दर्शन से आज, हृदय में जल रही दुःख की आग के धुँए से पीड़ित हुआ-सा, मोह पहले मुझे घेर रहा है । फिर व्याकुलता से जानकी को पुकारते हुए वे मूर्च्छित हो गये ।

सीता इस समय सचेत हो गई थीं । वे राम को मूर्च्छित होते देखकर, बहुत दुःखित हो, विलाप करने लगीं । उन्होंने तमसा से पति की जीवन-रक्षा के लिए प्रार्थना की ।

तमसा—तुम्हारे हाथ का स्पर्श उनको प्रिय है । तुम्हारे स्पर्श से मंगल होगा ।

तमसा के कहने से सीता, पास जाकर, राम को स्पर्श करने लगीं । राम सचेत हो गये । वे सोचने लगे कि यह क्या है ! यह तो निःसंदेह वही स्पर्श है जो पहले से परिचित है ।

अब राम बैठकर कहने लगे—क्या मुझ पर प्रिय सीता ने अनुग्रह नहीं किया है ?

ऐसा कहकर राम उन्हें खोजने लगे ।

सीता—भगवती तमसा ! मैं पीछे हटी जाती हूँ । यदि मुझे देख लेंगे तो बिना आज्ञा के निकट होने से महाराज मुझ पर अधिक क्रोध करेंगे ।

तमसा—बेटी ! भागीरथी के वर के प्रभाव से तुम तो वन-देवताओं के लिए भी अदृश्य हो ।

सीता को ढूँढ़ते हुए राम करुणा से पुकारने लगे—हा ! प्रिय जानकी ! तू यहाँ भी कहीं नहीं है ।

सीता ने सोचा कि अकारण त्याग देने पर भी इनके इस प्रकार दर्शन से मेरा हृदय न जाने कैसा हो गया है ।

राम ने सीता को न पाकर कहा—अथवा मेरी सीता यहाँ कहाँ ? अवश्य ही यह निरंतर चिंता की चतुराई से उत्पन्न हुआ भ्रम है।

इस समय वनदेवी वासंती भी राम के पास आ गई। कदंब-वृक्ष पर मोरनी के साथ षड्ज ध्वनि करता हुआ, सीता का अत्यंत प्रिय, मोर वासंती ने राम को दिखाया। उसका सीता से ताली द्वारा नचाये जाने का स्मरण राम को भी आ गया। उन्हें यह भी स्मरण आया कि इस कदंब को भी सीता ने सींचकर बढ़ाया है।

वासंती ने अब राम को शिलातल पर बैठाकर कहा—यह वही शिलातल है जहाँ सीता के साथ आप सोते थे। इन हरिणों ने अब तक इसे नहीं छोड़ा है, क्योंकि यहाँ पर बैठी सीता बहुधा इन्हें घास खिलाती थीं।

यह दृश्य देखने में असमर्थ हो राम रोने लगे।

सीता—सखी वासंती ! मुझे और महाराज को यह दिखाकर तुमने क्या किया ? हा शोक ! वही स्वामी हैं, वही पंचवटी है, वही प्रिय सखी वासंती है, वही विविध स्वच्छंद विहारों के साक्षी गोदावरी के वनस्थान हैं, वही अपनी संतान के समान मृग, पक्षी और वृक्ष हैं और वही मैं हूँ। फिर मुझ मंदभागिन के देखते हुए भी सब कुछ वह नहीं हैं। संसार में ऐसा परिवर्तन !

वासंती ने, विषय बदलने के विचार से, कहा—“महाराज ! लक्ष्मण तो कुशल से हैं न ?” परंतु राम ने यह प्रश्न नहीं सुना। वे तो सीता की चिंता के कारण व्याकुल थे।

वासंती ने फिर कहा—महाराज ! मैं पूछती हूँ कि कुमार लक्ष्मण तो सकुशल हैं न ?

राम ने सोचा—‘महाराज’ संबोधन-पद प्रेम-भाव से शून्य है; लक्ष्मण के विषय में ही, आँसुओं से लड़खड़ाते अक्षरों में, कुशल-प्रश्न किया गया है। सो मेरा अनुमान है कि यह सीता का वृत्तांत जानती है। उन्होंने अब प्रकट रूप में वासंती से कहा—हाँ, कुमार कुशल से हैं।

इतना कहकर राम रोने लगे।

वासंती—राजन् ! इतने कठोर क्यों हो ?

सीता—सखी वासंती ! तुम ऐसा क्यों कहती हो ? ये स्वामी सबके प्रियपात्र हैं, विशेषकर मेरी प्रिय सखी के।

राम—लोग सहन नहीं करते।

वासंती—क्यों ?

राम—जो कुछ भी है वही जानते हैं।

तमसा—तब उन्हें डाँट उचित है।

वासंती—हे कठोर ! तुम्हें यश प्रिय है। इससे और घोर अपयश क्या होगा ? मृगनयनी का वन में क्या हुआ ? नाथ ! शोक है। कहो, तुम क्या समझते हो ?

यह उलाहना सुनकर सीता ने कहा—सखी वासंती ! तुम्हीं अत्यंत कठोर हो जो संतप्त महाराज को इस प्रकार और संतप्त करती हो।

तमसा—प्रेम और शोक इसको कहते हैं।

राम—मैं यहाँ क्या सोचूँ ? उसकी बिस के समान मृदु, प्रकाशमयी देह-लतिका को, जो गर्भभार से आलसमय हो रही थी, भयभीत थी, और एक वर्ष के मृग-शावक के समान चंचल दृष्टिवाली थी, हिंसक पशुओं ने अवश्य नष्ट कर डाला होगा।

सीता—स्वामी ! मैं जीवित हूँ।

‘जानकी कहाँ है,’ कहकर राम रोने लगे। सीता व्याकुल हो गईं।

तमसा—बेटी ! यह उचित ही है; क्योंकि पूरे भरे हुए तालाब का बह जाना ही ठीक है । शोक से जुब्ब हृदय प्रलाप द्वारा स्थिर होता है !

हृदय के आवेग से राम फिर कहने लगे—आह ! बड़ा कष्ट है । घोर उद्वेग से जुब्ब हृदय फट क्यों नहीं जाता ? यह विकल शरीर मोह को प्राप्त होता है परंतु चेतनता को नहीं छोड़ता । मन का संताप शरीर को जलाता है, भस्म नहीं कर देता । मर्मस्थलों को काटनेवाला दुर्भाग्य प्रहार तो करता है, परंतु जीवन को काट नहीं डालता ।

राम को इस प्रकार शोक-विह्वल देखकर वासंती ने कहा—भूतकाल के विषय में महाराज धैर्य रखें ।

राम—धैर्य कैसा ? देवी को छोड़े यह बारहवाँ वर्ष है । 'सीता' नाम भी लुप्त हो गया और राम अभी जीवित हैं ।

इन वचनों से सीता मोहित हो गईं । कहने लगीं—मैं मंदभागिन फिर भी स्वासी को क्लेशदायिनी हुई ।

राम गहरे शोक के संताप से मूर्च्छित हो गये ।

सीता अपने लिए उन्हें बारंबार मूर्च्छित होते देखकर व्याकुलता से स्वयं मूर्च्छित हो गईं ।

तमसा ने सीता को धीरज देकर कहा—फिर तुम्हारे हाथ का स्पर्श ही राम के संजीवन का उपाय है ।

सीता ने शीघ्र ही राम के पास जाकर उनको स्पर्श किया । राम फिर सचेत होकर कहने लगे—अकस्मात् फिर वही स्पर्श मुझे जीवित करता है ।

आँखें बंद किये हुए ही वे फिर कहने लगे—सखी वासंती ! जानकी फिर मिल गई ।

वासंती—महाराज ! वे कहाँ हैं ?

राम ने स्पर्श-सुख का अनुभव करके कहा—देखो, यह सामने ही है।

वासंती—अरे ! इन मर्मच्छेदी कठोर प्रलापों से, प्रिय सखी के दुःख से जल रही मुझ मंदभागिन को फिर क्यों जलाते हो ?”

राम—“वासंती ! प्रलाप कैसा ? यह उसका वही हिम के समान मनोहर, कोमल लवली-लता के समान सुशीतल हाथ मैंने पा लिया है।”

यह कहकर राम ने सीता का हाथ पकड़ लिया। परंतु सीता ने हाथ छुड़ा लिया !

राम—हाय ! अनर्थ हो गया। उसका कर-पल्लव मेरे जड़ हाथ से सहसा छूट गया। फिर सब ओर देखकर वे कहने लगे—हा ! क्या वह यहाँ नहीं है ? वैदेही अवश्य कठोर है।

सीता ने यह सुनकर कहा—मैं सचमुच कठोर हूँ, जो आपको इस दशा में देखकर भी जीवित हूँ।

राम ने फिर कहा—तुम कहाँ हो ? रानी ! प्रसन्न हो जाओ। मुझे इस प्रकार त्यागना तुम्हें उचित नहीं।

सीता—स्वामी ! यह विपरीत ही है।

वासंती—महाराज ! शांति हूजिए। महान् भ्रम को रोकिए। मेरी प्रिय सखी सीता यहाँ कहाँ ?

राम—सचमुच वह नहीं है; नहीं तो तुम भी उसे क्यों न देख सकतीं ? यह स्वप्न ही है, पर मैं सोया हुआ नहीं हूँ। राम को नींद कहाँ ? यह वही भ्रम है, जो अनेक बार कल्पना से बना है और जो बारंबार मुझे पीड़ा देता है।

सीता—मुझे कठोर ने ही स्वामी को छला है।

राम—वासंती ! राम का मिलना मित्रों को दुःख का ही कारण है। कितनी देर तक तुम्हें रुलाऊँ ? लो, मुझे जाने की आज्ञा दो।

सीता ने उद्वेग से तमसा के गले लगाकर कहा—भगवती तमसा ! क्या स्वामी जा रहे हैं ?

अब सीता मूर्च्छित हो गई !

तमसा—बेटी ! धीरज धरो । हम भी, चिरंजीव कुश और लव की वर्षगाँठ के मंगल-कार्य के लिए भागीरथी के चरणों के समीप जा रही हैं ।

सीता—भगवती ! कृपा करो, क्षण भर मैं इन दुर्लभ स्वामी को देख लूँ ।

राम—और अब अश्वमेध के लिए मेरी सहधर्मिणी....

सीता ने काँपते हुए कहा—स्वामी ! वह कौन ?

राम—सीता की स्वर्ण-प्रतिमा है ।

यह सुनकर सीता ने लंबी साँस लेकर, आँखों में आँसू भर के, कहा—अब आप यथार्थ में मेरे स्वामी हैं । मेरे परित्याग की लज्जा का बाण आपने निकाल दिया है ।

राम—वहीं मैं उसे देखकर डबडवाई आँखों को ठंडा करूँगा ।

सीता ने इस समय कहा—वह धन्य है जो स्वामी से इतना मान पाती है; और जो स्वामी का मनोरंजन करती हुई उनकी आशा का कारण बनी है ।

यह सुनकर तमसा ने सीता को गले लगाकर मुस्कराहट और स्नेह से कहा—अरी बेटी ! इस प्रकार अपनी स्तुति आप ही कर रही हो ।

सीता ने लज्जित होकर सिर झुका लिया । तमसा उन्हें अपने साथ लेकर चलने लगी । राम के चरण-कमलों में प्रणाम करने सीता मूर्च्छित हो गई । तमसा ने उन्हें सचेत किया ।

राम विमान-राज पर चढ़कर विदा हुए ।

—* ४ *—

एक दिन अनेक अतिथियों की विशिष्ट सत्कार की सामग्री से भगवान् वाल्मीकि का आश्रम रमणीय हो रहा था। इन गुरुजनों के आने से शिष्यों को छुट्टी मिल गई। ऋष्यशृंग ऋषि के आश्रम से, अरुंधती के साथ महाराज दशरथ की स्त्रियों को लिये हुए, भगवान् वशिष्ठ वहाँ पधारे थे। उनके आने से पहले राजर्षि जनक भी वहाँ आ चुके थे। सीता देवी की वैसी विपत्ति को सुनकर राजर्षि जनक वानप्रस्थी हो गये थे। इधर कुछ वर्षों से वे चंद्र-द्वीप के तपोवन में तपस्या कर रहे थे। अब वे अपने पुराने मित्र वाल्मीकि को देखने आये थे।

भगवान् वशिष्ठ ने अरुंधती द्वारा कहलवाया कि महारानी कौशल्या स्वयं जाकर जनक से मिलें। वेद-पारंगत राजर्षि जनक इस समय वाल्मीकि और वशिष्ठ से मिलकर, आश्रम के बाहर, पेड़ के नीचे बैठे थे। वे सीता की ही चिंता कर रहे थे—हाय ! माता ! देवयज्ञ से उत्पन्न सीता ! तेरी भाग्य-लिपि का ऐसा परिणाम है जिससे लज्जा के कारण इच्छानुसार रो भी नहीं सकता।

फिर गृष्टि कंचुकी भगवती अरुंधती और कौशल्या को जनक के पास पहुँचाने गया। कौशल्या को देखकर जनक कहने लगे—हा ! महाराज दशरथ की धर्मपत्नी कौशल्या दुःख से कैसी हो रही हैं ! कौन विश्वास करेगा कि ये वही हैं ?

परंतु कौशल्या को देखकर शीघ्र ही एक और विचार उठा। कहने लगे—यह दशा-परिवर्तन का दूसरा पाप है। जो व्यक्ति मुझे पहले मूर्त्तिमय महोत्सव-सा दीख पड़ा था उसी का दर्शन, क्षत पर चार के समान, मुझे असह्य हो गया है।

उधर जनक को देखकर कौशल्या का दुःख उमड़ आया। वे

कहने लगीं—ऐसे समय में मिथिलाधीश को देखकर एक साथ ही सब दुःख प्रकट हो गए हैं। मैं तो निराधार हृदय को स्वस्थ रखने में असमर्थ हूँ। प्रिय सीता के इस प्रकार पीड़ित की जाने पर उस राजर्षि को कैसे मुँह दिखाऊँ ?

प्रणाम आदि के अनंतर जनक ने कंचुकी गृष्टि से पूछा—
प्रजापालक की माता के घर में तो कुशल है ?

गृष्टि ने मन-ही-मन कहा कि हमें सब प्रकार से, अति निदुरता से, उलाहना दिया गया है। फिर जनक से कहा—राजर्षि ! चिरकाल से राम के मुखचंद्र को न देख पाने के कारण शोक-संतप्त महारानी को दुःखित करना आपको उचित नहीं। राम पर भी कोई दैवी कोप था, इसी से सब ओर घृणित अपवाद फैलानेवाले जुद्ध प्रजाजन अग्नि-शुद्धि को स्वीकार नहीं करते थे। तभी तो यह दारुण कर्म करना पड़ा।

जनक ने यह सुनकर क्रोध से कहा—आह ! हमारी संतान का परिशोधन आग करे ? शोक है ! राम द्वारा तिरस्कृत होने पर भी इस प्रकार कह रहे मनुष्य से हम फिर तिरस्कृत हुए हैं।

अरुंधती ने साँस लेकर कहा—यह ठीक है। बेटी सीता के लिए 'आग' शब्द सर्वथा व्यर्थ है, 'सीता' कहना ही पर्याप्त है। वह तीनों लोकों के लिए पूजनीय है।

इस दुःख की स्मृति से व्याकुल होकर कौशल्या कहने लगीं—
अहो ! मेरी पीड़ा फिर प्रकट होती है।

अब कौशल्या मूर्च्छित हो गईं। यह देखकर जनक अपने उलाहना देनेवाले वचनों से, लज्जित हुए। उन्हें तुरंत प्रिय मित्र दशरथ की मित्रता ने दवा लिया। उन्होंने शीघ्र ही अपने कमंडलु से जल के छींटे दिये। कौशल्या सचेत होते ही जानकी की चिंता में विलाप करती हुई कहने लगीं—पुत्री जानकी ! कहाँ हो ?

बेटी ! मेरे पास आओ। मेरी गोदी को सुशोभित करो। महारज सदा यही कहा करते थे कि यह रघुकुल के राजाओं के लिए पतोहू है, हमारे लिए तो जनक की पुत्री ही है। पुत्री जानकी ! क्या करूँ ? वज्रलेप के बने बंधन से स्थिर मेरा पापी जीवन मुझ अभगिन को नहीं छोड़ता।

अरुंधती ने धीरज देते हुए कहा—राजपुत्री ! समय-समय पर आँसुओं को रोकना भी चाहिए। क्या तुम्हें उस बात का स्मरण नहीं है जिसे तुम्हारे कुलगुरु ने ऋष्यशृंग के आश्रम में कहा था ? उन्होंने कहा था न कि है तो यह अनर्थ ही, किंतु इसका परिणाम अच्छा होगा।

परंतु कौशल्या की सब आशाएँ नष्ट हो चुकी थीं; वे कहने लगीं—भगवती ! मेरा मनोरथ मिट गया।

अरुंधती—राजपुत्री ! क्या तुम यह समझती हो कि ये वाक्य मिथ्या थे ? ऐसा मत समझो। वही होगा।

इस समय एक ओर से कोलाहल हुआ। कुछ बालक खेलते-कूदते इधर आ पहुँचे। कौशल्या को एक बालक, आकृति में, राम के सदृश दीख पड़ा। अरुंधती ने मन में सोचा कि, भागीरथी के कथनानुसार, यह इसका कर्णामृत है। इस बालक को देखकर गृष्टि कंचुकी ने कहा—अवश्य यह कोई क्षत्रिय बालक है। जनक का भी यही विचार हुआ।

कुमार की पीठ पर दो तरकस थे, वह मृगछाला धारण किये हुए था। उसकी छाती पर भस्म का पवित्र चिह्न था। मौर्वी मेखला बंधी थी और वस्त्र मँजीठ में रँगे हुए थे। उसके हाथ में धनुष और अक्षसूत्र तथा माला से लिपटा पीपल का डंडा था।

राजर्षि जनक को इसके विषय में जानने की उत्कंठा हुई। उसे बुलाने के लिए राजर्षि ने गृष्टि को भेजा।

वह कुमार, गृष्टि के साथ, आ गया। उसने सामने आकर कहा—यह मैं, लव, प्रणाम करता हूँ।

सबने उसे आशीर्वाद दिया। पहले अरुंधती ने उसे गोद में बैठाकर अपना मनोरथ पूरा किया। फिर कौशल्या ने उसे गोदी में बैठाया और कहने लगी—अहो ! यह बालक सब प्रकार से राम के केवल शरीर से ही नहीं, स्वर से भी राम के सदृश है। इसका शरीर-स्पर्श भी वैसा ही है। फिर उसकी ठुड़ी उठाकर कौशल्या जनक से, आँखों में आँसू भरकर, कहने लगी—राजर्षि ! ध्यान देने पर क्या आप नहीं देखते कि इसका मुख सीता के मुख-चंद्र जैसा है ?

जनक ने भी इस सम्मति का अनुमोदन किया। वे कहने लगे—इस कुमार में सीता और राम दोनों का पूरा प्रतिबिंब दीख पड़ता है। आकृति, कांति, वाणी, विनय और भाव-भंगी—सब कुछ वैसा ही है। हाँ दैव ! मेरा चंचल मन टेढ़े मार्गों पर क्यों भाग रहा है ?

अब कौशल्या ने लव से पूछा—पुत्र ! तुम्हारी माता है ? तुम्हें पिता का स्मरण है ?

लव—नहीं।

कौशल्या—तो तू किसका पुत्र है ?

लव—भगवान् वाल्मीकि का।

कौशल्या—पुत्र ! और कुछ कहने योग्य हो तो कहो।

लव—मैं और कुछ नहीं जानता।

इस समय एक ओर से शब्द हुआ—अरे सैनिको ! कुमार चंद्रकेतु आज्ञा देते हैं कि कोई आश्रम की सीमा के भीतर न जावे।

चंद्रकेतु का नाम सुनकर अरुंधती और कौशल्या प्रसन्न हुईं।

लव—यह चंद्रकेतु कौन है ?

जनक—दशरथ के पुत्र राम-लक्ष्मण को जानते हो ?

लव—वही न, जो रामायण के पात्र हैं !

जनक ने कहा—हाँ, तो क्या यह नहीं जानते कि लक्ष्मण का पुत्र चंद्रकेतु है ?

लव—चंद्रकेतु तो उर्मिला का पुत्र और मिथिला के राजर्षि का दोहता है ।

जनक ने रामायण में इसकी जानकारी देखकर कहा—यदि तुम रामायण की कथा ऐसे परिचित हो तो बताओ कि राजा दशरथ के पुत्रों को संतान के क्या नाम हैं और वे किस-किस स्त्री से उत्पन्न हैं ।

लव—यह कथा-भाग हमने या और किसी ने पहले नहीं सुना ।

जनक—तो कवि ने क्या रचा ही नहीं ?

लव—रचा तो है परंतु प्रकट नहीं किया । उन्होंने इसका एक सरस भाग, अभिनय के लिए, रचा है और उस हस्तलिखित ग्रंथ को महर्षि ने नाट्यकार भरत मुनि के पास भेजा है कि वे अप्सराओं द्वारा प्रयोग करें । कुछ शिष्यों के हाथ वह पुस्तक भरत मुनि के आश्रम को भेजी गई है । उनके साथ, विपत्ति के रोकने के लिए, धनुष-बाण हाथ में लिये मेरा भाई भेजा गया है ।

कौशल्या—पुत्र ! तुम्हारे भाई भी है ?

लव—हाँ । उनका नाम कुश है ।

कौशल्या—वह बड़ा होगा ?

लव—हाँ, प्रसव-क्रम से बड़े कहे जाते हैं । हम दोनों यमज हैं ।

जनक—कथा का अंतिम भाग क्या है ?

लव—प्रजा के मिथ्या अपवाद के कारण उद्विग्न हुए राजा से निर्वासित, देवयज्ञ से उत्पन्न, पूर्ण गर्भवती, अकेली सीतादेवी को वन में छोड़कर लक्ष्मण लौट गये ।

यह सुनकर कौशल्या और जनक शोक के कारण कुछ कहने लगे ।

लव ने अरुंधती से पूछा—ये दोनों कौन हैं ?

अरुंधती—ये कौशल्या हैं, ये जनक हैं ।

लव ने आदर, खेद और कुतूहल के साथ उन्हें देखा ।

इस समय कुछ भयभीत बालक वहाँ आ गये । वे लव से बोले—“आश्रम में कोई घोड़ा आया है । आओ चलो ।” इतना कहकर वे लव की मृगछाला और उसका हाथ खींचने लगे । अरुंधती और जनक ने भी उसे जाने की आज्ञा दे दी ।

लव ने घोड़े को देखकर कहा—यह यज्ञ का घोड़ा है । इसके कवच-धारी रक्षक सौ, दंडधारी रक्षक सौ और तूणीर-धारी रक्षक भी इतने ही हैं । विश्वास न हो, तो इन्हीं लोगों से पूछ लो ।

बालकों ने चिल्लाकर कहा—अरे रक्षकों से घिरा हुआ यह घोड़ा क्यों घूम रहा है ?

उत्तर मिला कि यह घोड़ा अथवा वीर-घोषणा की पताका सात लोकों के अद्वितीय वीर दशग्रीव-कुल के शत्रु राम की है ।

लव को ये शब्द उत्तेजक से प्रतीत हुए । वे कहने लगे—तो क्या पृथ्वी क्षत्रिय-हीन है जो ऐसा कहते हो ?

इसके उत्तर में शब्द हुआ—महाराज का विरोधी क्षत्रिय कहाँ है ?

लव ने क्रोध के साथ उत्तर दिया—भले ही वे तुम्हारे महाराज हों । यहाँ भय किस बात का है ? मैं तुम्हारी पताका लिए जाता हूँ ।

अब लव ने बालकों से कहा कि घोड़े को ढेलों से मारकर तपोवन में ले जाओ। वहाँ इसे मृगों के बीच विचरने दो।

इस समय क्रोध और दर्प से भरे एक सैनिक ने आकर उन्हें चपलता पर डाँटा। शेष शिष्यों ने कहा भी कि “इस घोड़े से हमें क्या प्रयोजन है? आओ, लौट चलें।” परंतु लव उत्तेजित हो गये थे। सैनिकों के शस्त्र चमकते देखकर उन्होंने भी धनुष खींच लिया।

—❀ ५ ❀—

लव ने घोड़े के रक्षकों को बाणों की घोर वर्षा से व्याकुल कर दिया। युद्ध का समाचार पाकर कुमार चंद्रकेतु भी सुमंत्र द्वारा चलाये गये रथ पर धनुष हाथ में लिए विस्मय, हर्ष और संभ्रम से भरे वहाँ आ पहुँचे। लव की बाण-वर्षा से विस्मित होकर वे कहने लगे—यह वीर बालक कौन है? रघुवंश के किसी अप्रसिद्ध कुमार के समान यह तपस्वी कुमार अकेला ही चारों ओर सेना पर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करके मुझे विस्मित कर रहा है।

अकेले उस वीर की ओर सब सैनिकों को बढ़ते देखकर कुमार चंद्रकेतु लज्जित हुए। सुमंत्र ने भी कहा—वत्स! ये सब सैनिक मिलकर भी उसका कुछ नहीं कर सकते।

अपने आश्रित जनों का संहार देखकर कुमार चंद्रकेतु शीघ्र ही उधर चले गये। परंतु उनके पहुँचते-पहुँचते सब ओर से सैनिक-गण पीछे हट रहे थे। कुमार ने सुमंत्र से पूछा कि दूतों ने इसका क्या नाम बताया है। सुमंत्र ने कहा—लव नाम है।

चंद्रकेतु ने अब लव को ललकारकर कहा—अरे महाबाहु लव! इन सैनिकों से तुम्हें क्या काम? मैं आ गया, मेरी ओर आओ, तेज से तेज को शांत करो।

लव दप से इधर आकर कहने लगे—धन्य ! राजकुमार ! तुम सचमुच ही इक्ष्वाकु-वंशी हो, अतः मैं तुम्हारे पास आ गया हूँ ।

इधर लव द्वारा पराजित सैनिक फिर लौटकर युद्ध की इच्छा से पास आ गये ।

लव—अच्छा, जृम्भकास्त्र से सेना को स्तम्भित करता हूँ । सेना को जृम्भकास्त्र से मोहित देखकर सुमंत्र और चंद्रकेतु दोनों विस्मित हो गये ।

सुमंत्र—इसे जृम्भकास्त्र कहाँ से मिले ?

चंद्रकेतु—भगवान् वाल्मीकि से मिले होंगे । कृशाश्व के अतिरिक्त ऐसे दूसरे लोग भी स्वयं मंत्र-द्रष्टा हो सकते हैं, जिन्हें अधिक बढ़ रहे सत्त्वगुण का प्रकाश मिलता है ।

सैनिकों से अवकाश पाकर लव फिर चंद्रकेतु की ओर आये । दोनों में, दर्शन-मात्र से, परस्पर अनुराग-सा हो गया ।

लव को देखकर सुमंत्र के आँसू आ गये । वह कहने लगा—हृदय ! क्यों मिथ्या कल्पना करता है ? मनोरथ के बीज को तो दैव ने पहले ही नष्ट कर दिया । जो लता पहले ही कट गई उसमें फूल कहाँ से लगेंगे ?

लव को पैदल देखकर चंद्रकेतु रथ से उतरने लगे । उन्होंने कहा—शास्त्रकार कहते हैं कि 'रथी पैदलों से युद्ध नहीं करते' ।

उन्हें रथ से उतरे देखकर लव ने कहा—कुमार ! आप रथ पर ही शोभित रहें । बस, अधिक आदर को छोड़िये ।

चंद्रकेतु—तो आप भी दूसरे रथ को भूषित करें ।

लव—अपनी वस्तु का उपयोग करने में आप आगा-पीछा क्यों करते हैं ? हम तो वनवासी हैं, रथ पर चलने का हमें अभ्यास ही नहीं ।

इस पर सुमंत्र ने कहा—वत्स ! दर्प और सौजन्य के उचित आचरण करना तुम जानते हो। यदि राजा राम तुम्हें देख लें तो उनका हृदय स्नेह से पिघल जाय।

लव—श्रीमान् ! वह राजर्षि सुजन सुना जाता है। हम भी ऐसे यज्ञ के विघ्नकारी नहीं हैं। इस लोक में कौन उस राजा का सम्मान नहीं करता ? क्या करें, घोड़े के रक्तकों ने उद्धत वचनों से सब क्षत्रियों पर भारी आक्षेप कर मेरे मन को विकृत कर दिया।

चंद्रकेतु ने मुस्कराकर कहा—क्या आपको तात के प्रताप का उत्कर्ष असह्य है ?

लव—असह्य हो या न हो। मैं पूछता हूँ कि क्या क्षत्रियों के शौर्य आदि धर्म एक ही स्थान में संरक्षित हैं !

सुमंत्र—अवश्य तुम इक्ष्वाकु-वंशी महाराज राम को नहीं जानते। तुमने सैनिकों का संहार करके सचमुच पराक्रम दिखाया है; परंतु जामदग्न्य के विजेता राम को ऐसा कहना उचित नहीं।

लव ने हंसकर कहा—महाशय ! राजा को 'जामदग्न्य का विजेता' बताने में उसकी क्या बढाई है ? ब्राह्मणों का वीर्य वाणी में है, क्षत्रियों का भुजाओं में। शस्त्रधारी "ब्राह्मण जामदग्न्य" पर विजय पा कर राजा ने कौन-सा बड़ा काम किया ? रघुपति के चरित और महिमा को कौन नहीं जानता ? वे गुरुजन हैं, उनके चरित विचारणीय नहीं। क्या कहा जाय ? सुंद की स्त्री का नाश करने पर भी वे लोक में यशस्वी और महान् माने जाते हैं। खर के साथ युद्ध में वे, बिना मुख मोड़े ही, तीन पद पीछे हट गये थे, और बालि के वध में उन्होंने जो छल किया था वह भी सबको विदित है।

अब तो चंद्रकेतु को क्रोध आ गया। वे कहने लगे—आह !

तात की निंदा द्वारा मर्यादा-भंग करनेवाले ! तुम बहुत चपलता कर रहे हो ।

लव—अरे ! मुझ पर भौंहें तान रहे हो ?

दोनों प्रतिद्वंद्वी कुमार युद्ध के योग्य स्थान पर खड़े हो गये ।

—❀ ६ ❀—

लव और चंद्रकेतु का युद्ध आरंभ हो गया । इन सूर्य-वंशी कुमारों के पराक्रम देखकर विद्याधर मोहित हो गये । कुमार चंद्रकेतु ने आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया । उससे आकाश बिजली के समान पीला हो गया । आग की लपटें गिरने लगीं । लव ने तब वारुणास्त्र का प्रयोग किया । वर्षा की निरंतर गिरती हुई सहस्रों धाराओं से आग्नेयास्त्र शांत हो गया । चंद्रकेतु ने वायव्यास्त्र चला दिया । बादल नष्ट हो गये ।

इसी समय राम शंवूक का वध करके लौट रहे थे । उन्होंने शीघ्रता से हाथ ऊँचा करके, पटके का छोर हिलाकर, दूर से ही मधुर वचनों से युद्ध रोकवा दिया । उनका शब्द सुनकर चंद्रकेतु और लव ने युद्ध बंद कर दिया ।

चंद्रकेतु ने प्रणाम किया और राम ने उन्हें स्नेह से गले लगाकर कुशल पूछी ।

चंद्रकेतु—अद्भुत पराक्रमवाले प्रियदर्शन लव के मिलने से कुशल है । मैं निवेदन करता हूँ कि आप इस श्रेष्ठ महावीर पर मुझ जैसी, अथवा और भी अधिक कृपा करें ।

लव को देखकर राम कहने लगे—सौभाग्य से यह वत्स का अति गंभीर तथा शुभ आकृतिवाला मित्र ऐसा है मानों लोकों की रक्षा के लिए अस्त्रवेद ने शरीर धारण किया हो; वेद-रक्षा के लिए क्षात्र-धर्म ने शरीर का आश्रय लिया हो; शक्तियों का जैसे

समुदाय हो, अथवा गुणों का संचय हो; या जगत् की पवित्र वस्तुओं के निर्माण की राशि प्रकट होकर उपस्थित हुई हो।

उधर लव ने भी राम को देखकर कहा—अहो ! इस महापुरुष का प्रभाव तथा आकृति पवित्र है। उन्होंने चंद्रकेतु से पूछा—ये कौन हैं ?

चंद्रकेतु—ये बड़े तात हैं।

यह सुनकर लव ने सहर्ष कहा—क्या रघुनाथ ? सौभाग्य से आज शुभ दिन है जो मुझे इनके दर्शन हुए। फिर विनय और कौतुक से राम को देखकर कहा—तात ! वाल्मीकि का शिष्य लव आपको प्रणाम करता है।

राम ने लव को स्नेह से गले लगा लिया।

राम के ऐसे व्यवहार ले लज्जित होकर लव कहने लगे—तात ! मेरी मूर्खता को क्षमा कीजिए।

राम—इसने क्या अपराध किया है ?

चंद्रकेतु—घोड़े के रत्नों से आपके प्रताप की घोषणा सुनकर पराक्रम प्रकट किया है।

राम—यह तो क्षत्रियों का अलंकार है। दूसरों का तेज न सहन करना तो तेजस्वियों का स्वभाव ही है।

चंद्रकेतु ने फिर कहा—तात ! असहिष्णुता भी इसी वीर को शोभा देती है। देखिए, इस प्रिय मित्र के प्रयुक्त किये जृम्भास्त्र से हमारी सेना निश्चल और निःस्तब्ध पड़ी है।

राम ने लव को अस्त्र के उपसंहार की आज्ञा दी। लव ने ध्यान से अस्त्र शांत कर दिया।

राम—वत्स ! ये प्रयोग और उपसंहार के रहस्य-युक्त अस्त्र गुरु-परंपरा में परिमित रहते हैं। कुमार को इनका ज्ञान कहाँ से हुआ ?

लव—हमें ये अस्त्र स्वयं प्राप्त हुए हैं।

राम ने सोचा कि सब कुछ संभव है। यह किसी महान् पुण्य की ही महिमा होगी। फिर वे लव से पूछने लगे—तुमने 'हम' क्यों कहा ?

लव—हम दो भाई हैं।

राम—तुम्हारा दूसरा भाई कहाँ है ?

इस समय एक ओर से किसी के आने का शब्द सुनाई दिया। चिरंजीव लव के राजा की सेना के साथ युद्ध का समाचार पाकर कुश इधर ही आ पहुँचे। उसकी आकृति अपने समान देखकर राम ने पूछा—वह कौन है ?

लव ने बताया कि वे मेरे बड़े भाई कुश हैं। भरत मुनि के आश्रम से लौटे हैं।

राम ने उन्हें बुलाने को कहा। परंतु वे स्वयं ही आगये।

लव ने भाई को प्रणाम किया। कुश ने पूछा—चिरंजीव ! यह युद्ध कैसा है ?

लव—कुछ नहीं; आप क्रोध न करें। ये महाराज राम हैं। हमसे स्नेह करते हैं और आपसे मिलने को उत्कंठित हैं।

कुश—क्या वही रामायण के नायक, वेद के रक्षक राम ?

कुश ने पास आकर राजा को प्रणाम किया। राम ने आशीर्वाद देकर उसे गले लगा लिया। उनके शरीर में अमृत-सिंचन का संचार-सा हुआ।

इस समय राम के मस्तक पर धूप पड़ रही थी। सब लोग शालवृक्ष की छाया में बैठ गये। राम ने इन कुमारों को देखकर सोचा कि ये रघुकुल-कुमारों के सदृश हैं। इनकी आकृति और इनका स्वर सब कुछ मेरे सदृश है। ध्यान से देखा तो उन्हें सीता का भल्लक भी देख पड़ी। वे सोचने लगे कि यह वही वाल्मीकि

के निवास का वन है जहाँ सीता को त्यागा था और इन कुमारों की आकृति भी सीता से मिलती-जुलती है। अस्त्र जो इन्हें स्वयं प्राप्त हुए हैं सो चित्र-दर्शन के समय अस्त्रों के लिए मेरी आज्ञा के प्रभाव से ऐसा हुआ है। मैंने पहले आचार्यों के विषय में भी नहीं सुना कि ये अस्त्र गुरु के उपदेश के बिना किसी को प्राप्त हुए हों। हृदय का यह असीम सुख मेरे प्रफुल्लित आत्मा को विश्वास देता है। मैंने यह भले प्रकार जान लिया था कि सीता का गर्भ दो भागों में था।

इन विचारों से राम की आँखों में आँसू आ गये। वे तापसी-कुमारों से कहने लगे—सुना है कि सूर्यवंश की प्रशस्ति भगवान् वाल्मीकि की रामायण सरस्वती-देवी का प्रवाह है। मैं उसका अंश सुनना चाहता हूँ।

कुश ने रामायण-गान आरंभ ही किया था कि सीता की स्मृति से राम का दुःख बढ़ गया। इतने में एक ओर से सुनाई पड़ा कि इस प्रकार स्वल्प शोभायुक्त (मलिन) रघुनाथ को सहसा देखकर, पहले मूर्च्छित हुए जनक के सचेत होने पर माताएँ मूर्च्छित हो गई हैं।

सब लोग व्याकुल होकर उधर चले गये।

—* ७ *—

भगवान् वाल्मीकि ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, पौर-जानपद की प्रजा, सुरासुर तथा चराचर सृष्टि को अपने प्रभाव से बुलाया। उन्होंने अप्सराओं को अपने नाटक का अभिनय करने के लिए निमंत्रण दिया था। गंगा-तट पर रंगभूमि बनी थी। सब दर्शक-गण यथोचित स्थानों पर बैठ गये।

इसके अनंतर नाटक के सूत्रधार ने आकर निवेदन किया—सुनो ! यथार्थवादी भगवान् वाल्मीकि चराचर जगत् से कहते हैं

कि हमने जो आर्ष दृष्टि से देखकर, करुण तथा अद्भुत रस से युक्त, यह पवित्र रचना की है उसे ध्यान देकर सुनो ।

इसी समय एक ओर से शब्द हुआ—“हा आर्यपुत्र ! हा कुमार लक्ष्मण ! मैं अकेली हूँ, निःसहाय हूँ, मेरा प्रसव-काल समीप है, इस घोर जंगल में मुझ निराश को हिंसक जीव खाना चाहते हैं । हा ! मैं दुर्भागिन अपने आपको गंगा में फेंकती हूँ ।”

सूत्रधार ने ये शब्द सुनकर बताया कि पृथ्वी की पुत्री, राजा की रानी, महावन में त्यागी हुई, प्रसव का समय आने पर गंगाजी में कूदती हैं ।—इतना कहकर सूत्रधार चला गया ।

अब सीता को आश्रय दिये हुए पृथ्वी और भागीरथी ने, गोद में एक-एक बच्चा लिये हुए, प्रवेश किया । दोनों देवियों ने सीता को धीरज देते हुए कहा—कल्याणी ! भाग्य से तेरी वृद्धि हुई है । जल के बीच तेरे दो रघुवंश-कुमार उत्पन्न हुए हैं ।

सचेत होकर सीता ने पूछा—देवी ! आप और ये कौन हैं ?

पृथ्वी—ये तुम्हारे स्वशुर-कुल की देवी भागीरथी हैं ।

सीता ने भागीरथी को प्रणाम किया । “सच्चरित्र के उचित कल्याण धन को प्राप्त हो” ऐसा भागीरथी ने आशीर्वाद देकर कहा—ये तुम्हारी माता पृथ्वी देवी हैं ।

सीता ने व्याकुल होकर कहा—हाय माता ! तुम्हें मुझे ऐसी दुर्दशा में देखना था ! पृथ्वी देवी उन्हें आलिंगन कर पीड़ा से मूर्च्छित हो गईं । भागीरथी ने दोनों को धीरज दिया । सचेत होकर पृथ्वी देवी ने कहा—सीता की माता होकर मैं कैसे धीरज धरूँ ? एक तो चिरकाल तक राक्षसों के बीच रहकर इसने दुःख पाया; दूसरे इसको इस समय दुःसह कष्ट है ।

भागीरथी—जीव के निकट फलवाले भाग्य के द्वार बंद करने में कौन समर्थ है ?

पृथ्वी—भागीरथी ! रामचंद्र को क्या यह उचित था कि बाल्यकाल में, विवाह में, ग्रहण किये हुए हाथ का कुछ विचार न करें ? उन्होंने न तो मेरा कुछ ध्यान किया, न जनक का, न अग्नि का और न इसकी गर्भावस्था का ही ।

भागीरथी—भगवती वसुंधरा ! तुम संसार की शरीर रूप हो; बिना जाने जामाता पर क्यों कुपित हो ? लोक में घोर अपयश फैल रहा था; लंका द्वीप में जो अग्नि-शुद्धि हुई थी उस पर प्रजा कैसे विश्वास करे ? प्रजा-रंजन का कार्य इत्वाकु-वंशियों की पैतृक संपत्ति है । उसी के अनुरोध से राम को यह कठोर कर्त्तव्य करना पड़ा है ।

पृथ्वी—देवी ! मैं तुम्हारे ऊपर सदा प्रसन्न हूँ किंतु पुत्री का शोकवेग मुझे दुःसह है । यह बात नहीं कि मैं सीता के लिए राम का स्नेह न जानती होऊँ ।

सीता ने रोते हुए हाथ जोड़कर कहा—माता ! मुझे अपने अंगों में समा लो ।

भागीरथी—शांत होओ; तुम सहस्र वर्षों तक जीवित रहो ।

पृथ्वी—बेटी ! इन दो पुत्रों को देखो ।

सीता—मैं तो अनाथ हूँ, इनसे क्या ?

यह सब अभिनय देखकर राम अति व्याकुल हो रहे थे । अब वे कहने लगे—हृदय ! तू वज्रमय है ।

भागीरथी—पुत्री ! सनाथ होकर भी तुम अनाथ कैसे ?

इस समय एक ओर से कोलाहल हुआ । सारा आकाश जगमगा उठा । शस्त्रों के साथ जृम्भक अस्त्र प्रकट हुए और फिर शब्द हुआ—सीतादेवी ! तुमको नमस्कार हो । चित्र-प्रदर्शन के समय जैसा रघुनंदन ने कहा था उसके अनुसार हम तुम्हारे पुत्रों के आश्रित हुए हैं ।

पृथ्वी और भागीरथी—बेटी ! प्रसन्न होओ । तुम्हारे पुत्र अब राम के तुल्य हो गए ।

सीता—देवियो ! इनके क्षत्रियोचित कर्म कौन करेगा ?

भागीरथी—बेटी ! तुम्हें इसकी चिंता क्यों है ? दूध छोड़ देने पर मैं इनको भगवान् वाल्मीकि को सौंप दूँगी । वही इनका जात-कर्म करेंगे । जनक-वंश और रघु-वंश दोनों के गुरु जैसे वशिष्ठ और अंगिरा हैं वैसे ही वाल्मीकि हैं ।

राम—देवी ने ठीक सोचा ।

लक्ष्मण—भाई ! मैं सत्य कहता हूँ कि इन बातों से वे कुमार कुश और लव जान पड़ते हैं ।

राम—वत्स ! इसी कारण मेरा हृदय प्रसन्न है ।

अब पृथ्वी ने सीता से कहा—आओ, पुत्री ! रसातल को पवित्र करो ।

सीता ने भी कहा—माता ! मुझे तुरंत अपनी गोदी में समा लो । मुझमें शक्ति नहीं कि जीव-लोक द्वारा किये गए परिवर्तनों को सह सकूँ ।

परंतु पृथ्वी देवी ने कहा—जब तक तुम दूध पिलाती हो, तब तक इन बच्चों का पालन करो । इसके पश्चात् जो इच्छा हो, वही करना । इसके उपरांत सीता, देवियों के साथ, चली गईं ।

अब “हा सीता ! तू पृथ्वी में समा गई ।” इतना कहकर राम, सीता को पुकारते हुए, मूर्च्छित हो गए ।

इस समय गंगा-जल में, मंथन के समान, हलचल हुई । देवताओं से अंतरिक्ष छा गया । गंगा और पृथ्वी के साथ सीता जल में से निकलीं । दोनों देवियों ने सीता को अरुंधती की रक्षा में सौंप दिया ।

सीता को साथ लेकर अरुंधती सबके सामने आईं । अरुंधती

ने सीता पे कहा कि प्रिय हस्त-स्पर्श से राम को सचेत कर दो । सीता ने राम को स्पर्श करते हुए कहा—स्वामी ! उठिए ।

सीता के स्पर्श से राम स्वस्थ हो गये । वे सीता को देखकर, हर्ष और विस्मय से, कहने लगे—अरे, यह क्या महारानी ! अरुंधती, और ऋष्यशृंग तथा शांता के साथ सब सुप्रसन्न गुरुजन !

अरुंधती—वत्स ! ये गंगा जी भगीरथ-गृह की देवी हैं ।

भागीरथी—जगत्पति राम ! चित्र-दर्शन के समय, मुझसे को हुई अपनी प्रार्थना का स्मरण करो । तुमने कहा था—माता ! सीता के कल्याण के लिए सावधान रहना ।

अब अरुंधती ने कहा—ये तुम्हारी सास पृथ्वी देवी हैं ।

पृथ्वी ने कहा कि मेरी पुत्री को त्यागने के समय तुमने कहा था—देवी वसुंधरा ! प्रशंसनीय पुत्री जानकी की रक्षा करो । सो मैंने तुम्हारा वचन पूर्ण कर दिया ।

“तो क्या आप देवियों ने मुझ अपराधी पर भी कृपा की ?” कहकर राम ने उन्हें प्रणाम किया ।

अरुंधती ने अब पुरवासियों से, सीता को ग्रहण करने के संबंध में, सम्मति माँगी । इस समय सब प्राणियों ने सीता को प्रणाम किया । लोकपालों और सप्तर्षियों ने पुष्प-वर्षा की ।

अरुंधती ने अब राम से कहा—राम ! यज्ञ में स्वर्ण की मूर्ति के स्थान पर तुम पुण्य-प्रकृति, धर्मचारिणी प्रिया को धर्मानुसार नियुक्त करो ।

राम ने यह आज्ञा शिरोधार्य की ।

लक्ष्मण ने सीता से कहा—महारानी ! यह निर्लज्ज लक्ष्मण प्रणाम करता है ।

सीता—वत्स ! इस प्रकार चिरकाल तक जिओ ।

वाल्मीकि ने इस समय कुश और लव को अर्पण करके कहा—कुमार कुश-लव ! ये रघुपति तुम्हारे पिता हैं, लक्ष्मण चाचा हैं, सीतादेवी माता हैं । ये राजर्षि जनक तुम्हारे नाना हैं ।

राम और सीता ने कुमारों को हृदय से लगा लिया । इसी समय मधुरेश्वर लवण का नाश कर शत्रुघ्न भी आ गये । प्रेम और हर्ष का समुद्र उमड़ उठा ।

राज दुलारी



मुद्रा-राक्षस

—* १ *

महापद्मनन्द और उसके पुत्रों के वध के अनंतर चंद्रगुप्त मौर्य को पाटलिपुत्र के सिंहासन पर बैठा देने पर भी चाणक्य का क्रोध शांत नहीं हुआ (वे जानता था कि अमात्य राक्षस को अपनी ओर मिलाये बिना नंद वंश का समूल नाश न होगा अथवा चंद्रगुप्त के राज्य की स्थिरता न होगी)। नंद-वंश के प्रति अमात्य राक्षस की दृढ़ भक्ति पर चाणक्य मुग्ध थे। उन्हें ज्ञात था कि जब तक नंद-वंश का कोई भी उत्तराधिकारी जीवित रहेगा तब तक राक्षस चंद्रगुप्त का मंत्री-पद ग्रहण नहीं करेगा। इस विचार से नंद-वंश का राजा सर्वार्थसिद्धि तपोवन में चले जाने पर भी, मार डाला गया। परंतु राक्षस ने अब मलयकेतु की सहायता लेकर चंद्रगुप्त पर आक्रमण करने का निश्चय किया। चाणक्य को इसका कुछ भय न था। वे तो अपनी कुटिल भेद-नीति द्वारा राक्षस को, परास्त करके, चंद्रगुप्त का प्रधान-मंत्री बनाना चाहते थे।

(इसीलिए चाणक्य चिंता कर रहे थे) वह सोच रहे थे कि हमने लोगों में यह अपवाद फैला दिया है कि (राक्षस ने हमारे अत्यंत उपकारी मित्र पर्वतक को विषकन्या द्वारा इस कारण मरवा डाला है कि वह चंद्रगुप्त या पर्वतक दोनों में से एक का नाश करके चाणक्य का अपकार करना चाहता था)। इसी पर लोगों को विश्वास कराने के लिए भागुरायण ने एकांत

चाणक्य का उद्योग
मौर्य पर
आश्रित
राक्षस को
हमारे
लिए
सर्वार्थसिद्धि
तपोवन
में चले जाने
पर भी,
मार डाला
गया।

चाणक्य
महान्त
हृति

चाणक्य
की अद्वितीय
कृतवीर्य
का फल
गमना

में भय उत्पन्न कराकर कि तेरे पिता को चाणक्य ने मरवा डाला है, पर्वतक के पुत्र मलयकेतु को भगा दिया है। यदि राक्षस की मंत्रणा और सहायता पाकर वह आक्रमण करेगा भी (तो कौशल से दवा दिया जायगा)। परंतु मैं इसे दबाकर पर्वतक के वध द्वारा उत्पन्न राक्षस की अपकीर्ति को मिटाना नहीं चाहता। मैंने स्वपक्ष तथा परपक्ष में अनुरक्त पुरुषों का समाचार जानने के लिए अनेक प्रकार के देश, वेष, भाषा और आचार आदि के जाननेवाले नाना-वेषधारी दूतों को नियुक्त कर दिया है। अमात्य राक्षस के जो मित्र कुसुमपुर में रहते हैं उनके कार्य और चेष्टायें निपुणता से ढूँढ़ ली जाती हैं। चंद्रगुप्त के साथ समृद्ध होने वाले भद्रभट आदि प्रधान पुरुषों को—स्त्री, मद्य और मृगया आदि में आसक्त बताकर—असंतोषी प्रसिद्ध करके (स्वकार्य के लिए) मैंने निकल दिया है। शत्रु द्वारा नियुक्त विष देनेवालों के प्रतिकार के लिए अप्रमादी, भक्ति में परीक्षित, विश्वासपात्र व्यक्तियों को राजा के निकट नियुक्त कर दिया है। और, मेरा सहपाठी इंदु शर्मा नामक ब्राह्मण ज्योतिषशास्त्र में अधिक निपुण है। उसे मैं नंद-वंश के वध की प्रतिज्ञा के अनंतर ही, जैन-संन्यासी के वेष में, कुसुमपुर लाया था और सब नंद-मंत्रियों के साथ मैंने उसकी मित्रता करा दी थी। विशेषकर राक्षस का उस पर विश्वास उत्पन्न हो गया है। इससे अब महान् कार्य की सिद्धि होगी। इस प्रकार मेरी ओर से कुछ न्यूनता नहीं है।

चाणक्य इस प्रकार चिंता कर रहे थे कि उनके घर एक गुप्तचर, यम का चित्र हाथ में लिये, आया। शिष्य के साथ हो रहे वार्त्तालाप से उसे, अपना कोई गुप्तचर जानकर, चाणक्य ने भीतर बुला लिया। चाणक्य ने तुरंत पहचान लिया कि यह निपुणक

वीर्यवान् को
अपनी अदम्य
नीति पर
विश्वास

नाम का दूत है। उससे कहने लगे—भद्र ! अपने कार्य के वृत्तांत का वर्णन करो। क्या प्रजा वृषल में अनुरक्त है ?

गुप्तचर—और क्या ? आपने प्रजा के विराग के कारणों को हटा दिया है। महाराज चंद्रगुप्त में प्रजा का दृढ़ अनुराग है। किंतु तब भी नगर में तीन पुरुष ऐसे हैं जो महाराज चंद्रगुप्त के वैभव को सहन नहीं करते। वे अमात्य राक्षस के पुराने स्नेही हैं।

चाणक्य ने क्रोध से कहा—यह कहो कि अपना जीवन सहन नहीं करते। भद्र ! क्या उनके नाम जानते हो ?

गुप्तचर—पहला तो आपके शत्रु-पक्ष का दृढ़ पक्षपाती क्षपणक है।

यह सुनकर चाणक्य ने प्रसन्न होकर मन-ही-मन कहा कि हमारे शत्रु-पक्ष में दृढ़ अनुरक्त क्षपणक !

गुप्तचर ने आगे कहा—उसका नाम जीवसिद्धि है। अमात्य राक्षस द्वारा प्रयुक्त विष-कन्या को यही पर्वतेश्वर-राज के यहाँ पहुँचा आया था।

चाणक्य ने मन-ही-मन कहा—जीवसिद्धि ! वह तो हमारा गुप्तचर है। फिर प्रकट रूप से पूछा—दूसरा कौन है ?

गुप्तचर—दूसरा अमात्य राक्षस का प्रिय मित्र कायस्थ शकटदास है।

चाणक्य ने मन में हँसकर कहा—उस पर मैंने मित्र के वहाने, सिद्धार्थक को नियुक्त कर दिया है। फिर प्रकट में कहा—हाँ, तीसरे का क्या नाम है ?

गुप्तचर—तीसरा भी राक्षस का, अपने हृदय के समान, पुष्प-पुर-निवासी प्रिय चंदनदास सेठ है जिसके घर में राक्षस अपने परिवार को छोड़कर स्वयं नगर से निकल गया है।

चाणक्य—यह कैसे जाना कि चंदनदास के घर में राक्षस अपने परिवार को छोड़ गया है ?

गुप्तचर ने एक अँगूठी दी। चाणक्य ने अँगूठी को देखकर ले लिया और उसमें राक्षस का नाम पढ़ा। उन्होंने हर्ष से मन-ही-मन कहा—तो कहना चाहिए कि अब राक्षस ही हमारी अँगुली का प्रेमी हो गया है। चाणक्य ने अब गुप्तचर से पूछा—भद्र ! यह अँगूठी किस प्रकार मिली ?

गुप्तचर—यमपट को दिखाता हुआ मैं एक दिन चंदनदास सेठ के घर गया। वहाँ यमपट दिखाकर मैंने गाना आरंभ कर दिया। तब एक कमरे से पाँच वर्ष का बालक कुतूहल से बाहर निकलने लगा। तब 'हा निकल गया, हा निकल गया' यह कोलाहल हुआ। अब थोड़ा-सा द्वार खोलकर एक स्त्री ने उसे, निकलते ही, पकड़ लिया। उस स्त्री के हाथ से, पुरुष की अँगुली के नाप की बनी हुई, यह अँगूठी कुमार को रोकने की हड़बड़ी में गिर गई। देहली पर गिरकर यह अँगूठी उछल पड़ी परंतु उसने नहीं देखा। यह अँगूठी मेरे पैरों के पास आकर ठहर गई। मैंने इस पर अमात्य राक्षस का नाम अंकित देखकर यह आपको भेंट कर दी है।

यह समाचार सुनकर चाणक्य ने उसे विदा किया। अब वे एक पत्र लिखने लगे। सोचने लगे कि यहाँ क्या लिखूँ जिससे राक्षस को अवश्य जीत लिया जाय।

इतने में राजा की एक दासी ने आकर, जय करके, कहा—श्रीमान् ! महाराज चंद्रगुप्त प्रणाम के अनंतर निवेदन करते हैं कि आपकी आज्ञा हो तो मैं पर्वतेश्वर-राज के पारलौकिक क्रिया-कर्म करना चाहता हूँ और उनके पहले धारण किए हुये आभूषण ब्राह्मणों को देना चाहता हूँ।

चाणक्य ने दासी से कह दिया—शोणोत्तरा ! हमारी ओर

से वृषल से कहो कि ठीक है। तुम लौकिक व्यवहारों से परिचित हो, सो जैसा चाहो, करो। किंतु पवतेश्वर के पहले धारण किए हुए बहुमूल्य आभूषणों की गुणियों को ही देना चाहिये। सो मैं स्वयं परीक्षित गुणी ब्राह्मणों को भेजता हूँ।

दासी के चले जाने पर चाणक्य ने शिष्य को आज्ञा दी कि विश्वावसु आदि तीन भाइयों से कहो कि वृषल से आभूषण लेकर मुझसे मिलें।

चाणक्य अब फिर पत्र का विषय सोचने लगे। उन्होंने सोचा कि आभूषणों का विषय अंत में होगा। पहले क्या हो? कुछ सोचकर कहने लगे कि गुप्तचरों से सुना है कि उन स्लेच्छ राजाओं में से पाँच प्रधान राजा राक्षस से परम मित्रता का व्यवहार करते हैं। एक तो है कुलूत देश का राजा चित्रवर्मा, दूसरा मलय-राज सिंहनाद, तीसरा काश्मीर-राज पुष्कराक्ष, चौथा सिंधु-राज सिंधुसेन और पाँचवाँ पारसिक-राज मेघान्न।

अब किसी विचार से चाणक्य ने स्वयं लिखना उचित न समझा। उन्होंने शार्गंरव शिष्य को बुलाकर कहा—प्रयत्न से लिखे हुए भी श्रोत्रिय के अक्षर स्पष्ट नहीं होते। सो सिद्धार्थक से कहो कि वह शकटदास से इन वाक्यों को, बिना किसी श्रीनामे के, पत्र में लिखवाकर मेरी प्रतीक्षा करे। उससे वह यह न कहे कि पत्र चाणक्य ने लिखवाया है।

कुछ समय के अनंतर सिद्धार्थक पत्र लेकर आ गया। चाणक्य ने उस पर कोई मुद्रा (मुहर) लगवाकर सिद्धार्थक से कहा—भद्र ! तुम्हें किसी भरोसे के कार्य में लगाने की इच्छा है। देखो, पहले वध-स्थान में जाकर घातकों को क्रोध से दाहनी आँख दबाकर संकेत समझा देना। जब वे संकेत समझकर, भय के बहाने, इधर-उधर भागें तब शकटदास को वध-स्थान से लेकर राक्षस

के पास पहुँच जाना। उससे मित्र की प्राण-रक्षा का पारितोषिक ग्रहण करना। कुछ काल राक्षस की ही सेवा करना। फिर शत्रुओं के निकट आने पर अपना प्रयोजन सिद्ध कर लेना। चाणक्य ने उसके कान में कुछ और कह दिया।

अब शार्ङ्गर्व शिष्य को बुलाकर चाणक्य ने आज्ञा दी कि कालपाशिक और दंडपाशिक को हमारी ओर से कहो कि वृषल आज्ञा करता है—क्षपणक जीवसिद्धि ने राक्षस से प्रयुक्त होकर विष-कन्या द्वारा पर्वतक को मारा था, इसी दोष की घोषणा कर उसे तिरस्कार-पूर्वक नगर से निकाल दो। और राक्षस-द्वारा नियुक्त किया हुआ यह जो शकटदास नित्य हमारी घात में लगा रहता है उसे भी, यही दोष प्रसिद्ध करके, शूली पर चढ़ा दो; तथा उसके कुटुंब को कारागार में भेज दो।

चाणक्य ने अब अंगूठी और पत्र देकर सिद्धार्थक को विदा किया। शिष्य ने आकर निवेदन किया कि कालपाशिक और दंडपाशिक को आज्ञा दे दी। चाणक्य ने अब शिष्य से कहा कि सेठ चंदनदास को बुला लाओ।

वह सेठ चंदनदास को बुला लाया। सेठ मन-ही-मन बहुत भयभीत था। उसे शंका थी कि निर्दय चाणक्य सहसा बुला भेजे तो निर्दोषी को भी भय लगता है; फिर मुझ जैसे दोषी का क्या कहना? इसी शंका से वह आते समय घर में ठहरे हुए धनसेन आदि से कह आया था कि दुष्ट चाणक्य कदाचित् मेरे घर की तलाशी लेगा। सो सावधानी से स्वामी अमात्य-राक्षस के कुटुंब को कहीं सुरक्षित स्थान में ले जाओ। मेरा जो होना है वह हो।

चाणक्य ने चंदनदास से पहले तो इधर-उधर की बातें कीं, अंत में कहा—राजा के साथ प्रजा को भी बिना विरोध भाव के रहना चाहिए।

चंदनदास—आर्य, वह कौन अभागा है जो राजा से विरोध करता है ?

चाणक्य—पहले आप ही हैं।

चंदनदास—राम राम तिनकों का आग के साथ विरोध !

चाणक्य—आपने ही राजा के शत्रु अमात्य राक्षस के कुटुंब को अपने घर में छिपा रक्खा है।

चंदनदास—आर्य ! यह किसी अनजान ने आपसे झूठ कह दिया है

चाणक्य—सेठ! भय मत करो। पिछले राजा के पुरुष, भयभीत पुरवासियों की इच्छा के विरुद्ध भी, उनके घरों में अपना कुटुंब छोड़कर दूसरे देश को चले जाते हैं। सो उसका गुप्त रखना दोष है।

चंदनदास—सत्य है। उस समय हमारे घर में अमात्य राक्षस का कुटुंब था।

चाणक्य—पहले 'झूठ' और अब 'था' ये दोनों बातें परस्पर विरोधी हैं।

चंदनदास—मेरा इतना ही फेर है।

चाणक्य ने कहा—अरे सेठ ! चंद्रगुप्त के राज्य में फेर का काम नहीं है। राक्षस के कुटुंब को सौंप दो। निश्चल हो जाओ।

चंदनदास—आर्य ! मेरा निवेदन है कि मेरे घर में अमात्य राक्षस का कुटुंब पहले था। अब नहीं जानता कहाँ गया।

चाणक्य ने मुस्कराकर कहा—कैसे नहीं जानते ? अरे सेठ ! सौंप तो सिर पर है और बूटी पहाड़ पर। यह मत सोचो कि अमात्य राक्षस चंद्रगुप्त को वैसे ही नष्ट कर देगा जैसे चाणक्य ने नंदों को नष्ट किया था। यह राजा शत्रुओं को भारी दंड देता है। उन्हारा राक्षस के कुटुंब को छिपाना वह सहन नहीं करेगा। सो दूसरे का कुटुंब देकर अपने और स्त्री के जीवन की रक्षा करो।

चंदनदास—आय ! क्या मुझे धमकाने हो ? घर में होता तो भी मैं अमात्य राजस के कुटुंब को न देता । जब है ही नहीं तब क्या ?

चाणक्य—चंदनदास ! यह तेरा निश्चय है ?

चंदनदास—हाँ ! यह मेरा निश्चय है ।

चाणक्य ने मन-ही-मन चंदनदास की प्रशंसा की परंतु प्रकट में कहा—दुरात्मा ! दुष्ट बनिये ! तो राजा के क्रोध को भोग ।

चंदनदास—मैं प्रस्तुत हूँ । आप अपने अधिकार के अनुकूल कार्य करें ।

चाणक्य ने शिष्य से कहा—दुर्गपाल और विजयपाल इसका धन लेकर स्त्री-पुत्र सहित इसे बंदी करें और प्रतीक्षा करें, जब तक मैं वृषल से कहता हूँ । वृषल ही इसे प्राण-हरण का दंड देंगे ।

चंदनदास को साथ लेकर शिष्य चला गया । चाणक्य अति प्रसन्न होकर कहने लगे कि अहा ! अब मैंने राजस को पा लिया । उसकी विपत्ति में जैसे यह अपने प्राणों का त्याग करता है, वैसे ही इसकी आपत्ति में उसको भी अपने प्राण प्रिय न होंगे ।

इतने में घर के नीचे कोलाहल हुआ । चाणक्य ने शिष्य से कारण जानने को कहा । शिष्य ने आकर निवेदन किया कि मारे जाते हुए शकटदास को वध-भूमि से लेकर सिद्धार्थक भाग गया है ।

चाणक्य ने मन-ही-मन कहा—सिद्धार्थक ! तुमने कार्य आरंभ कर दिया । फिर शिष्य से कहा—क्या बलपूर्वक भाग गया ? अच्छा, भागुरायण से कहो कि वह शीघ्र पकड़े ।

शिष्य चला गया परंतु फिर आकर बोला—गुरुजी ! खेद है । भागुरायण भी भाग गया है ।

चाणक्य ने मन-ही-मन कहा कार्य-सिद्धि के लिए जाओ ।

फिर प्रकट रूप में क्रोध से कहा—वत्स ! हमारी ओर से भद्रभट, पुरुषदेव, डिंगरात, बलगुप्त, राजसेन, रोहिताक्ष, विजयवर्मा से कहो कि वे शीघ्र ही पीछा करके दुरात्मा भागुरायण को पकड़ें ।

शिष्य चला गया और फिर आकर बोला—खेद है; पूरा यत्न ही अस्त-व्यस्त हो गया । वे लोग पहले ही प्रातःकाल भाग गये हैं ।

चाणक्य ने मन-ही-मन कहा कि सबके मार्ग कल्याणमय हों । परंतु प्रकट में क्रोध से कहा—मैं भद्रभट आदि पापियों को पकड़ मंगाता हूँ । फिर आकाश की ओर देखकर मन-ही-मन कहा—दुरात्मा राक्षस ! अब तू कहाँ जायगा ? शीघ्र ही तुझे कौशल से पकड़कर वृषल के कार्य में वैसे ही बाधता हूँ, जैसे वन में हाथी बाधा जाता है ।

—* २ *—

एक दिन राक्षस अधिक चिंतित बैठा था । नंद-वंश की स्मृति से उसके नेत्र सजल हो रहे थे । उस नंद-राज की स्वर्ग में परितुष्टि के लिए वह अब तक नीति द्वारा शत्रु-नाश का यत्न कर रहा था । उसने चंद्रगुप्त को विष आदि देने के लिए और शत्रुपक्ष के समाचार जानने के लिए शकटदास को, धन देकर, वहाँ रख छोड़ा था । प्रतिक्षण शत्रुओं का वृत्तांत जानने और उनमें भेद डालने के लिए जीवसिद्धि आदि मित्र थे ही ।

इन्हीं बातों पर राक्षस विचार कर रहा था कि मलयकेतु का कंचुकी जाजलि वहाँ आ गया । उसने कहा—अमात्य ! कुमार मलयकेतु निवेदन करते हैं कि ‘चिरकाल से आपने शरीर का शृंगार करना छोड़ दिया है । इससे मैं दुःखित होता हूँ । यद्यपि सहसा स्वामी के गुण विस्मृत नहीं हो सकते तथापि मेरी प्रार्थना

का आदर कीजिए।" जाजलि ने कुछ आभूषण दिखाकर कहा—
कुमार ने ये आभूषण अपने शरीर से उतारकर भेजे हैं। आप
इन्हें धारण करें।

राक्षस ने शत्रु-नाश से पहले श्रृंगार करने में अनिच्छा प्रकट
की। परंतु जाजलि ने कुमार की पहली प्रार्थना मानने के लिए
हठ किया। राक्षस ने कुमार की बात मान ली। जाजलि आभूषण
पहनाकर चला गया। इतने में द्वार पर जीर्णविष नाम का एक
सँपेरा आया। वह अपना खेल दिखाना चाहता था; परंतु राक्षस
ने उसे टालना चाहा। तब सँपेरे ने एक पद लिखकर भेजा—

सकल कुसुम-रस पान करि मधुप रसिक सिरताज ।
जो मधु त्यागत ताहि लै होत सबै जग-काज ॥

यह पद पढ़कर राक्षस ने समझा कि यह तो कुसुमपुर के वृत्तांत
का जानकार मेरा कोई गुप्तचर है। कार्य की व्युत्पत्ता से, और
अनेक गुप्तचरों के होने से, मैं भूल गया था। अब स्मरण आ
गया। सँपेरे के वेष में विराधगुप्त होगा।

राक्षस ने अब विराधगुप्त को बुला लिया; अन्य सब लोगों
को बाहर भेज दिया। राक्षस ने उससे कुसुमपुर का, चंद्रगुप्त
के नगर-प्रवेश से लेकर, सब वृत्तांत पूछा।

विराधगुप्त—विषकन्या द्वारा पर्वतेश्वर के मारे जाने पर
उसका पुत्र मलयकेतु भय से भाग गया तो दुष्ट चाणक्य ने
ऐसी युक्ति की कि पर्वतक का भाई वैरोचक उस पर विश्वास
करने लगा। चंद्रगुप्त के नगर-प्रवेश के समय चाणक्य ने नगर
के सब बड़इयों को बुलाकर कहा—ज्योतिषियों के आदेश से,
आधी रात में चंद्रगुप्त का नंद-भवन में प्रवेश होगा। सो पूर्व-
द्वार से लेकर राजभवन की सजावट करो। तब बड़इयों ने कहा
कि 'पहले ही राजा चंद्रगुप्त का नंद-भवन में प्रवेश जानकर

बढ़ई दारुवर्मा ने, सोने के तोरण आदि कई पदार्थों से, राजभवन का प्रथम द्वार सजा रक्खा है; सो हमें अब भीतरी सजावट करनी है।" यह जानकर चाणक्य प्रसन्न हुआ कि बिना आज्ञा के दारुवर्मा ने राजभवन की सजावट की है। उसने दारुवर्मा की दूरदर्शिता की प्रशंसा करके कहा—दारुवर्मा ! तुम शीघ्र ही दूरदर्शिता के योग्य फल पाओगे।

राक्षस ने उद्वेग से कहा—मित्र ! चाणक्य कैसे प्रसन्न हो सकता है ? मैं दारुवर्मा के प्रयत्न को निष्फल अथवा अनिष्ट फल-दायक समझता हूँ।

विराधगुप्त—तब चाणक्य ने वैरोचक को चंद्रगुप्त के साथ एक आसन पर बैठाकर, पहले की प्रतिज्ञा के अनुसार, देश का आधा भाग कर दिया और प्रजा में घोषणा करा दी कि चंद्रगुप्त का नंद-भवन में आज प्रवेश होगा। फिर चाणक्य के आदेश से चंद्रगुप्त के अनुचरों ने अभिषेक के अनंतर वैरोचक को, रात के समय, चंद्रगुप्त की चंद्रलेखा नाम की हथिनी पर सवार कराके राजमार्गों पर घुमाया। हथिनी पर सवार वैरोचक जब नंद-भवन में प्रवेश करने लगा तब दारुवर्मा ने, उसे चंद्रगुप्त समझकर, उसके ऊपर गिराने के लिए यंत्र-तोरण तैयार किया। चंद्रगुप्त के मारने के लिए नियुक्त बबरक ने स्वर्ण-दंड के भीतर रक्खी हुई छुरी को खींचने की इच्छा से, सोने की जंजीर से लटकते हुए, स्वर्ण-दंड को हाथ से पकड़ लिया। अब जाँघों पर प्रहार के भय से हथिनी बहुत वेगवाली और ही चाल से चल पड़ी। पहली चाल के अनुसार लक्ष्य से छोड़े हुए यंत्र-तोरण से, लक्ष्य चूक जाने के कारण बेचारा बबरक महावत झारा गया। तब यंत्र-तोरण गिराने के कारण अपने मृत्यु-दंड की शंका कर, तोरण के ऊँचे स्थान पर चढ़े हुए, दारुवर्मा ने

पहले ही यंत्र-तोरण को गिरानेवाली लोहे की कील लेकर बेचारे वैरोचक को मार डाला । फिर वैरोचक के सेवकों ने दारु-वर्मा को ढेलों से मार दिया ।

यह सुनकर राजस की आँखें भर आईं । वह पूछने लगा—
अच्छा, उस वैद्य अभयदत्त ने क्या किया ?

विराधगुप्त—अमात्य ! उसने किसी चूर्ण में मिलाकर एक औषध चंद्रगुप्त को दी । उसकी परीक्षा करने पर दुष्ट चाणक्य ने, स्वर्ण-पात्र में वर्ण का विकार पाकर, चंद्रगुप्त से कह दिया कि 'वृषल ! यह विष मिली औषध न पीना' । वही औषध पिलाकर वैद्य मार डाला गया ।

राजस ने दुःख से कहा—अहो ! महान् विज्ञान का ढेर नष्ट हो गया । फिर चंद्रगुप्त के शयन-गृह के प्रबंधकर्ता प्रमोदक का क्या हुआ ?

विराधगुप्त—वह तो मूर्ख था । आपसे खूब धन पाकर वह अधिक व्यय करके भोग-विलास करने लगा । तब यह पूछे जाने पर कि तुम्हारे पास इतना धन कहाँ से आया, वह अंडबंड उत्तर देने लगा । इस कारण दुष्ट चाणक्य ने विचित्र रीति से उसे मार डाला ।

राजस—क्या यहाँ भी हमें भाग्य ने चौपट कर दिया ?
अच्छा, शयनगृह में चंद्रगुप्त के शरीर पर आक्रमण करने के लिए नियुक्त, राजगृह के भीतर सुरंगों में जाकर पहले से ही छिपे हुए, ब्रीभत्सुक आदि का क्या वृत्तांत है ?

विराधगुप्त—अमात्य ! दारुण वृत्तांत है । शयनगृह में चंद्रगुप्त के प्रवेश से पहले जा करके ध्यान से देखते हुए दरात्मा चाणक्य ने किसी दीवार के छिद्र में से चाटियों की पंक्ति को अन्न के कण लिये निकलते देखकर सोचा कि इसक भीतर पुरुष रहते हैं । अतः

उस शयन-गृह को चाणक्य ने जलवा दिया। उसके जलने पर बीभत्सक आदि वहीं भस्म हो गये।

यह सुनकर राक्षस को महान् दुःख हुआ। वह कहने लगा—मित्र ! उस दुरात्मा चंद्रगुप्त का भाग्य देखो। मेरी नीतियाँ चंद्रगुप्त के विविध कल्याण कर रही हैं। अच्छा, फिर क्या हुआ ?

विराधगुप्त—तब से लेकर चंद्रगुप्त की रक्षा के लिए सहस्र गुना सावधान होकर दुष्ट चाणक्य नगर में रहनेवाले आपके विश्वासपात्रों को इस विचार से ढूँढ़-ढूँढ़कर पकड़ता है कि ‘इन्होंने ऐसा किया होगा।’ सबसे पहले उसने क्षपणक जीवसिद्धि को तिरस्कारपूर्वक नगर से निकाल दिया है।

राक्षस—किस अपराध से निकाला है ?

विराधगुप्त—यह अपराध लगाया कि इसने, राक्षस के कहने से, विषकन्या द्वारा पर्वतेश्वर को मारा है।

राक्षस ने मन-ही-मन कहा—धन्य कौटिल्य ! धन्य ! अपना अपयश हमारे मत्थे मढ़ दिया और आधे राज्य के लेनेवाले को मार दिया। मुम्हारी एक ही नीति का बीज बहुत फल देता है। फिर प्रकट रूप से कहा—हाँ, फिर ?

विराधगुप्त—‘तब दारुवमा आदि चंद्रगुप्त के शरीर पर आक्रमण करने की इच्छा से कार्य करते हैं,’ यह घोषणा करके शकटदास को सूली पर चढ़ा दिया।

यह सुनकर राक्षस अति दुःखित हुआ। उसकी आँखों में आँसू उमड़ आये। वह कहने लगा—हमों मंद-भाग्य हैं जो नंद-कुल का नाश होने पर भी जीवन की इच्छा करते हैं।

विराधगुप्त—अमात्य ! आप भी तो स्वामी के लिए सिद्धि का यत्न कर रहे हैं।

राक्षस—मित्र ! दूसरे मित्र की भी विपत्ति का वर्णन करो । मैं सुनने को प्रस्तुत हूँ ।

विराधगुप्त—यह सब देखकर चंदनदास ने आपके कुटुंब को कहीं भेज दिया । तब, माँगने पर भी आपके कुटुंब को न देने पर, कुपित चाणक्य ने उसकी गृह-सामग्री छीनकर उसे स्त्री-पुत्र सहित कारागार में डाल दिया ।

राक्षस—यह कहो कि स्त्री-पुत्र सहित राक्षस बाँधा गया ।

इसी समय वहाँ शकटदास को लेकर सिद्धार्थक आ पहुँचा । राक्षस ने उसे देखकर सहर्ष गले लगा लिया और पूछा—मित्र शकटदास ! तुम यहाँ कैसे ?

शकटदास ने सिद्धार्थक की ओर संकेत करके कहा—यह प्रिय मित्र सिद्धार्थक, घातकों को भगाकर, मुझे वधस्थान से लाया है ।

राक्षस ने प्रसन्न होकर सिद्धार्थक को अपने आभूषण उतारकर पारितोषिक में दे दिए ।

सिद्धार्थक ने भी सोचा कि यह चाणक्य का आदेश है । सो आभूषण ले लिए और कहा—अमात्य ! यहाँ मैं पहले ही आया हूँ । कोई भी परिचित नहीं है कि जहाँ आपके प्रसाद को रखकर निश्चित हो जाऊँ । सो मेरी यह इच्छा है कि इसे, इस मुद्रा से मुद्रित कर, आपके ही भंडार में रख दूँ । जब प्रयोजन होगा, ले जाऊँगा ।

राक्षस ने इसमें कुछ दोष न जानकर स्वीकार कर लिया । शकटदास को ऐसा ही करने को कह दिया । शकटदास ने मुद्रा लेकर ओट में कहा कि अमात्य ! आपके ही नाम की यह मुद्रा है ।

राक्षस—भद्र सिद्धार्थक ! यह मुद्रा तुम्हें कैसे मिली ?

सिद्धार्थक—कुसुमपुर में चंदनदास नाम का जौहरी है । उसके द्वार के समीप मुझे पड़ी मिल गई थी । जो आप इसे ग्रहण कर लें तो आपकी बड़ी कृपा हो ।

अब सिद्धार्थक ने अँगूठी दे दी। राक्षस ने कहा—मित्र शकटदास ! इस मुद्रा से ही अपना कार्य किया करो।

सिद्धार्थक ने अब प्रार्थना की कि चाणक्य का अहित करके पाटलिपुत्र में जाना कठिन है। सो मैं आपकी ही सेवा में रहना चाहता हूँ। राक्षस ने यह प्रार्थना सहर्ष स्वीकार कर शकटदास से कहा कि इसे विश्राम के लिए स्थान दो।

शकटदास सिद्धार्थक को लेकर चला गया।

राक्षस ने अब विराधगुप्त से पूछा—क्या चंद्रगुप्त की प्रजा हमारे प्रयत्न से सहमत है ?

विराधगुप्त—अमात्य ! सहमत है। लोग आपका अनुगमन ही करते दिखाई देते हैं। सुना है कि मलयकेतु के चले जाने से चंद्रगुप्त अब चाणक्य पर कुपित है। चाणक्य भी अति गर्व से, बार-बार आज्ञा भंग करके, चंद्रगुप्त के चित्त की पीड़ा बढ़ाता है।

इस समाचार से राक्षस प्रसन्न हो गया। उसने विराधगुप्त से कहा—मित्र ! तुम इस सँपरे के वेष में ही फिर कुसुमपुर जाओ। वहाँ मेरा प्रिय मित्र स्तनकलश, वैतालिक के वेष में, रहता है। मेरी ओर से उससे कहो कि चाणक्य के आज्ञाभंग करने पर वह उत्तेजक छंदों से चंद्रगुप्त की स्तुति करे और करभक द्वारा, गुप्त रूप से, परिणाम की सूचना भेजता रहे।

यह आज्ञा पाकर विराधगुप्त चला गया।

इस समय एक पुरुष ने आकर कहा कि ये तीन आभूषण बिक रहे हैं। आप इन्हें देख लें। राक्षस ने शकटदास को दाम ठहराकर खरीदने के लिए कह दिया।

—* ३ *

‘कौमुदी-भहोत्सव’ का दिन समीप आने पर चंद्रगुप्त ने उत्सव

मनाने की घोषणा की। वे 'कौमुदी-महोत्सव' से अधिक रमणीय हो रहे कुसुमपुर को देखना चाहते थे। नगर की शोभा देखने के लिए वे सुगांग-प्रासाद पर आये। मार्ग में वे चिंता करते आते थे कि गुरु ने आदेश किया है—'कृत्रिम कलह करके, स्वतंत्र होकर, कुछ समय के लिए कार्य-प्रबंध करना चाहिए।' मैंने कठिनता से इस, पाप के सदृश, कठिन कार्य को स्वीकार किया है।

अब चारों ओर देखकर चंद्रगुप्त कहने लगे—“अरे ! कुसुमपुर में 'कौमुदी-महोत्सव' नहीं मनाया गया ?” फिर उन्होंने कंचुकी वैहीनर से पूछा—क्या तुमने हमारी ओर से कुसुमपुर में 'कौमुदी-महोत्सव' की घोषणा नहीं की थी ?

वैहीनर—मैंने घोषणा तो कर दी थी; परंतु 'कौमुदी-महोत्सव' रोक दिया गया है।

राजा ने क्रोध से कहा—आह ! किसके द्वारा ?

वैहीनर—राजन् ! इससे अधिक निवेदन नहीं कर सकता।

राजा—क्या चाणक्य द्वारा ?

वैहीनर ने बताया कि जीवन की इच्छा रखनेवाला और कौन आपकी आज्ञा के विरुद्ध चल सकता है ?

राजा ने अब वैहीनर को भेजकर चाणक्य को बुला भेजा। उनके आने पर, चंद्रगुप्त ने आसन से उठकर उनके चरण छुए। चाणक्य ने हाथ पकड़कर उसे उठाया और पूछा—वृषल ! हमें क्यों बुलाया है ?

राजा—आपके दर्शनों से अनुगृहीत होने के लिए। **दयाभाव**

चाणक्य ने मुस्कराकर कहा—इस विनयभाव को बंद करो। राजा लोग अधिकारियों को बिना प्रयोजन नहीं बुलाते।

राजा—आर्य ! 'कौमुदी-महोत्सव' के रोकने से आपने क्या लाभ सोचा है ?

चाणक्य ने मुस्कराकर कहा—तो उलाहना देने को हमें बुलाया है ?

राजा—हरे ! हरे ! कदापि नहीं । निवेदन करने को ।

चाणक्य—यदि ऐसा है तो शिष्य को, निवेदन करने के लिए, माननीय पुरुषों की इच्छा का विरोध न करना चाहिए ।

राजा—इसमें क्या संदेह ? किंतु हमने इसी कारण पूछा है कि आपका कार्य कभी निष्प्रयोजन नहीं होता ।

चाणक्य—वृषल ! तुमने ठीक समझा । स्वप्न में भी चाणक्य निष्प्रयोजन चेष्टा नहीं करता । सुनो, अर्थशास्त्र के कर्त्ता तीन प्रकार की सिद्धि का वर्णन करते हैं । राजायत्त, सचिवायत्त और उभयायत्त—सो तुम्हारी सिद्धि सचिवायत्त है । प्रश्न से क्या लाभ ? कार्य तो हमें ही करना है ।

यह सुनकर राजा ने क्रोध से मुख फेर लिया । तब वैतालिकों ने कवित्त पढ़े । एक ने शरद्-वर्णन किया, दूसरे ने कहा—

अहो, जिनको विधि सब जीव सों बढ़ि दीनों जग-काज ।

अरे, दान-सलिल-वारे सदा जे जीतहिँ गजराज ॥

अहो, भुक्त्यो न जिनको मान ते नृपवर जग सिरताज ।

अरे, सहहिँ न आशा भंग जिमि दंतपात मृगराज ॥

अरे, केवल बहु गहना पहिरि राजा होय न कोय ।

अहो, जाकी नहिँ आशा टरै सो नृप तुम सम होय ॥

यह सुनकर चाणक्य समझ गया कि यह राक्षस की चाल है । मन में कहने लगा कि दुरात्मा राक्षस ! तुम्हें देख लिया । कौटिल्य सावधान है ।

राजा ने वैहीनर से कहा कि दोनों वैतालिकों को सहस्र स्वर्ण-मुद्रा दो । वैहीनर उठकर जाने लगा तो चाणक्य ने उसे रोक लिया

और राजा से कहा—वृषल ! अपात्र को इतना अधिक दान क्यों देते हो ?

राजा ने क्रोध से कहा—आप पग-पग पर इसी प्रकार मुझे टोक देते हैं। इस कारण राज्य तो मेरे लिए बंधन-सा हो रहा है।

चाणक्य—वृषल ! ये दोष तो स्वयं कार्य न करनेवाले राजाओं में होते ही हैं। सो यदि सहन नहीं करते तो अपना कार्य स्वयं देखो।

राजा—मैंने अपना कार्य संभाला।

चाणक्य—यह हमें स्वीकार है। हम भी अपने कार्य में लगते हैं।

अब राजा ने कहा—यदि ऐसा है तो 'कौमुदी-महोत्सव' के रोकने का प्रयोजन सुनना चाहता हूँ।

चाणक्य ने शोणोत्तरा दासी से कहा कि जाकर अचलदत्त से भद्रभट आदि का लेख्य-पत्र माँग ला। दासी ने शीघ्र ही पत्र लेकर दे दिया। चाणक्य ने पत्र पढ़कर सुनाया—यह लेख्य-पत्र उन प्रधान पुरुषों का है जिनका उत्कर्ष तो स्वनामधन्य राजा चंद्रगुप्त के साथ हुआ है; किंतु जो यहाँ से वध्य मलयकेतु के आश्रय में चले गये हैं। विद्रोहियों के नाम ये हैं—गजाध्यक्ष भद्रभट, अश्वाध्यक्ष पुरुषदत्त, महाप्रतीहार चंद्रभानु का भानजा डिंगरात, महाराज के नातेदार महाराज बलगुप्त, महाराज की ही कुमारावस्था का सेवक राजसेन, सेनापति सिंहबल का छोटा भाई भागुरायण, मालवराज का पुत्र लोहिताक्ष और क्षत्रियों में प्रधान विजयवर्मा।

यह सुनकर चंद्रगुप्त ने कहा—मैं इनके विद्रोही होने का कारण सुनना चाहता हूँ।

चाणक्य—वृषल ! सुनो। गजाध्यक्ष भद्रभट और अश्वाध्यक्ष पुरुषदत्त को मैंने स्त्री, मद्य और मृगया में आसक्त एवं हाथियों तथा घोड़ों के निरीक्षण में असावधान देखकर, अधिकार से हटा

कर, जीवन भर के लिए वृत्ति दे दी। शत्रु मलयकेतु के आश्रित होकर वे वहाँ अपने-अपने पद पर नियुक्त हो गये हैं। डिंगरात और बलगुप्त अत्यंत लोभी हैं। वे तुम्हारे दिये हुए वेतन को कम मानकर मलयकेतु के यहाँ अधिक वेतन पाने के लोभ से उसके आश्रित हो गये हैं। तुम्हारी कुमारावस्था का सेवक राजसेन भी तुम्हारी कृपा से सहसा महान् धन-ऐश्वर्य तथा अनेक हाथी-घोड़े पाकर इसलिए मलयकेतु के आश्रित हो गया है कि कहीं यह सब छिन न जाय। दूसरे सेनापति सिंहबल के छोटे भाई भागुरायण ने, उस समय पर्वतक के साथ की गई मित्रता के अनुरोध से, 'तेरे पिता को चाणक्य ने मार डाला है' ऐसा एकांत में डरवाकर मलयकेतु को भागा दिया है। फिर तुम्हारा अनिष्ट करने वाले चंदनदास आदि के पकड़े जाने पर, अपने अपराधों की शंका से, वह मलयकेतु की शरण में चला गया है। उसने भी इसे अपना प्राण-रक्षक समझकर, कृतज्ञता से, अंतरंग अमात्य का पद दिया है। लोहिताक्ष और विजयवर्मा भी अपने संबंधियों के, तुमसे प्राप्त हुए, मान को सहन न करके मलयकेतु के आश्रित हो गये हैं। इनके विराग के यही कारण हैं।

राजा—इस प्रकार इनके विराग का कारण जानने पर शीघ्र ही आपने उपाय क्यों नहीं किया ?

चाणक्य—वृषल ! मैं उपाय करने में असमर्थ था।

राजा—क्या कौशल से अथवा प्रयोजन की अपेक्षा से ?

चाणक्य—अकौशल कैसे होता ? प्रयोजन की अपेक्षा ही है विरक्त प्रजा का उपाय दो प्रकार से होता है, अनुग्रह से और निग्रह से। अनुग्रह तो यह है कि पद-च्युत भद्रभट, पुरुषदत्त को फिर से उन्हें पूर्व-पद दे दिये जायँ। ऐसे पुरुषों को, व्यसन आदि के कारण कार्य में सावधान न होने पर, फिर

अधिकार दे देना राज्य के मूल साधन हाथी-घोड़ों का सर्वथा नाश कर देना है। डिंगरात और बलगुप्त अति लोभी हैं; सारा राज्य प्रदान कर देने से भी प्रसन्न न होनेवालों पर अनुग्रह कैसे हो सकता है ? राजसेन और भागुरायण को तो धन-नाश के भय से अनुग्रह के लिए अवकाश कहाँ ? इस प्रकार सभी पर अनुग्रह अनुचित था और निग्रह भी उपयुक्त न था। साथ समृद्धि पानेवाले प्रधान पुरुषों को दंड दिया जाता तो नंदकुल पर अनुरक्त प्रजा का विश्वास हम पर से उठ जाता। अतः हमारे पक्ष के ऐसे पुरुषों को ग्रहण करके, राक्षस की मंत्रणा के अनुसार चलनेवाला, पिता के वध से क्रुद्ध पर्वतक-पुत्र मलयकेतु प्रबल स्लेच्छ सेना लेकर हम पर आक्रमण करने के लिए उद्यत है। सो यह उद्योग-काल है, न कि उत्सव-काल। दुर्ग को देख-रेख आरंभ करने के समय 'कौमुदी-महोत्सव' कैसा ? इसी कारण मैंने उसे रोक दिया।

राजा—अभी मुझे और पूछना है। सब अनर्थों का कारण मलयकेतु है। उसके भाग निकलने के लिए सुविधा क्यों बनी रहने दी ?

चाणक्य—वृषल ! उपेक्षा करने के दो कारण थे। या तो वह पकड़ लिया जाता अथवा प्रतिज्ञा के अनुसार उसे आधा राज्य दे दिया जाता। पकड़ने पर तो ऐसी वृत्तघ्नता की स्वयं सहायता करना था कि पर्वतक को हमीं ने मारा है। प्रतिज्ञा किया हुआ राज्य दे देने से पर्वतक का नाश निरी वृत्तघ्नता का फल था। इसी से मैंने मलयकेतु को भाग जाने दिया।

राजा—यहीं पर वर्तमान राक्षस की भी आपने उपेक्षा की। इसका क्या उत्तर है ?

चाणक्य—स्वामी पर दृढ़ अनुराग तथा चिरकाल तक

एक स्थान पर रहने के कारण राक्षस, नंदकुल में अनुरक्त, तथा स्वभाव को परखनेवाली, प्रजा का विश्वासपात्र है। वह बुद्धिमान, पुरुषार्थी, सहायता-संपन्न और धनी है। यहीं नगर में रहकर वह अवश्य कुचक्र रचकर मशान् उपद्रव खड़े करता। दूर कर देने पर यदि वह बाहर से उपद्रव मचावेगा तो उपायों द्वारा वश में कर लिया जायगा। अतः यहाँ से उसे, हृदय में बिंधे बाण के समान, निकालकर दूर फेंक दिया है।

राजा—आपने उसे बलपूर्वक बंदी क्यों न कर लिया ?

चाणक्य—वह राक्षस है। बलपूर्वक बंदी किया जाता तो वह तुम्हारी बहुत-सी सेना का नाश कर देता अथवा स्वयं नष्ट हो जाता। ये दोनों ही परिणाम अनुचित होते।

राजा—हम आपको बातों में नहीं पा सकते। पर इससे तो अमात्य राक्षस ही सर्वथा श्रेष्ठ प्रतीत होता है ?

चाणक्य ने क्रोध से कहा—“आप नहीं” यह क्यों नहीं कह दिया ? अरे वृषल ! उसने क्या किया है ? कहो तो !

राजा—क्या आप नहीं जानते ? सुनिए, नगर के हमारे हाथ आ जाने पर भी उसने, अपनी इच्छा के अनुसार हमारे मस्तक पर पैर रखकर निवास किया; और हमारी सेना के जय-वोषणा करने में बलपूर्वक बाधा डाली। अपनी नोति के उत्कर्ष से उसने हमें सम्मोहित कर दिया है; हमें अपने पक्ष के विश्वसनीय पुरुषों पर भी विश्वास नहीं होता।

चाणक्य ने हँसकर कहा—राक्षस ने यह सब किया है ? वृषल ! चंद्रगुप्त—हाँ, अमात्य राक्षस ने यह सब किया।

चाणक्य—मैंने तो समझा था कि नंद के समान, तुमको उखाड़कर तुम्हारे बदले उसने भूतल पर मलयकेतु को राजाधिराज बना दिया है ?

राजा—यह और ही किसी ने किया है, न कि आपने।
 चाणक्य—किसने ?

राजा—नंद-कुल के द्वेषी दैव ने।

चाणक्य—दैव को तो मूर्ख लोग मानते हैं। ५०

राजा—विद्वान् भी अभिमानी नहीं होते।

चाणक्य को अब क्रोध आ गया। कहने लगे—वृषल !
 सेवक के समान मुझपर शासन करना चाहता है। मेरा यह हाथ,
 बंधी हुई शिखा को फिर खोलने के लिए बढ़ता है।

अब चाणक्य ने भूमि पर क्रोध से पैर पटका। राजा ने मन
 में कहा—अरे ! क्या आर्य सचमुच कुपित हो गये ?

चाणक्य ने अब कृत्रिम क्रोध को रोककर कहा—वृषल ! इस
 वाद-विवाद से क्या लाभ ? यदि हमसे राक्षस श्रेष्ठ जान पड़ता है
 तो यह शस्त्र उसी को दे दो।

बस, चाणक्य ने शस्त्र फेंक दिया। फिर उठकर आकाश की
 ओर लक्ष्य कर मन में कहा—राक्षस ! राक्षस !! यह तुम्हारा
 कौटिल्य की बुद्धि के जीतने की इच्छा का प्रकर्ष है। ३२१

चाणक्य अब चले गये।

राजा ने वैहीनर को बुलाकर प्रजा में यह घोषणा करवा दी
 आज से, चाणक्य का तिरस्कार करके, चंद्रगुप्त स्वयं ही राज्य
 करेगा।

वैहीनर—सौभाग्य से महाराज अब यथार्थ में महाराज हो गये।

यह वचन सुनकर राजा ने मन-ही-मन कहा—हमें ऐसा समझा
 जाने पर स्वकार्य-सिद्धि की कामना करते हुए आर्य चाणक्य
 सफल हों।

फिर शिर-पीड़ा कहकर राजा चंद्रगुप्त शयन-गृह को
 चले गये।

—* ४ *—

एक दिन शकटदास के साथ राक्षस अपने शयन-गृह में, आसन पर, चिंता में बैठा था कि कुसुमपुर से कारभक समाचार लेकर आया।

प्रायः उसी समय भागुरायण के साथ कुमार मलयकेतु वहाँ आ रहा था। मार्ग में कुमार मलयकेतु ने जाजलि को यह कहकर लौटा दिया कि मैं अमात्य राक्षस को, बिना सूचना दिये जाकर, प्रसन्न करना चाहता हूँ। जाजलि के चले जाने पर मलयकेतु ने भागुरायण से कहा—मित्र ! यहाँ आये हुए भद्रभट आदि ने मुझसे निवेदन किया था कि 'हम अमात्य राक्षस के द्वारा कुमार का आश्रय ग्रहण करना नहीं चाहते; किंतु दुष्ट अमात्य के वशीभूत हो रहे चंद्रगुप्त से विरक्त होकर आये हुए, कुमार के सेनापति, शिखरसेन द्वारा आपका वांछित आश्रय चाहते हैं।' सो उनके वाक्य का अर्थ, चिरकाल तक विचार करने पर भी, मेरी समझ में नहीं आया।

भागुरायण—यह अर्थ दुर्बोध नहीं है। किसी वीर और आत्म-गुण से संपन्न व्यक्ति को प्रिय और हितैषी के द्वारा आश्रय लेना ही चाहिए।

मलयकेतु—मित्र भागुरायण ! अमात्य राक्षस तो हमारा प्रियतम और अत्यंत हितकारी है।

भागुरायण—अमात्य राक्षस का चाणक्य से वैर है, न कि चंद्रगुप्त से। यदि कभी चाणक्य के गर्व को न सहकर चंद्रगुप्त उसे सचिव-पद से हटा दे तो, नंद-कुल में भक्ति रखने के कारण, 'यह नंद-वंश ही है' ऐसा समझकर, अमात्य राक्षस चंद्रगुप्त के साथ मेल कर सकता है। ऐसा होने पर कुमार हम पर भी विश्वास न करेंगे। इनके वाक्य का यही अर्थ है।

इस प्रकार वार्त्तालाप करते-करते जब वे राक्षस के घर के दरवाजे पर पहुँचे तब उन्हें राक्षस का एक वचन सुनाई पड़ा—
“क्या तुमने कुसुमपुर में स्तनकलश वैतालिक को देखा था ?”

कुसुमपुर-विषयक वार्त्तालाप जानकर, उसे सुनने की इच्छा से, भागुरायण के साथ मलयकेतु वहीं ठहर गया ।

‘कौमुदी-महोत्सव’ के रोकने का सारा वृत्तांत करभक ने कह सुनाया । सब सुनकर राक्षस प्रसन्न हुआ । करभक ने बताया कि तब चंद्रगुप्त ने आज्ञा-भंग से रुष्ट होकर प्रसंगवश आपके गुणों की प्रशंसा की और दुष्ट चाणक्य को अधिकार से हटा दिया ।

यह सुनकर मलयकेतु ने कहा—मित्र भागुरायण ! गुण-प्रशंसा करके चंद्रगुप्त ने राक्षस के प्रति भक्ति का पक्षपात दिखाया है ।

भागुरायण—गुण-प्रशंसा से इतना नहीं, जितना चाणक्य का तिरस्कार करके ।

राक्षस ने करभक से पूछा—क्या चंद्रगुप्त का चाणक्य के प्रति क्रोध का यही एक कारण है कि ‘कौमुदी-महोत्सव’ रोक दिया गया अथवा और भी कारण हैं ?

करभक—चंद्रगुप्त के क्रोध का कारण यह भी है कि भागते हुए मलयकेतु और अमात्य राक्षस की चाणक्य ने उपेक्षा की ।

अब तो राक्षस अति प्रसन्न हुआ । वह कहने लगा—मित्र शकटदास ! अब चंद्रगुप्त मेरे हाथ में आ जायगा, चंदनदास का बंदीगृह से छुटकारा होगा और पुत्र-स्त्री आदि से तुम्हारा मिलन होगा ।

यह सुनकर मलयकेतु ने भागुरायण से पूछा—मित्र ! ‘हाथ में आ जायगा’ कहने का क्या अभिप्राय है ?

भागुरायण—अभिप्राय और क्या होगा ? चाणक्य से रूठे

हुए चंद्रगुप्त के उद्धार से राक्षस अवश्य कोई कार्य सिद्ध करेगा।
करभक से सब समाचार सुनकर राक्षस ने उसे, विश्राम करने
के लिए, शकटदास के साथ भेज दिया।

राक्षस ने अब यह समाचार कुमार से कहना चाहा। शकट-
दास के जाते ही कुमार स्वयं आगे बढ़ गया। मलयकेतु को देख-
कर राक्षस ने, आसन से उठकर, उसे सादर बैठाया।

मलयकेतु—अमात्य ! शिर-पीड़ा कम हुई ?

राक्षस—कुमार ! आपको “राजन्” शब्द प्राप्त हुए बिना मेरी
शिर-पीड़ा कैसे कम हो सकती है ?

मलयकेतु—आपने जो स्वीकार किया है वह दुष्प्राप्य न
होगा। सो कितने समय तक हमें, सेना एकत्र किये रहने पर भी,
शत्रु के व्यसन को देखते हुये उदासीन रहना चाहिये ?

राक्षस—कुमार ! क्या आज भी समय नष्ट करने का अवकाश
है ? विजय की प्रतीक्षा कीजिए।

मलयकेतु—क्या शत्रु इस समय किसी संकट में है ?

राक्षस—हाँ, सचिव-संकट है। चंद्रगुप्त चाणक्य से
पृथक् हो गया है।

मलयकेतु—अमात्य ! सचिव-संकट कोई संकट नहीं है।

राक्षस—अन्य राजाओं को कदाचित् सचिव-संकट कोई
संकट न हो; किंतु चंद्रगुप्त के लिये तो अवश्य है।

मलयकेतु—अमात्य ! यह बात नहीं है। चाणक्य के दोष के
ही कारण प्रजा चंद्रगुप्त पर अनुरक्त नहीं है। चाणक्य के तिरस्कृत
हो जाने पर पहले से ही चंद्रगुप्त में अनुरक्त प्रजा और भी
अनुराग दिखायेगी।

राक्षस—नहीं, ऐसा नहीं। अपने लिए उपयुक्त आश्रय न पाने
से ही प्रजा चंद्रगुप्त के आश्रय में है। प्रतिपक्ष का फिर उद्धार

करने में आप जैसे योधा को पाकर वह शीघ्र उसे त्यागकर आपका आश्रय ले लेगी । यहाँ हमों उदाहरण हैं ।

मलयकेतु—अमात्य ! यदि ऐसे आक्रमण की आप प्रतीक्षा करते हैं तो बैठे क्यों हैं ? आक्रमण का प्रबंध कीजिए ।

अब मलयकेतु, भागुरायण सहित चला गया । राक्षस ने भी, मुहूर्त निकलवाने के लिए, एक पुरुष को आज्ञा दी कि देखो द्वार पर ज्योतिषियों में से कौन है । उस पुरुष ने आकर सूचना दी कि द्वार पर क्षपणक जीवसिद्धि है ।

राक्षस ने क्षपणक का नाम सुनकर असगुन समझा; परंतु फिर उसी को बुला लिया । क्षपणक ने कुछ सोचकर ऐसा मुहूर्त बताया जो स्पष्ट ही उनके प्रतिकूल था ।

राक्षस ने किसी दूसरे ज्योतिषी से मुहूर्त पूछने का विचार किया । क्षपणक कुपित होकर चला गया ।

—* * *

एक दिन एक पत्र और आभूषण की पेटो लेकर सिद्धार्थक चल पड़ा । इस पत्र को चाणक्य ने लिखवाकर अमात्य राक्षस की मुद्रा से मुद्रित कर दिया था । यह अलंकार-मंजूषा भी उसी मुद्रा से मुद्रित की हुई थी ।

सिद्धार्थक पाटलिपुत्र को जा रहा था । उसे मार्ग में क्षपणक मिल गया । क्षपणक ने उसे बताया कि यहाँ, मलयकेतु की सेना में, लोगों का आना-जाना बंद कर दिया गया है । अब यहाँ से कुसुमपुर के निकट होने पर कोई भी, बिना प्रवेश-पत्र के आने या जाने की आज्ञा नहीं पाता । सो भागुरायण का प्रवेश-पत्र हो तो निःशंक चले जाओ, अन्यथा ठहर जाओ ।

किंतु सिद्धार्थक न ठहरा । वह बिना प्रवेश-पत्र के चला

गया। क्षपणक को भी जाना था। उसने भागुरायण से प्रवेश-पत्र माँगने का विचार किया।

उधर भागुरायण बैठा सोच रहा था कि शोक है, स्नेही कुमार मलयकेतु को भी हमें धोखा देना होगा। उसने अपने सेवक को प्रवेश-पत्र के इच्छुकों को ले आने की आज्ञा दी। इस समय मलयकेतु भी वहाँ आ गया। वह मन में सोच रहा था कि राक्षस के विषय में अनेक संशय होने से कुछ निश्चय नहीं कर पाता हूँ। इसी से वह भागुरायण से मिलने आ गया। उसने भागुरायण का मुँह दूसरी ओर होने से अपने हाथों से उसकी आँखें मूँदनी चाहीं।

इस समय क्षपणक, प्रवेश-पत्र की इच्छा से, वहाँ आया। उसे देखकर भागुरायण ने समझ लिया कि यह राक्षस का मित्र जीवसिद्धि है। उससे पूछा—राक्षस के प्रयोजन से ही तो नहीं कहीं जा रहे हो ?

क्षपणक—हरे-हरे ! मैं वहाँ जाऊँगा जहाँ राक्षस या पिशाच का नाम भी नहीं सुना जाता।

भागुरायण—क्या मित्र से अधिक प्रेम-कलह है ? राक्षस ने कौन-सा अपराध किया है ?

क्षपणक—राक्षस ने मेरा कोई भी अपराध नहीं किया। मुझ मंदभाग्य ने स्वयं ही अपना अपराध किया है।

भागुरायण—मेरा कौतूहल बढ़ गया है। कारण सुनना चाहता हूँ।

मलयकेतु ने भी मन में कहा कि मैं भी सुनना चाहता हूँ।

क्षपणक ने सुनाने में आगा-पीछा किया। भागुरायण ने प्रवेश-पत्र देना अस्वीकार कर दिया।

क्षपणक ने यह उचित अवसर देखकर कहा—क्या करूँ ?

सुनिष्ट । मैं मंदभाग्य पाटलिपुत्र में रहता था । राक्षस से मित्रता हो गई । उस समय राक्षस ने, गुप्त रूप से विषकन्या का प्रयोग करवाकर राजा पर्वतेश्वर को मरवा डाला ।

यह सुनकर मलयकेतु के नेत्र सजल हो गये । वह मन-ही-मन कहने लगा कि पिताजी को राक्षस ने मारा है, न कि चाणक्य ने ।

भागुरायण—तब क्या हुआ ?

क्षपणक—तब राक्षस का मित्र समझकर दुष्ट चाणक्य ने मुझे तिरस्कारपूर्वक नगर से निकाल दिया । अब भी कार्य-कुशल राक्षस ने कुछ वैसा ही कार्य आरंभ किया है जिससे मैं जीवलोक से निकाला जाऊंगा ।

भागुरायण—सुना है, आधा राज्य देने की प्रतिज्ञा से दुष्ट चाणक्य ने यह पाप किया है न कि राक्षस ने ।

क्षपणक ने कानों पर हाथ रखकर कहा—हरे ! चाणक्य ने तो विष-कन्या का नाम भी नहीं सुना ।

भागुरायण ने अब क्षपणक को प्रवेश-पत्र देकर कहा—चलो, कुमार को सुना दो ।

अब आगे बढ़कर मलयकेतु बोला—मित्र ! मैंने शत्रु के मित्र द्वारा हृदय-विदारक वचन सुने हैं जिससे मेरे पितृ-वध का दुःख, चिरकाल व्यतीत हो जाने पर भी, आज दूना हो गया है ।

यह सुनकर क्षपणक, अपना कार्य सफल समझकर, चला गया ।

मलयकेतु मानों आकाश में राक्षस को प्रत्यक्ष देखकर कहने लगा—राक्षस ! ठीक है, ठीक है । अपना मित्र समझकर, शांत चित्त-वृत्ति से विश्वास करके, पिताजी ने तुमको सब काम सौंप दिया । उन्हीं मेरे पिता को मारकर तुमने अपना राक्षस नाम यथार्थ कर दिया ।

भागुरायण ने सोचा कि चाणक्य का आदेश राक्षस के प्राण बचा लेने का है। इसी से उसने मलयकेतु से कहा—कुमार ! क्रोध मत कीजिए। नंद-राज्य प्राप्त होने तक तो इसे मिलाये रखना चाहिए। इसके अनंतर ग्रहण करना अथवा त्याग करना आप पर निर्भर है।

मलयकेतु ने यह मंत्रणा स्वीकार कर ली। उसने सोचा कि अमात्य का वध करने से प्रजा में क्षोभ होगा और विजय संदिग्ध हो जायगी।

इस समय एक सेवक, बिना प्रवेश-पत्र के जाते हुए, सिद्धार्थक को पकड़कर वहाँ लाया। उसने कुमार से निवेदन किया—इसके पास एक मुद्रित पत्र है। आप जाँच लें।

उसे देखकर भागुरायण ने कहा—यह आगंतुक है अथवा यहीं किसी का सेवक है ?

सिद्धार्थक—मैं अमात्य राक्षस का सेवक हूँ।

भागुरायण—तो बिना प्रवेश-पत्र लिये छावनी से क्यों जा रहे थे ?

सिद्धार्थक—कार्य के गौरव से मैंने शीघ्रता की है।

भागुरायण—वह कार्य का गौरव कैसा जो राज-शासन का उल्लंघन करता है ?

भागुरायण ने पत्र लेकर देखा और कहा—यह राक्षस के नाम की अंकित मुद्रा है।

मलयकेतु—मुद्रा को बचाकर पत्र खोलकर दिखाओ।

भागुरायण ने इसी प्रकार पत्र खोलकर मलयकेतु को दे दिया। मलयकेतु पत्र पढ़ने लगा। उसमें लिखा था—“स्वस्ति ! यथास्थान कहीं से कोई किसी विशेष पुरुष को सूचना देता है—हमारे प्रतिपत्नी (चाणक्य) का तिरस्कार कर सत्यवादी ने वर्णना-

दीत सत्यता दिखाई है। पहले संधि का प्रस्ताव करके मेरे इन मित्रों को संधि के बदले में जो वचन दिया था उसी की पूर्ति से प्रोत्साहित करके अब प्रीति उत्पन्न करनी चाहिए। ये भी ऐसे अनगृहीत होकर, स्वाश्रय के विनाश से, उपकारी का आश्रय लेंगे। सत्यवादी को स्मरण तो होगा ही, फिर भी मैं स्मरण कराता हूँ। इनके बीच कई पुरुष कोष और हाथियों के इच्छुक हैं तथा कई पुरुष देश के। सत्यवादी ने जो तीन अलंकार भेजे हैं वे मिल गये। मैंने भी पत्र को अशून्य करने के लिए कुछ भेजा है, उसे स्वीकार कीजिए। शेष वृत्त मेरे अत्यंत विश्वासी के मुख द्वारा सुनना।^{१३}

अब मलयकेतु ने भागुरायण से पूछा—मित्र ! यह कैसा लेख है ?

यही प्रश्न भागुरायण ने सिद्धार्थक से किया।

सिद्धार्थक—मैं नहीं जानता।

भागुरायण ने सेवक भासुरक से कहा कि इसे बाहर ले जाकर पीटो। सेवक उसे बाहर ले गया। कुछ समय के पश्चात् भासुरक ने आकर कहा—आर्य ! यह मुद्रित पेटी, उसे पीटते समय, उसकी काँख में से गिरी है।

पेटी देखकर भागुरायण ने कहा—कुमार ! इस पर भी राक्षस की मुद्रा अंकित है।

मलयकेतु—मित्र ! यह पत्र को अशून्य करने के लिए होगी। इसे भी मुद्रा बचाकर खोलो और दिखाओ।

भागुरायण ने पेटी खोलकर आभूषण दिखाये। मलयकेतु ने आभूषण देखकर कहा—अरे ! मैंने ये आभूषण अपने शरीर से उतारकर राक्षस को भेजे थे। स्पष्ट है कि यह पत्र चंद्रगुप्त के नाम है !

“कुमार ! यह संशय अभी मिटा जाता है ।” ऐसा उत्तर देकर भागुरायण ने भासुरक से कहा कि उसे और पीटो ।

कुछ ही क्षण में भासुरक, सिद्धार्थक को साथ लेकर, आया और कहने लगा—यह कुमार से ही निवेदन करेगा ।

सिद्धार्थक ने चरणों पर गिरकर अभय माँगा । मलयकेतु—भद्र ! पराधीन पुरुष को अभय ही है । जो बात हो, कहो ।

सिद्धार्थक—मुझे तो अमात्य राक्षस ने यह पत्र देकर चंद्रगुप्त के पास भेजा था ।

मलयकेतु—संदेश भी सुनाओ ।

सिद्धार्थक—कुमार ! अमात्य ने यह आदेश किया है—‘ये मेरे पाँच प्रिय मित्र राजा हैं जो तुम्हारे साथ स्नेह करते हैं । वे हैं कुलूत-राज चित्रवर्मा, मलयराज सिंहनाद, काश्मीर-राज पुष्कराक्ष, सिंधु-राज सिंधुसेन और पारसीक-राज मेघनाद । इनमें से पहले कहे हुए तीन राजा मलयकेतु के देश की इच्छा करते हैं, दूसरे दो राजा हाथी और कोष चाहते हैं । सो जैसे चाणक्य का तिरस्कार करके मेरी प्रीति उत्पन्न की है वैसे ही इनका भी, पहले वचन दिया हुआ, कार्य संपादन करना चाहिए ।’ इतना ही संदेश है ।

संदेश सुनकर मलयकेतु ने सोचा कि क्या चित्रवर्मा आदि भी मेरे साथ विद्रोह करते हैं अथवा उल्लिखित कारण से उनकी राक्षस पर अत्यंत प्रीति है !

अब मलयकेतु ने राक्षस को बुला भेजा ।

राक्षस इस समय, प्रस्थान के प्रबंध के लिए, यथोचित आज्ञा दे रहा था । कुमार का संदेश पाकर शीघ्र इधर आने लगा । आने से पहले उसने शकटदास से कहा—कुमार ने हमें आभूषण पहनाये हैं । सो बिना आभूषण पहने कुमार का दर्शन करना उचित नहीं । अतः जो तीन आभूषण खरीदे थे उनमें से एकदे दो ।

शकटदास एक आभूषण ले आया । उसे पहनकर राक्षस कुमार के पास गया । यथोचित अभिवादन आदि के अनंतर मलयकेतु ने कहा—आर्य ! आज अधिक विलंब से आपके दर्शन होने के कारण हम उद्विग्न हो रहे हैं ।

राक्षस—कुमार ! प्रस्थान के प्रबंध करने में लगे रहने के कारण मुझे आपसे यह उलाहना मिला है ।

मलयकेतु—मान्यवर ! प्रस्थान का क्या प्रबंध किया है ? सुनना चाहता हूँ ।

राक्षस—आपके अनुयायी राजाओं को यह आज्ञा दी है कि खस और मगध के सैनिक मेरे साथ आगे रहें; गांधार के सैनिक यवनों सहित मध्य में रहें; उनके पीछे शक राजा, चीनी और हूण सैनिकों सहित रहें, तथा अन्य कुलूत आदि राजा आपकी रक्षा करें ।

यह सुनकर मलयकेतु ने सोचा कि जो मेरा विनाश कर चंद्रगुप्त के प्रसन्न करने को उद्यत हैं क्या वे ही मुझे घेरे रहेंगे ! कुमार ने अब राक्षस से पूछा—मान्यवर ! कोई है जो कुसुमपुर के लिए जाता या आता है ?

राक्षस—अब आने-जाने का प्रयोजन समाप्त हो गया । थोड़े दिनों में हमी लोग वहाँ जायँगे ।

मलयकेतु—यदि ऐसा है तो आपने पत्र देकर इस पुरुष को किस कार्य से भेजा है ?

सिद्धार्थक को देखकर राक्षस ने कहा—अरे सिद्धार्थक ! यह क्या ?

सिद्धार्थक ने आँसू भरकर लज्जा दिखाते हुए कहा—अमात्य ! प्रसन्न हूँ । पीटे जाने पर मैं आपके रहस्य को छिपा न सका ।

राक्षस—भद्र ! कैसा रहस्य ? मैं तो जानता नहीं ।

“मैं निवेदन करता हूँ कि पिटने पर मैं.....।” इतना कहकर भय से सिर झुकाये सिद्धार्थक खड़ा रहा।

मलयकेतु—भागुरायण ! यह त्रस्त और लज्जित पुरुष अपने स्वामी के सामने कुछ न कहेगा। तुम्हीं इनसे कह दो।

भागुरायण—अमात्य ! यह कहता है कि अमात्य ने पत्र तथा संदेश देकर मुझे चंद्रगुप्त के पास भेजा है।

राक्षस—भद्र सिद्धार्थक ! क्या यह सत्य है ?
सिद्धार्थक ने लज्जा दिखाते हुए कहा—पिटने पर मैंने ऐसा कह दिया।

राक्षस—यह असत्य है। पिटने पर पुरुष क्या नहीं कह देता ?
मलयकेतु ने भागुरायण से कहा कि राक्षस को पत्र दिखा दो। पत्र दिखाया गया। राक्षस ने पत्र पढ़कर कहा—कुमार ! यह शत्रु की चाल है।

मलयकेतु—पत्र को अशून्य करने के लिए आपने ये आभूषण भी तो भेजे हैं। सो यह शत्रु की चाल कैसे है ?

आभूषण देखकर राक्षस ने कहा—कुमार ने ये आभूषण मेरे लिए भेजे थे। मैंने भी ये, किसी प्रसन्नता के कारण, सिद्धार्थक को दे दिये थे।

भागुरायण—ऐसे, विशेषकर कुमार के शरीर से उतारकर उपहार में दिये हुए, आभूषणों का यह दान-पात्र है ?

मलयकेतु ने आगे कहा—आपने लिखा है कि संदेश भी हमारे विश्वासपात्र से सुनना।

राक्षस—कैसा संदेश ? किसका संदेश ? पत्र ही हमारा नहीं है।

मलयकेतु—तो यह मुद्रा (मुहर) किसकी है ?

राक्षस—धूर्त लोग नकली मुद्रा बना लेते हैं।

भागुरायण—कुमार ! अमात्य ठीक कहते हैं। फिर उसने सिद्धार्थक से पूछा—यह पत्र किसने लिखा है ?

सिद्धार्थक पहले तो राजस के मुँह की ओर देखकर चुप खड़ा रहा; किंतु फिर पीटे जाने के भय से बोला—श्री शकटदास ने।

राजस—अदि शकटदास ने लिखा है तो मैंने ही लिखा है।

मलयकेतु ने शकटदास को बुलाने के लिए कहा।

भागुरायण ने अक्षर-परीक्षा के लिए शकटदास का केवल एक लेख ही मँगवाने को कहा। साथ में मुद्रा भी मँगवा ली। लेख आ जाने पर मलयकेतु ने दोनों पत्रों को देखकर कहा—अक्षर एक-से हैं।

यह सुनकर राजस ने सोचा—कदाचित् द्रव्य आदि के लोभ से, स्थायी यश की उपेक्षा कर, शकटदास ने स्वामि-भक्ति का विस्मरण करके पुत्र-स्त्री का स्मरण किया हो। निःसंदेह प्राणों की इच्छा से स्वामि-भक्ति से पराङ्मुख हुए शकटदास ने, भेद-नीति में कुशल शत्रुओं के साथ मिलकर, यह नीच चेष्टा की है।

मलयकेतु ने राजस की ओर देखकर मन में कहा कि 'तीन आभूषण 'जो श्रीमान् ने भेजे हैं वे मिल गये' ऐसा जो लिखा है उनमें से क्या यह एक है ? उस आभूषण को देखकर मलयकेतु ने सोचा कि क्या इसको पहले पिताजी ने पहना था ? फिर राजस से पूछा—यह आभूषण कहाँ से आया ?

राजस—बनियों से खरीदा है।

मलयकेतु ने दासी से पूछा—विजया ! तुम इस आभूषण को पहचानती हो ?

उसे देखकर विजयाने आँसू भरकर कहा—कुमार ! कैसे न पहचानूँगी ? तो इसे स्वनाम-धन्य महाराज पर्वतेश्वर पहना करते थे।

मलयकेतु की आँखों में आँसू आ गये। उसे पिता का स्मरण हो आया।

राक्षस ने भी मन-ही-मन कहा कि क्या इसे पहले पर्वतेश्वर ने पहना था ! तब तो यह स्पष्ट है कि ये आभूषण, चाणक्य के भेजे हुए, बनियों ने हमारे हाथ बेचे हैं ।

अब मलयकेतु ने राक्षस से पूछा—पिता के पहने हुए, और विशेषकर चंद्रगुप्त के हाथ लगे हुए, आभूषणों की प्राप्ति खरीदने से कैसे हो सकती है ? अथवा यह ठीक है कि अधिक लाभ की इच्छा से बेचनेवाले चंद्रगुप्त के लिए तुम क्रूर ने इन आभूषणों का मूल्य हमें बनाया है ।

राक्षस ने भी मन-ही-मन कहा—अहो ! यह शत्रु की सुगठित चाल है । पत्र को अपना न बताने से क्या होता है ; क्योंकि इस पर मुद्रा तो मेरी है । कैसे विश्वास करूँ कि शकटदास ने मित्रता तोड़ दी ? कौन मानेगा कि मौर्य राजा ने आभूषण बेचे हैं ? सो अब ठीक-ठीक कहना ही उचित है, न कि ग्राम्य उत्तर देना ।

मलयकेतु ने अब पत्र और आभूषण की पेटो दिखाकर पूछा—कहो, यह क्या है ?

राक्षस ने आँसू भरकर कहा—भाग्य का खेल ।

मलयकेतु ने क्रोध से कहा—क्या अब भी छिपाते हो ? कहते हो कि यह भाग्य का खेल है ; न कि लोभ का । कृतघ्न ! विश्वास के कारण तुम्हारा अनुगमन करते हुए पिताजी को तुमने, विष-कन्या के प्रयोग द्वारा, कथा-शेष कर दिया । अब अहित के गौरव से तुमने, मंत्रि-पद पाने के लिए, शत्रु के हाथ हमें मांस के समान बेचना आरंभ किया है ।

राक्षस ने मन-ही-मन कहा कि यह कोढ़ पर खाज है । फिर प्रकट कहा—हरे-हरे ! पर्वतेश्वर के लिए मैंने विष-कन्या प्रयुक्त नहीं की थी ।

मलयकेतु—तो पिता को किसने मार डाला ?

राक्षस—देव से पूछिए ।

मलयकेतु ने सक्रोध कहा—देव से पूछें और क्षपणक जीव-सिद्धि से न पूछें ?

राक्षस ने सोचा कि क्या जीवसिद्धि भी चाणक्य का दूत है ? हाय ! शत्रुओं ने मेरे हृदय को भी घेर लिया ।

अब मलयकेतु ने क्रोधपूर्वक भासुरक से कहा—शिखरसेन से कहो कि कुतून-राज चित्रवर्मा, मलयराज सिंहनाद, काश्मीर-राज पुष्कराक्ष, सिंधुराज सिंधुसेन और पारसीकराज मेघनाद, ये पाँचों राजा राक्षस के साथ मित्रता निभाते हुए, हमारा अनिष्ट करके, चंद्रगुप्त को प्रसन्न करना चाहते हैं । इनमें से पहले तीन राजा हमारी भूमि को कामना करते हैं; अतः उन्हें गहरे गढ़े में गाड़ दो । शेष दो राजा हाथियों के इच्छुक हैं; सो उन्हें हाथी के पैरों तले कुचलवा दो ।

मलयकेतु अब सक्रोध राक्षस से कहने लगा—राक्षस ! राक्षस !! मैं विश्वासवादी नहीं । राक्षस ! मैं मलयकेतु हूँ । सो जाओ, सब प्रकार से तुम चंद्रगुप्त का आश्रय लो ।

भागुरायण ने कुमार से कहा—व्यर्थ समय व्यतीत करने से क्या लाभ ? अब कुसुमपुर को घेरने के लिए हमारी सेनाएँ बढ़ें ।

भागुरायण आदि को साथ लेकर मलयकेतु चला गया ।

राक्षस चिंतित होकर सोचने लगा कि हाय ! बेचारे चित्रवर्मा आदि भी मारे गये । (सो राक्षस की चेष्टा मित्रनाश के लिए हो रही है, न कि शत्रु-नाश के लिए) अब मैं अभागा क्या करूँ ? क्या तपोवन को चला जाऊँ ? परंतु वैराभाव से भरे मन को वहाँ भी शांति कहाँ ? आत्मघात भी शत्रु के जीते जी कायरता है । शत्रु की सेना पर दूट पड़ना भी उचित नहीं, क्योंकि यदि मित्र चंदन-दास के छुटकारे का प्रयत्न नहीं करता तो मैं कृतघ्न बनता हूँ ।

—* ६ *—

मलयकेतु की आज्ञा से चित्रवर्मा आदि पाँच प्रधान राजा मार

डाले गये। यह देखकर, उसे अत्याचारी समझकर, मलयकेतु की कटकभूमि को छोड़, भय से व्याकुल शेष सैनिकों के साथ, भयभीत राजा तथा अन्य दुःखित-हृदय सामंत लोग अपने-अपने राज्य को चले गये। भद्रभट, पुरुषदत्त आदि ने मलयकेतु को बंदी कर लिया। तब चाणक्य ने, एक प्रबल सेना के साथ, पाटलिपुत्र से निकलकर अन्य राजाओं से परित्यक्त स्लेच्छ-सेना का नाश कर दिया।

इस भयानक संक्षोभ के समय, मलयकेतु के कटक से निकलकर, राक्षस पाटलिपुत्र चला आया। उदुंबर नाम का चर उसका पीछा कर रहा था। पाटलिपुत्र में राक्षस के फिर लौट आने का कारण चंदनदास का स्नेह था।

जीर्ण-उद्यान में राक्षस की उपस्थिति की सूचना उदुंबर से पाकर चाणक्य ने, राक्षस को देखने के लिए, एक पुरुष भेजा। इस समय शोकावेग से व्याकुल राक्षस दुःखित होकर एक चट्टान पर बैठा चिंता में लीन हो रहा था।

राक्षस को वहाँ बैठा देखकर वह पुरुष उधर चला आया। वह राक्षस के सामने, मानों उसे देखे बिना ही, अपने गले में फाँसी लगाने लगा। उस पर राक्षस की दृष्टि पड़ गई। उसे देखकर राक्षस ने सोचा कि यह भी मेरे समान कोई दुखिया है।

राक्षस ने उससे पूछा—यह क्या करते हो ?

पुरुष ने रोकर कहा—प्रिय मित्र के विनाश से दुःखित होकर हमारे जैसे मंदभाग्य का जो कर्तव्य है।

राक्षस—यदि अधिक गुप्त या महत्त्वपूर्ण बात न हो तो उसे सुनना चाहता हूँ।

पुरुष—महोदय ! कोई गुप्त या महत्त्व की बात तो नहीं है, परंतु वृत्तांत सुनाने का समय नहीं है।

राक्षस ने आग्रह किया।

तब वह पुरुष कहने लगा—यहाँ नगर में चंदनदास नाम का जौहरी है। विष्णुदास नाम का एक व्यक्ति चंदनदास का प्रिय मित्र है। वह मेरा मित्र आग में जल मरने के लिए नगर से निकल गया है। मैं भी उसकी मृत्यु सुनने से पहले अपना नाश करने के लिए यहाँ जीर्ण-उद्यान में आया हूँ।

यह सुनकर राक्षस को पूरा वृत्तांत जानने की इच्छा प्रबल हो गई। उसने विष्णुदास का आग में जल मरने का कारण सुनने का आग्रह किया।

पुरुष—यहाँ नगर में चंदनदास नाम का जौहरी है। विष्णुदास नाम का एक व्यक्ति चंदनदास का प्रिय मित्र है। मित्र-स्नेह के कारण विष्णुदास ने चंद्रगुप्त से प्रार्थना की—“राजन् ! मेरे घर में कुटुंब के पालन-पोषण के लिए पर्याप्त धन है। उसके बदले में प्रिय मित्र चंदनदास को मुक्त कर दीजिए” इस पर चंद्रगुप्त ने उत्तर दिया—“सेठ विष्णुदास ! मैंने धन के कारण चंदनदास को बंदी नहीं किया। उसने अमात्य राक्षस का कुटुंब छिपा रक्खा है। अनेक बार माँगने पर भी वह उसे नहीं सौंपता। सो राक्षस का कुटुंब सौंप देने पर उसका छुटकारा होगा, अन्यथा प्राण-दंड।” यह कहकर राजा ने चंदनदास को बंधन-स्थान में भेज दिया। सो विष्णुदास यह कहकर नगर से निकल गया है कि मित्र चंदनदास का समाचार सुनने से पहले मैं आग में जल मरता हूँ। मैं भी विष्णुदास का समाचार कान में पड़ने से पहले ही फाँसी लगाकर मरता हूँ। इसी लिए जीर्ण-उद्यान में आया हूँ।

राक्षस ने चंदनदास को छुड़ाने का निश्चय करके कहा—भद्र ! जाओ, विष्णुदास को आग में प्रवेश करने से बचाओ। मैं भी चंदनदास को मृत्यु से, इस तलवार के द्वारा, छुड़ाता हूँ।

पुरुष—“सेठ चंदनदास को जीवनदान करने की प्रतिज्ञा से

प्रकट होता है कि आप अमात्य राक्षस हैं। किंतु आप विपत्ति में फँस रहे हैं। मैं ठीक-ठीक आपको पहचान नहीं सकता। कृपया मेरा संदेह दूर करें।”

इतना कहकर वह पुरुष राक्षस के पैरों पर गिर पड़ा।

राक्षस—स्वामी के वंश-विनाश का अनुभव करनेवाला और मित्र की विपत्ति का हेतु दुर्गुहीत-नाम मैं यथार्थ में राक्षस हूँ। जाओ, समय नष्ट न करो। शीघ्र विष्णुदास से निवेदन करो कि यह राक्षस अपने प्राण देकर चंदनदास की रक्षा करता है।

पुरुष—अमात्य ! आपको हाथ में तलवार लिये देखकर घातक चंदनदास को तत्काल मार देंगे। आप तलवार लेकर न जायें।

इतना कहकर वह पुरुष शीघ्रता से चला गया। राक्षस भी शस्त्र त्यागकर मित्र-रक्षा के लिए चल पड़ा।

—❀ ७ ❀—

चंदनदास को दो चांडाल वध-स्थान में ले जा रहे थे। मार्ग में सेठ चंदनदास के अनेक मित्र उनकी इस दुर्दशा के प्रतिकार के लिए केवल आँसू गिराते हुए, दीन-मुख तथा रोने से भारी आँखें किये, किसी प्रकार अपने शरीर घसीटते हुए पीछे-पीछे जा रहे थे। चांडालों ने स्त्री-पुत्र आदि को विदा करने के लिए चंदनदास से कहा। स्त्री और पुत्र जाना नहीं चाहते थे। तब एक चांडाल ने दूसरे चांडाल से कहा—अरे विल्वपत्र ! चंदनदास को पकड़ लौ। कुटुंबो स्वयं ही चले जायँगे।

विल्वपत्र—अरे वज्रलोमा ! लो, मैं इसे पकड़ता हूँ।

वज्रलोमा चांडाल ने चंदनदास को अभी पकड़ा ही था कि मंत्री राक्षस वहाँ आ पहुँचा। उसने घातकों को चंदनदास का वध करने से रोक दिया।

विल्वपत्र = सिद्धार्थ

चंदनदास ने उसे देखकर कहा—अमात्य ! यह क्या ?

राक्षस—यह तुम्हारे सच्चरित्र के एक अंश का अनुकरण है ।

चंदनदास—अमात्य ! सारे प्रयास को ही निष्फल करते हुए आपने यह क्या कर डाला ?

राक्षस—मित्र ! मैंने स्वार्थ ही साधा है । उलाहना मत दो । फिर उसने अधिक वज्रलोमा से कहा—जाओ, दुरात्मा चाणक्य से कह दो कि जिसके लिए शिवि के यश को नीचा दिखाने वाले ये पूज्य भी प्राण-दंड को प्राप्त हुए हैं, वह मैं आ गया हूँ ।

चंदनदास को लिये चांडाल बिल्वपत्र वहाँ श्मशान में वृक्ष की छाया में खड़ा रहा । चांडाल वज्रलोमा राक्षस को चाणक्य के पास ले गया । इसके साथ चंदनदास की स्त्री और पुत्र भी चले गये ।

राक्षस को देखकर चाणक्य ने हर्ष से मन-ही-मन कहा—अरे ! ये महात्मा अमात्य राक्षस हैं जिन्होंने चिरकाल तक वृषल की सेना और मेरी बुद्धि को, अधिक जागने और अनेक प्रबंध आदि के क्लेशों से, परिश्रान्त कर रखा है । अब आगे बढ़कर उन्होंने राक्षस से कहा—अमात्य राक्षस ! मैं विष्णुगुप्त प्रणाम करता हूँ ।

राक्षस ने मन-ही-मन कहा—अब यह 'अमात्य' संबोधन तो लज्जादायक है । फिर प्रकट रूप से कहा—विष्णुगुप्त ! मुझे चांडालों ने छू लिया है । आप मेरा स्पर्श न करें ।

चाणक्य—अमात्य राक्षस ! ये चांडाल नहीं हैं । यह तो आपका पूर्व-परिचित सिद्धार्थक नाम का राजपुरुष है और दूसरा भी सिद्धार्थक नाम का राजपुरुष है । बेचारे शकटदास ने भी वह कपट-लेख बिना जाने-बूझे लिख दिया था ।

यह सुनकर राक्षस मन में शकटदास पर प्रसन्न हुआ ।

चाणक्य ने फिर कहा—हे वीर ! वृषल से आपका मेल करने के लिए ही भद्रभट आदि राजपुरुषों की, उस पत्र की, सिद्धार्थक

और तीनों आभूषणों की, आपके मित्र क्षणिक की, जीर्ण-उद्यान में गये हुए उस पुरुष की तथा सेठ चंदनदास के क्लेश की योजना की गई थी। सो यह वृषल तुम्हें देखने के लिए इच्छुक है। इसे देखो।

राक्षस ने उधर देखा तो सेवकों सहित राजा चंद्रगुप्त आ रहा था। राजा ने चाणक्य के पास आकर प्रणाम किया। चाणक्य ने कहा—वृषल ! तुम्हें दिए गए सब आशीर्वाद सिद्ध हो गये। ये अमात्य राक्षस आये हैं। सो इन मुख्य अमात्य को प्रणाम करो।

चंद्रगुप्त ने अमात्य राक्षस को प्रणाम किया।

राक्षस—राजन ! विजय प्राप्त करो।

राजा—आर्य ! गुरु चाणक्य और आप षड्गुणों की चिंता में सावधान रहें तो मैंने जगत् में क्या नहीं विजय किया ?

चाणक्य—अमात्य राक्षस ! तो आप चंदनदास का जीवन बचाना चाहते हैं ?

राक्षस—इसमें क्या संदेह ?

चाणक्य—अमात्य राक्षस ! बिना आपके शस्त्र ग्रहण किये, वृषल के अनुगृहीत होने में मुझे संदेह है। सो वास्तव में यदि आप चंदनदास की प्राण-रक्षा चाहते हैं तो यह शस्त्र ग्रहण कीजिए।

राक्षस—विष्णुगुप्त ! ऐसा मत कहिए। मैं तो उसे ग्रहण करने में विशेष रूप से अयोग्य हूँ जिसे आप ग्रहण कर चुके हैं।

चाणक्य—अमात्य राक्षस ! बिना शस्त्र-ग्रहण किये चंदनदास की जीवन-रक्षा संभव नहीं।

अब राक्षस विवश हो गया। फिर मित्र-स्नेह के कारण उसने कहा—विष्णुगुप्त सब कुछ करने के लिए मित्र-स्नेह को मैं प्रणाम करता हूँ। और उपाय ही क्या है ? मुझे आपका प्रस्ताव स्वीकार है।

चाणक्य ने हर्ष से शस्त्र सौंपकर कहा—वृषल ! वृषल !!

अमात्य राजस ने मुझे अनुगृहीत किया। सौभाग्य से तुम्हारी वृद्धि है।

राजा — चंद्रगुप्त आपकी कृपा का अनुभव करता है।

इस समय एक पुरुष ने आकर निवेदन किया कि भद्रभट और भागुरायण आदि ने मलयकेतु के हाथ-पाँव बाँध लिए हैं। वह उसी दशा में द्वार पर लाया गया है। उसके लिए क्या आज्ञा है ?

चाणक्य — अमात्य राजस से निवेदन करो। जो उचित समझें, वे ही करें।

राजस ने सोचा कि देखो कौटिल्य कैसे अपने वश में करके अब मुझसे आज्ञा दिलवाता है। क्या गति है! फिर प्रकट में कहा — राजन् चंद्रगुप्त ! यह आपको विदित ही है कि हम मलय-केतु के साथ कुछ समय तक रह चुके हैं। सो इसके प्राणों की रक्षा होनी चाहिए।

राजा ने चाणक्य के मुख की ओर देखा।

चाणक्य — वृषल ! अमात्य राजस की पहली प्रार्थना स्वीकार करनी चाहिए। फिर उस पुरुष से कहा — हमारी ओर से भद्रभट आदि से कहो कि अमात्य राजस आज्ञा देते हैं कि राजा चंद्रगुप्त मलयकेतु को उसके पिता का राज्य देते हैं। अतः उसके साथ जाकर तुम उसे सिंहासन पर बैठाकर फिर लौट आना।

चाणक्य ने यह भी आज्ञा दी कि सेठ चंदनदास को मुख्य श्रेष्ठी का पद दिया गया है।

चाणक्य और चंद्रगुप्त की प्रतिज्ञा पूर्ण हो गई; राजस ने मौर्यराज चंद्रगुप्त का मंत्री-पद स्वीकार कर लिया।

वेणी-संहार

—* १ *—

बारह वर्ष के वनवास और एक वर्ष के अज्ञातवास की प्रतिज्ञा पांडवों ने पूरी कर दी। अब दुर्योधन को उनका राज्य लौटा देना चाहिए था; परंतु उसने ऐसा करना स्वीकार न किया। युद्ध प्रत्यक्ष दिखाई देने लगा। युद्ध-रूपी प्रलयाग्नि को शांत करने के लिए श्रीकृष्ण ने संधि कराने का भार स्वयं अपने ऊपर लिया। वे संधि कराने के लिए, पांडवों की ओर से, कौरवों के पास गये।

युधिष्ठिर की संधि की इच्छा सुनकर भीम को अत्यंत क्रोध हुआ। उनके हृदय को दुर्योधन के नाना प्रकार के अत्याचार बेधने लगे। भोजन में विष देना, लाख के घर में जलाने का प्रयत्न करना, जुए में धोखा देना, भरी सभा में केशाकर्षण और वस्त्र-हरण द्वारा द्रौपदी को अपमानित करना, आदि घटनाएँ भीम कब भूल सकते थे? सहदेव के शांत करने पर भी उनके क्रोध की आग भभक उठी।

भीम कहने लगे—कौरवों के साथ होनेवाली संधि को मैं, जरासंध की छाती की नाई, फाड़ दूँगा। तुम लोग मेल करो।

सहदेव ने नम्रता से कहा—भाई! इतना क्रोध करने से कदाचित् राजा आपके ऊपर खिन्न हो जायँ।

भीम ने ताने से कहा—राजा खिन्न होंगे? क्या उन्हें खेद का ज्ञान है? राजसभा में द्रौपदी की दुर्दशा देखकर तो वे टस से

अज्ञान लक्ष्मी

मस न हुए; बारह वर्ष बल्कल पहनकर वनों में किरातों के साथ रहे, और अज्ञातवास के समय विराट-नगर में गुप्त रहकर उन्होंने न करने योग्य भी काम किये; परंतु उन्हें न तो कभी दुःख हुआ, न रोष। अब वे मेरे ऊपर क्रोध करेंगे किंतु कौरवों पर अब भी नहीं! सो सहदेव, तुम जाकर मेरी ओर से राजा से निवेदन कर दो कि मैं, समय अधिक व्यतीत होने पर, क्रोध से भड़ककर कहता हूँ—आज मैं आपके आज्ञालंघन के पाप में डूबा रहूँगा और आपके आज्ञाकारी भाइयों की निंदा का पात्र बनूँगा। क्रोध से चलायमान, रक्त से लाल गदा घुमाते हुए—कौरवों को मारते समय—आज के दिन न तुम मेरे बड़े भाई हो और न मैं तुम्हारा आज्ञाकारी हूँ। जाओ, उनसे यही निवेदन कर दो। मैं भी शस्त्र-गृह में शस्त्र लेने जाता हूँ।

भीम क्रोधवश तो थे ही। वे शस्त्रगृह के बदले द्रौपदी के भवन में चले गये।

सहदेव—भाई! यह तो द्रौपदी का भवन है।

द्रौपदी का भवन सुनकर भीम प्रसन्न हुए और सहदेव को भी साथ ले गये। उस समय वहाँ द्रौपदी न थीं। भीम ज़मीन पर ही बैठ गये।

सहदेव—भाई! यह आसन बिछा है। इस पर बैठकर 'कृष्णागमन' (द्रौपदी के आने) की प्रतीक्षा करो।

'कृष्णागमन' से भीम ने कृष्ण के आने का तात्पर्य समझकर सहदेव से पूछा—किस शर्त पर श्रीकृष्ण संधि करने के लिए वहाँ गये हैं?

सहदेव—पाँच गाँव मिलने की शर्त पर। भीम के तो होश उड़ गये। वे बोले—अज्ञातशत्रु का तेज इतना क्षीण हो गया! मेरा हृदय काँप रहा है। क्या किया जाय? जो अत्युग्र चात्र तेज

महाराज ने संग्रह किया था वह सब पाँसों से खेलते समय निःसंदेह गँवा डाला ।

इस समय द्रौपदी लंबी साँसें लेती हुई, आँखों में आँसू भरे, वहाँ आ गई । उन्हें वैसे देखकर सहदेव ने समझ लिया कि आज अवश्य भाई की क्रोधाग्नि भभक उठेगी । भीम अपने क्रोध और चिंता में इतने डूबे थे कि द्रौपदी का अभिवादन भी न सुन सके । वे अपनी धुन में ही बोलने लगे—“जो अत्युग्र क्षात्र-तेज महाराज ने संग्रह किया था वह सब पाँसों से खेलते समय निःसंदेह गँवा डाला ।”

द्रौपदी भीम को क्रुद्ध देखकर प्रसन्न हुई और उनका वार्त्ता-लाप सुनने लगीं ।

भीम ने फिर क्रोध और तिरस्कार से कहा—क्या ? पाँच गाँव लेकर संधि ? क्या मैं क्रोध से संग्राम में धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों को न मारूँगा ? क्या दुःशासन के हृदय कारक-पान न करूँगा अथवा क्या गदा से सुयोधन की जंघाएँ न तोड़ूँगा ? इस मूल्य पर तुम्हारे राजा भले ही संधि कर लें ।

ये उत्तेजना भरे वचन सुनकर द्रौपदी प्रसन्न हुई । उन्होंने समझा कि अब मेरे अपमान का प्रतिकार शीघ्र होगा ।

सहदेव ने भीम को शांत करने के अभिप्राय से कहा—आप क्या महाराज के संदेश का गूढ़ार्थ नहीं समझे ?

भीम—इसमें गूढ़ार्थ कौन-सा है ?

सहदेव—राजा युधिष्ठिर ने सुयोधन को कहला भेजा है कि इंद्रप्रस्थ, वृकप्रस्थ, जयंत, वारणावत और कोई पाँचवाँ गाँव दे दें ।

भीम के इसका तात्पर्य पूछने पर सहदेव ने बताया कि पाँचवें गाँव का नाम न लेकर केवल चार गाँवों का ही नाम लेने से

उनसे संबंध रखनेवाली आपत्तियों का—अर्थात् विषयुक्त भोजन, लाक्षागृह-दाह, जुआ, देश-निर्वासन आदि घटनाओं का—स्मरण कराया है। ऐसा करने से लोक में महाराज की स्ववंशजों के साथ युद्ध करने में उदासीनता प्रकट होगी और कौरवों की संधि न करने की इच्छा भी दिखेगी। भीम ने ऐसी बातों को निरर्थक समझा।

भीम ने कहा—कौरवों से संधि न करने की इच्छा उसी समय प्रकट कर दी गई थी जब हमने वन जाने के समय सारे कौरव-कुल का नाश करने की प्रतिज्ञा की थी। इस संसार में भी धृतराष्ट्र के कुल का क्षय क्या तुम्हारे लिए लज्जादायक है ? मूढ़ ! क्रोध से इस लोक में शत्रु-कुल का क्षय तो तुम्हें लज्जित करता है परंतु सभा में पत्नी का केशाकर्षण लज्जित नहीं करता ?

इस समय द्रौपदी ने मन-ही-मन कहा—नाथ ! उन्हें लज्जा कहाँ ? तुम भी भूल न जाना।

यह समझकर कि द्रौपदी अभी नहीं आई, भीम संग्राम में जाने की शीघ्रता से बोले—वत्स ! द्रौपदी अभी तक नहीं आई ?

सहदेव—भाई ! द्रौपदी तो बड़ी देर से यहाँ खड़ी हैं। आपने उन्हें आते देखा नहीं।

द्रौपदी को देखकर भीम ने कहा—देवी ! क्रोधवश मैंने तुम्हें आते नहीं देखा। क्रोध मत करना।

द्रौपदी—नाथ ! मुझे आपके उदासीन होने पर क्रोध आता है, न कि कुपित होने पर।

भीम—यदि ऐसा है तो जान लो कि तुम्हारे तिरस्कार का प्रतिकार हो गया।

भीम ने द्रौपदी को पास बैठा लिया; उन्हें व्याकुल देखकर पूछा—आज तुम व्याकुल क्यों हो ?

द्रौपदी ने दासी को नये अपमान का निवेदन करने को कहा । दासी कहने लगी—कुमार ! आज तो महारानी का, केशा-कर्पण आदि के तिरस्कार से भी अधिक, अपमान हुआ है । आज माता कुंती और सुभद्रा आदि सपत्नियों सहित महारानी गांधारी की चरण-वंदना के लिए, गई थीं । लौटते हुए भानुमती ने देख लिया । तब उसने इनकी ओर दृष्टि करके, और कुछ हँसकर, सगर्व कहा—द्रौपदी ! सुना है कि वे पाँच गाँव माँगते हैं । सो अब भी तुम्हारे केश क्यों नहीं बँधते ?

यह सुनकर भीम जल-भुन गये । पूछने लगे—तब द्रौपदी ने क्या कहा ?

दासी ने कहा—मैं तो साथ थी । रानी के चुप रहने पर मैंने कहा—“हे भानुमती ! तुम्हारे केश बिना खुले हमारी रानी के केश कैसे बाँधे जा सकते हैं ?”

भीम को यह उत्तर संतोषजनक प्रतीत हुआ । उन्होंने दासी को धन्यवाद दिया और द्रौपदी से कहा—दुःख मत करो; मैं थोड़े समय में ही गदा से दुर्योधन की जंघा तोड़कर, रक्त से सने हाथों से, तुम्हारी वेणी गूँथूँगा ।

द्रौपदी ने उत्तेजित होकर कहा—नाथ ! आपके कुपित होने पर क्या कठिन है ? पर आपके भाई यह कार्य स्वीकार करें तब तो ?

उत्तेजित होकर सहदेव ने भी भीम का साथ देना स्वीकार कर लिया ।

इस समय युधिष्ठिर के कंचुकी जयंधर ने आकर निवेदन किया कि पांडवों के पक्षपात से क्रोधित होकर दुर्योधन ने कृष्ण भगवान् को बंदी करने की इच्छा की थी । तब उन्होंने अपना विश्व-रूप दिखलाकर, अपने तेज से, कौरवों को मूर्च्छित कर दिया । अब महाराज आपको शीघ्र देखना चाहते हैं ।

अब तो संधि की आशा सर्वथा जाती रही। युद्ध की तैयारी आरंभ हो गयी। युधिष्ठिर भी अब युद्ध के लिए सहमत हो गये थे। युद्ध की तैयारी देखकर भीम प्रसन्न हुए।

—❀ २ ❀—

महाभारत का युद्ध आरंभ हो गया। दोनों पक्षों के सहस्रों योद्धा वीरगति को प्राप्त हुए। भीष्म पितामह ने भी शर-शय्या ग्रहण की। अब कौरवों के सेनापति द्रोणाचार्य हुए। उन्होंने ऐसा व्यूह रचा जिसमें कोई प्रवेश नहीं कर सकता था। परंतु कौरव-दल का संहार करता हुआ अभिमन्यु उस व्यूह में प्रवेश कर गया। जयद्रथ आदि कई वीरों ने निःसहाय अभिमन्यु पर आक्रमण किया। अंत में वह मारा गया। अभिमन्यु का वध सुनकर दुर्योधन को असीम हर्ष हुआ। वह, जयद्रथ आदि वीरों का सत्कार करने के लिए, युद्धभूमि में जाने लगा। जाने से पहले उसने भानुमती से मिलना चाहा। उसने कंचुकी विनयंधर को यह जानने के लिए भेजा कि भानुमती इस समय कहाँ हैं।

विनयंधर को ज्ञात हुआ कि सासों की चरण-वंदना से निपटकर भानुमती इस समय बालोद्यान में बैठी हैं। यह सूचना पाकर वह दुर्योधन को कहने के लिए वापस चला आया। मार्ग में चलते-चलते वह दुर्योधन के भविष्य के लिए शंका करने लगा। उसे दुर्योधन का व्यवहार अनुचित प्रतीत होता था। भीष्म जैसे योद्धा की मृत्यु के सामने बालक अभिमन्यु का वध क्या प्रसन्नता का कारण हो सकता था!

भानुमती की सूचना पाकर दुर्योधन, विनयंधर के साथ बातचीत करता हुआ, बालोद्यान की ओर चल पड़ा। दुर्योधन द्वारा जयद्रथ आदि के सत्कृत होने के विषय में विनयंधर ने कहा—

यह द्रोणाचार्य, कर्ण अथवा जयद्रथ के शस्त्रों के प्रभाव के आगे कौन-सा कठिन कार्य है ? फिर प्रशंसा कैसी ?

दुर्योधन—विनयंधर ! तुम कहते हो कि अकेले बालक का धनुष जब बहुत-से योद्धाओं ने तोड़ डाला तब वह मारा गया । सो यहाँ कौरवों की क्या प्रशंसा ? मूढ़ ! देखो, शिखंडी को आगे करके वृद्ध भीष्म के मारने पर जैसी प्रशंसा पांडवों की हुई, वैसी ही हमारी होगी ।

विनयंधर ने लज्जित होकर कहा—महाराज ! मेरा तात्पर्य यह नहीं था । किंतु मैंने पहले आपके पराक्रम में बाधा देखी नहीं थी । इसी कारण ऐसा कहा ।

दुर्योधन—सुनो, युद्ध में अपने बल से सेवकों और भाई-बंधुओं सहित दुर्योधन का पांडुपुत्र शीघ्र ही नाश करेगा ।

विनयंधर—परमात्मा न करे ! महाराज ! आपने 'पांडुपुत्र का' कहने के बदले 'दुर्योधन का' उलटा कह डाला ।

अब दुर्योधन बालोद्यान में पहुँच गया, जहाँ भानुमती बैठी थी । विनयंधर को युद्ध के लिए रथ तैयार कराने को भेजकर वह स्वयं भानुमती की ओर बढ़ा ।

उधर भानुमती अपनी सखियों के साथ बालोद्यान में बैठी, रात के स्वप्न के विषय में, बातचीत कर रही थी । सखी ने उसे धीरज देते हुए कहा—रानीजी ! आप अभिमानी महाराज की पटरानी हैं । इस स्वप्न-मात्र के देखने से धीरज छोड़कर आप ऐसी दुःखित क्यों हो रही हैं ?

भानुमती—सखी ! करूँ क्या ? मुझे तो यह स्वप्न बड़ा ही अशुभ जान पड़ता है ।

सखी—प्रिय सखी ! यदि ऐसा है तो वह स्वप्न सुनाओ जिससे हम उसके दोष-निवारण का उपाय करें ।

स्वप्न सुनाने से पहले भानुमती मन में सारे स्वप्न का सिंहा-
वलोकन करने लगी ।

कुछ देर रुककर भानुमती मन में स्वप्न की पुनरावृत्ति करके
बोली—हाँ सखी, स्मरण आ गया । मैं आज प्रमदावन में बैठी
थी कि मेरे आगे एक दिव्य नकुल ने सौ साँपों को मार डाला ।

सखियाँ—तब फिर ?

इसी समय दुर्योधन भी वहाँ पहुँच गया । उन्हें कुछ मंत्रणा
करते देखकर वह छिपकर उनकी बातचीत सुनने लगा ।

भानुमती—सखी ! तब मैं दिव्यरूपी अति सुंदर नकुल को
देखकर उसके दर्शन के लिए उत्कंठित हो गई ।

दुर्योधन ने ये वचन सुन लिये । वह सोचने लगा—‘क्या ?
अति सुंदर दिव्यरूपी नकुल को देखकर उसके दर्शन के लिए
उत्कंठित हो गई !’ तो क्या माद्री के पुत्र पर अनुरक्त इस पापिनी
ने हमें ठग लिया । मूढ़ ! अपने आपको बहुत माननेवाला, इस
कुलटा से ठगा गया, दुर्योधन अपने को क्या कहेगा ? इसीलिए
इसको प्रातःकाल से ही एकांत स्थान की इच्छा है और यह
सखियों से बातचीत में लगी है ।

सखी—फिर क्या हुआ ?

भानुमती—तब मैं शीघ्र वासस्थान से इस लता-पुंडप को चली
आई । तब वह भी, मेरा पीछा करता हुआ, यहाँ आ गया ।

दुर्योधन—ओह ! इस कुलटा का दुश्चरित्र तो वेश्या जैसा है ।

भानुमती—तब उसने गर्व के साथ मेरी ओर हाथ फैलाया ।

यह सुनकर दुर्योधन को अधिक क्रोध आ गया । वह कहने
लगा—अब इससे अधिक और क्या सुनूँगा ? तो पहले
पर-स्त्री पर अनुचित साहस करनेवाले ढीठ उस दुष्ट माद्रीपुत्र का
नाश करूँ अथवा इसी पापशीला को पहले दंड दूँ !

उधर भानुमती ने कहा—तब मैं स्वामी के जगाने के प्रातः-काल के मंगल-गान से जाग उठी ।

दुर्योधन ने अब समझा कि यह तो स्वप्नावस्था की दशा का वर्णन कर रही है । अब उसका सारा संदेह जाता रहा । उसने समझा कि मेरे भाग्य अच्छे थे जो कुछ अनुचित चेष्टा नहीं कर बैठा, अथवा कुछ अनुचित नहीं कह डाला । अधूरी बात सुनकर मैंने और ही अर्थ निकाला था ।

स्वप्न के विषय में सखियों ने भी कहा कि यह स्वप्न तो अशुभ ही है । स्वयं दुर्योधन ने भी यही सोचा । यद्यपि उसकी बाई आँख फड़कने लगी, तथापि भानुमती की झूठी शंका हटाने के लिए उसने आगे बढ़ने का निश्चय किया ।

इस समय भगवान् सूर्य का उदय हो चुका था । सखियों ने सूर्य भगवान् को अर्घ्य देने के लिए कहा । दासी से अर्घ्य मँगाकर भानुमती सूर्यदेव को देने लगी । देवताओं की पूजा के लिए फूल चढ़ाना अभी रहता था कि, भानुमती के फूल माँगने पर, राजा ने संकेत से सखियों को अलग हटाकर फूल स्वयं ले लिये । परंतु फूल उसके हाथ से गिर गये । फूल आगे गिरे देखकर, पीछे बिना देखे ही, भानुमती ने क्रोध से कहा—ओह, दासियों की असावधानता ! परंतु पीछे महाराज को देखकर वह लज्जित हो गई ।

दुर्योधन—महारानी ! यह सेवक ऐसी सेवा में चतुर नहीं ।

भानुमती ने लज्जित होकर कहा—महाराज ! यदि आप आज्ञा दें तो मैं कोई यम-नियम करना चाहती हूँ ।

राजा—मैंने तुम्हारे स्वप्न का पूरा वृत्तांत सुन लिया है । सो प्रवृत्ति से सुकुमार शरीर को, शंका करके, दुर्बल न करो ।

भानुमती—मुझे शंका अधिक व्याकुल कर रही है । सो आप मुझे स्वीकृति दें ।

राजा ने सगर्व कहा—देवी ! शंका मत करो । क्या मेरी चतुर-
गिणी सेना ने पृथ्वी को अपने प्रभाव से कंपित नहीं कर दिया ?
यदि तुम इस प्रकार हतोत्साह होती हो तो द्रोण और कर्ण के बाणों
से क्या लाभ ? हे भीरु ! तुम तो सिंह-सदृश साहसी दुर्योधन की
स्त्री हो, जो कि सौ भाइयों के भुज-रूप वन की छाया से सुखी है ।
तुम्हें शंका को कहाँ स्थान ?

इस प्रकार दुर्योधन उसे धीरज दे रहा था कि आँधी का एक
प्रबल भौंका आया । भानुमती डरकर राजा से चिपट गई ।
आँखों में धूल पड़ने लगी । दोनों तब दारुपर्वतवाले भवन में चले
गये । वहाँ एक चट्टान पर दोनों बैठ गये । दुर्योधन ने कहा—
तुम्हारे बैठाने को समर्थ हैं मेरी दोनों जाँघें ।

इतना कहा ही था कि घबराया हुआ विनयंधर वहाँ आया—
और कहने लगा—देव ! टूट गई, टूट गई ।

सब भयभीत हो गये ।

दुर्योधन—क्या टूट गई ?

विनयंधर—भीम ने तोड़ दीं ।

दुर्योधन—अरे ! क्या बक रहा है ?

विनयंधर—भीम पवन ने आपकी रथ-ध्वजा तोड़ दी और
बंटियाँ, विलाप के समान शब्द करती हुई, गिर पड़ी हैं ।

इस पर दुर्योधन ने कहा—भीम पवन से पृथ्वी के काँपने पर
रथ-ध्वजा टूट गई जानकर उन्मत्त हुआ 'टूट गई', टूट गई' क्यों
चिल्ला रहा है ?

विनयंधर—कुछ नहीं, केवल ध्वजा टूटने के असगुन की
शांति के लिए प्रार्थना करने को स्वामि-भक्ति ने मुझे शीघ्र क्रो-
धी को उकसाया है ।

भानुमती ने इस असगुन की शांति कर देने के लिए राजा

से कहा । दुर्योधन ने विनयधर द्वारा सुमित्र पुरोहित को बुला भेजा ।

इस समय जयद्रथ की माता और दुःशला आईं । दोनों रोती हुई दुर्योधन के पैरों पर गिर पड़ीं । वे जयद्रथ की रक्षा के लिए व्याकुल हो रही थीं । अभिमन्यु की मृत्यु से क्रुद्ध होकर अर्जुन ने प्रतिज्ञा की थी कि मैं जयद्रथ को सूर्यास्त से पहले ही मार डालूँगा । रोती हुई जयद्रथ की माता ने अर्जुन की प्रतिज्ञा कह सुनाई ।

दुर्योधन ने मुस्कराकर कहा—बस, यही रोने का कारण है ? पुत्रशोक से संतप्त हुए अर्जुन का प्रलाप सुनकर आपकी यह अवस्था हो गई ! आप व्याकुल न हों, आँसू बंद करें । भला महारथी दुर्योधन की भुजाओं से रक्षा किये गये जयद्रथ को दुःख देने की अर्जुन में शक्ति कहाँ ?

जयद्रथ की माता—वे उदीप्त क्रोधवाले वीर, पुत्र और बंधु आदि की मृत्यु से अपने प्राणों की उपेक्षा करके, इधर-उधर फिर रहे हैं ।

यह सुनकर दुर्योधन हँस पड़ा और कहने लगा—पांडवों का क्रोध संसार में विख्यात है । जब भरी सभा में द्रौपदी के केश और बस्त्र खींचे गये तब क्या गांडीवधारी अर्जुन वहाँ न था ? क्या वह अवसर क्षत्रिय युवा के लिए क्रोध दिखाने का न था ?

जयद्रथ की माता—अर्जुन ने कहा है कि यदि प्रतिज्ञा पूरी न हुई तो प्राण त्याग दूँगा ।

अब तो दुर्योधन प्रसन्न होकर कहने लगा—यदि ऐसा है तो अर्जुन के स्थान पर आप दुःख क्यों करती हैं ? समझ लीजिए कि भाइयों सहित युधिष्ठिर नष्ट हो गये । सुनिए माताजी ! सौ कुरु-पुत्रों के परिवार के कारण अधिक महिमावाले, कृपाचार्य,

द्रोणाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा आदि वीरों के कारण दुर्गमी हो रही शक्तिवाले, प्रसिद्ध विक्रमी जयद्रथ का नाम ले सकने की भी अर्जुन या और दूसरे किसी में सामर्थ्य है ? क्या आप अपने पुत्र के पराक्रम को नहीं जानती ? युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव की तो कुछ गिनती नहीं; अर्जुन और भीम में से भी सिंधुराज जयद्रथ के बाणों को सहने में कौन समर्थ है ? दुःशासन के हृदय के रुधिर पाने की अथवा गदा द्वारा दुर्योधन की जंघाएँ तोड़ने की भीम की प्रतिज्ञाओं में से कोई भी पूरी हुई, जो यह पूरी होगी ?

दुर्योधन इस प्रकार दुःशला और जयद्रथ की माता को धीरज देकर स्वयं युद्ध-क्षेत्र को चला गया। वह चाहता था कि अपनी प्रतिज्ञा पूरी न कर सकने पर अर्जुन स्वयं ही प्राण त्याग कर दे तो बहुत अच्छा हो।

—* ३ *—

अर्जुन ने युद्ध में अपूर्व वीरता दिखाई; उन्होंने दिन का अंत होते-होते जयद्रथ को मार डाला। धृष्टद्युम्न भी द्रोण के केश खींचकर उन्हें मारने लगे।

इसी समय एक ओर से क्रुद्ध हुआ अश्वत्थामा, नंगी तलवार लिये, आ रहा था। उसका ध्यान युद्धभूमि में उठे हुए कोलाहल की ओर खिंच गया। वह सोचने लगा कि अवश्य मेरे पिता ने—अर्जुन, सात्यकि अथवा भीम से उत्तेजित होकर—अपने शिष्यों के प्रति मोह त्यागकर यथोचित शक्ति दिखाना आरंभ किया है। ऐसा विचार कर अश्वत्थामा स्वयं भी उधर चल पड़ा। मार्ग में भागती हुई सेना को वह धीरज देने लगा। परंतु द्रोण के सारथि ने आकर उसे बताया कि द्रोणाचार्य का देहांत हो गया। यह सुनकर अश्वत्थामा मूर्च्छित हो गया। सचेत होने पर वह कुछ

समय तक विलाप करता रहा। इसके अनंतर सारथि से पूछने लगा—शौर्य के समुद्र मेरे पिता का देहांत कैसे हुआ ? क्या भीम ने गुरु-दक्षिणा के रूप में मेरे पिता को गदा से मार डाला, अथवा अर्जुन ने उनका वध किया, अथवा कृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र द्वारा उनके प्राण हरण किये ?

सारथि—जब तक वे शस्त्र-अस्त्र से सुसज्जित थे, भला उनके सामने ये क्या फटक सकते थे ? शोक-संतप्त होकर उन्होंने जब शस्त्र त्याग दिये तब शत्रु ने यह घोर कर्म किया।

अश्वत्थामा ने शोक का कारण पूछा तो सारथि ने बताया कि सत्यवादी युधिष्ठिर ने जब स्पष्ट रूप से कहा कि ‘अश्वत्थामा मारा गया’—और अस्पष्ट रूप से कहा ‘हाथी या मनुष्य’ तब आचार्य ने ‘हाथी या मनुष्य’ नहीं सुना। उन्होंने युधिष्ठिर के वचन को सत्य मानकर अस्त्र और आँसू एक साथ गिरा दिये।

यह जानकर कि पिता ने मेरे लिए प्राण खो दिये, अश्वत्थामा को और भी शोक हुआ और वह मूर्च्छित हो गया।

इस समय अश्वत्थामा को दूँदते हुए कृपाचार्य भी वहाँ आ गये। सचेत होने पर अश्वत्थामा रोता हुआ युधिष्ठिर को बिकारते हुए कहने लगा—युधिष्ठिर ! तुमने आजन्म कभी झूठ नहीं कहा। तुम किसी से द्वेष नहीं करते हो, इस कारण अज्ञानशत्रु कहलाते हो। परंतु मेरे भाग्य के दोष से पिता, गुरु और श्रेष्ठ ब्राह्मण के लिए तुम्हारे ये सब गुण कैसे सहसा नष्ट हो गये ?

फिर मामा कृपाचार्य को देखकर अश्वत्थामा की शोकाग्नि और बढ़ गई। क्षण भर के लिए भी उसे जीवन भारी हो गया।

इसी समय एक और से शब्द सुनाई दिया कि ‘धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्य का शिर काटकर जा रहा है, कोई बदला क्यों नहीं लेता ?’

अश्वत्थामा उत्तेजित होकर कहने लगा—हा पिता ! हा पुत्र-प्रेमी ! मुझ अभाग के लिए शस्त्र त्याग देने पर आप क्षुद्र पुरुष से इस प्रकार तिरस्कृत हुए । जब युद्धभूमि में सबसे आगे खड़े होकर शोक-संताप के कारण आपने शरीर त्याग दिया तब कुत्ता, कौवा अथवा द्रुपद का पुत्र कोई भी उसे स्पर्श कर सकता था । हे दुरात्मा पांचाल-कुल-कलंक ! पिताजी के शस्त्र त्याग देने पर क्या तुमने यह नहीं जाना था कि अश्वत्थामा धनुर्बाण लिए आता है ? ओह युधिष्ठिर ! युधिष्ठिर ! अजात-शत्रु, अमिथ्यावादी, धर्मपुत्र ! मेरे पिता ने तुम्हारा या तुम्हारे भाइयों का क्या अपकार किया था ? अथवा उस मिथ्या प्रकृति-वाले कपटी को क्या कहना ? अर्जुन, सात्यकि, भीम, माधव ! तुम लोगों को क्या यह उचित था कि सुरलोक, असुरलोक तथा नरलोक में धनुर्धारी वृद्ध ब्राह्मण जगद्गुरु मेरे पिता के सिर को नीच धृष्टद्युम्न से स्पर्श किये जाते समय तुम सब उपेक्षा करते रहे ! अथवा ये सब पातकी हैं । इनका क्या ? जिसने भी यह महापातक देखा, किया, कराया या इसमें अनुमति दी—कृष्ण, भीम, अर्जुन सहित—उन सबके रुधिर-मांस से मैं दिशाओं को बलि दूँगा ।

कृपाचार्य ने भी उत्तेजित करने के लिए कहा—वत्स ! भारद्वाज के तुल्य बाहुबलवाले, दिव्यास्त्र-समूह में निपुण, तुम क्या नहीं कर सकते ?

अश्वत्थामा ने उत्तेजित होकर फिर कहा—ओह दुष्ट पांडवों ! क्षत्रियों ! पिता के सिर का स्पर्श होने पर जल रही आग के समान परशुवाले राम ने जो कर्म किया था, वह क्या तुमने नहीं सुना ? क्या आज क्रोधांध अश्वत्थामा अपने शत्रुओं के रक्त-मांस हिसक जीवों को खाने के लिए देने में असमर्थ है ?

कृपाचार्य—वत्स ! तुम्हारे बिना इस भयानक तिरस्काररूपी

आग से कौन रक्षा कर सकता है ? इसका बदला अश्वत्थामा लेना चाहिए । मेरी इच्छा है कि तुम युद्धक्षेत्र में जाकर सेनापति-पद पर अभिषिक्त हो जाओ ।

अश्वत्थामा— यह प्रबन्ध और निरर्थक है । परंतु कृपाचार्य के कहने-सुनने पर अश्वत्थामा ने स्वीकार कर लिया और दोनों दुर्योधन के पास गये ।

उधर कर्ण तथा दुर्योधन दोनों बालकपन कर रहे थे । द्रोणाचार्य का युद्ध में अश्व-त्याग करना दुर्योधन को बहुत अस्वस्थ । वह कहता था—भाई-बंधुओं के मारे जाने पर किसी तेजस्वी पुरुष को अपने अश्व द्वारा बदला लेना चाहिए । पुत्र की मृत्यु सुनकर अश्व प्रहरण करने के बदले अश्व त्याग देने का कारण मेरी समझ में नहीं आता । अथवा, प्रकृति का बदलना बड़ा कठिन है । इस कारण शोक से व्याकुल होकर उन्होंने क्षत्रियों के क्रूर धर्म को छोड़ दिया और ब्राह्मणोचित कोमलता स्वीकार कर ली ।

कर्ण ने इस पर और ही रंग चढ़ाया । उसने कहा— द्रोण का अभिप्राय यह था कि अश्वत्थामा को पृथ्वी के राज्य पर अभिषिक्त करूँगा । अब उसके न होने से कुछ ब्राह्मण का शस्त्र-प्रहरण व्यर्थ था । इस कारण उसने अश्व त्याग दिए ।

दुर्योधन को भी यह विचार उचित जेचा । कर्ण ने इस विचार की पुष्टि के लिए कहा—सब कहीं ऐसा ही प्रसिद्ध है कि द्रुपद ने बालकपन से ही, इसका अभिप्राय समझकर, इसे अपने राज्य में नहीं रहने दिया था ।

इतने में कृपाचार्य और अश्वत्थामा दोनों वहाँ जा पहुँचे । उन्होंने देकर दुर्योधन आसन से उतर पड़ा । उसने कृपाचार्य को प्रणाम किया और अश्वत्थामा के पिता की मृत्यु पर शोक प्रकट किया ।

इसके अनंतर कृपाचार्य ने दुर्योधन से कहा—द्रोणपुत्र ने बड़ा

भारी बोझ उठाने का निश्चय किया है। मेरे विचार में सेनापति पद पर इन्हें अभिषिक्त कर देना चाहिए।

दुर्योधन ने कृपाचार्य की सम्मति की प्रशंसा कर निवेदन किया कि मैं यह पद कर्ण को पहले ही दे चुका हूँ।

इस पर कृपाचार्य ने कहा—ऐसे अतुल अपमान के शोक-सागर में डूबे हुए इन अश्वत्थामा की, कर्ण के कारण, उपेक्षा करनी उचित नहीं। इन अश्वत्थामा से भी वही शत्रु-दमन का कार्य होगा। यदि आप इन्हें सेनापति न बनायेंगे तो इन्हें निस्संदेह दुःख होगा।

अश्वत्थामा—कुरु राज ! क्या अब भी भले-बुरे के विचार का समय है ? आज आप सारी रात सोयेंगे और प्रातःकाल स्तुतियों द्वारा कठिनता से जगाए जायेंगे कि यह भूमि केशव, पांडवों और सोमकों से रहित हो जायगी। आज ही मेरे बाहुबल द्वारा युद्ध का अंत होजायगा। अनेक राजाओं के बोझ से पृथिवी भी हलकी हो जायगी।

इस पर कर्ण मुहराया। वह बोला—कहना सहज है, करना कठिन। कौरव-सेना में ऐसा करने में समर्थ अनेक वीर हैं।

अश्वत्थामा—कर्ण ! हाँ, यह ठीक है कि कुरुसेना में यह कार्य करने में समर्थ अनेक वीर हैं। परंतु दुःख से व्याकुल होकर मैंने ऐसा कहा है, न कि किसी पर कटाक्ष करने के अभिप्राय से।

कर्ण—मूढ़ ! जो दुःखी होता है वह आँसू बहाता है और जो क्रोधित होता है उसे युद्ध में जाना ही उचित है, न कि इस प्रकार के प्रलाप करना।

अश्वत्थामा को अब क्रोध आ गया। उसने कर्ण को नीचा सूत, राधेय आदि शब्दों से संबोधित कर कहा—तू मुझ पर आक्षेप करता है। तू मुझ दुःखित को रोना ही औषध बताता है,

न कि शस्त्र-ग्रहण । देख ! क्या मेरे शस्त्र तेरे शस्त्रों की नाइ
शाप से शक्तिहीन हैं ? मैं क्या तेरे समान युद्ध से भयान आया
हूँ जो केवल राजाओं की स्तुति प्रशंसा अथवा वंशावलियों का
वर्णन करना ही जानता हूँ ? मैं नीच से किए गए अपमान का
बदला, शस्त्रों से न चुकाकर, आँसुओं से क्यों चुकाऊँ ?

अब तो कर्ण भी उत्तेजित होकर बोला—रे वाचाल, क्या शस्त्र-
ग्राही, अनाड़ी बालक ! मेरे अस्त्र शाप से शक्तिहीन हों, चाहे न हों,
किंतु पांचालों के भय से, तेरे पिता के समान, त्याग तो नहीं दिये !

इस पर अश्वत्थामा के क्रोध की सीमा न रही । वह बोला—
अरे सारथि-कुल-कलंक शस्त्र-ज्ञान-शून्य ! तू मेरे पिता का भी तिरस्कार
करता है ! वे भीरु थे अथवा वीर, इस चर्चा को छोड़; उनका
बाहु-प्रताप तो तीनों लोकों में विख्यात है । सब जानते हैं कि
उन्होंने दिन-प्रति-दिन युद्धभूमि में क्या-क्या कार्य किये हैं । उनके
शस्त्र-त्याग का कारण युधिष्ठिर की सत्यवादिता है । कायर ! तू उस
समय कहाँ भाग गया था ?

कर्ण ने मुस्कराकर कहा—मैं कायर हूँ और तेरा पिता वीरता
की मूर्ति ! मूढ़ ! शस्त्र-त्याग करने पर भी वीर जन, निःशस्त्र ही,
शत्रुओं का सामना करते हैं । तेरा पिता तो अधिक समय तक,
अबला की नाई, राजाओं के सामने निरुद्यम बैठा रहा, तब उसका
सिर काटा गया ।

अश्वत्थामा क्रोध से काँपने लगा और बोला—दुरात्मन्, राज-
वल्लभ, वाचाल, नीच सूत, असंभव प्रताप करनेवाले ! किसी कारण
शोकात्त होकर अथवा कायरता के कारण, जैसा कि तू कहता है,
मेरे पिता ने द्रुपद के पुत्र का हाथ नहीं रोका । परंतु भुज-बल के गर्व
से उद्धत तेरे सिर पर मैं यह पैर रखता हूँ; रोक ।

अश्वत्थामा ने पैर रखने की चेष्टा की परंतु कृपाचार्य और

दुर्योधन ने क्षमा करने को कहा। अब तो कर्ण ने क्रोधित होकर तलवार निकाल ली। उसने कहा—रे ब्राह्मणाधम, नीच ब्राह्मण, आत्मश्लाघी ! यद्यपि तू जाति से अवध्य है तब भी उठे हुए अपने पैर को तलवार से पृथ्वी पर कटा हुआ देखेगा।

अश्वत्थामा ने भी तलवार निकाल ली। दोनों मरने-मारने को डट गये। बड़ी कठिनता से कृपाचार्य ने अश्वत्थामा को समझाया बुझाया। दुर्योधन ने भी दोनों से कहा—आज तुम दोनों को कैसा मोह-सा हो गया है ?

कृपाचार्य—वत्स ! अपन पक्ष के प्रधान वीर से विरोध करने का यह समय नहीं।

परंतु क्रोधावेग से अश्वत्थामा ने कहा—शत्रुओं के बाणों से जब तक यह पापात्मा न मरेगा तब तक मैं युद्ध में अस्त्र नहीं ग्रहण करूँगा। सेनापति होने पर जब यह अपने आपको भीम और अर्जुन से व्याकुल देखेगा तब मुझे अपना प्रिय समझेगा।

इतना कहकर अश्वत्थामा ने अस्त्र त्याग दिये।

कर्ण तब भी आक्षेप करने से न चूका। बोला—शस्त्र-त्याग की रीति तो तुम्हारी कुल-परंपरा से चली आती है।

इस प्रकार कटाक्ष पर कटाक्ष हो रहे थे कि एक ओर से शब्द सुनाई दिया—आः दुरात्मन्, द्रौपदी के केश और वस्त्र खींचनेवाले महापातकी, धृतराष्ट्र के पुत्र, नीच ! तू बहुत दिनों में मेरे सामने आया है। रे छुद्र पशु ! अब कहाँ जाता है ? रे कर्ण ! दुर्योधन ! सौबल ! सुनो—अब द्रौपदी के केशों को खींचनेवाला दुःशासन मेरे भुज-पाश में फँस गया है। शक्ति हो तो लुड़ाओ।

यह सुनकर अश्वत्थामा ने कर्ण से कहा—सेनापति कर्ण ! अपने भुज-बल से त्रिलोकी के रक्षक ! वीरता दिखाने का अवसर आ गया। भीम से दुःशासन की रक्षा करो।

कण—मेरे जीते-जी भीम दुःशासन की परछाई को भी छू नहीं सकता ।

दुर्योधन ने भी इसी प्रकार आत्मश्लाघा की । फिर वह और कर्ण, दोनों दुःशासन की रक्षा करने चले गये ।

दुःशासन की रक्षा के लिए अश्वत्थामा अपनी प्रतिज्ञा को तोड़कर भी जाना चाहता था ; परंतु किसी देववाणी ने उसे प्रतिज्ञा-भंग करने से रोक दिया । वह कृपाचार्य को इस कार्य के लिए भेजकर अपने विश्राम-स्थान को चला गया ।

—* ४ *—

भीमसेन ने दुःशासन का रक्त पीकर अपनी एक प्रतिज्ञा को पूरा कर लिया । रक्त पीने से उनका रूप भयानक हो रहा था । वे गरजकर कौरवों को ललकार रहे थे । उनकी गर्जना सुनकर भयभीत सारथि, रथ पर मूर्च्छित दुर्योधन को कहीं और ले जाने लगा । उसे भय था कि भीम कहीं दुःशासन का-सा व्यवहार दुर्योधन के साथ भी न करें । सारथि ने एक सरोवर के किनारे, वट-वृक्ष के नीचे, रथ ठहरा दिया । वहाँ कमलों से सुगंधित शीतल वायु के झोंके आ रहे थे । वायु का प्रभाव चंदन-लेप की ही भाँति था । वहाँ रथ ठहराकर सारथि, कौरवों के विपत्ती, भाग्य को धिक्कारने लगा ।

जब दुर्योधन की मूर्च्छा दूटी तब वह, दुःशासन का ध्यान कर, स्वयं कहने लगा कि जब तक दुर्योधन जीता है तब तक भीम की कृपा शक्ति है कि वह प्रतिज्ञा को पूरी कर सके ? दुःशासन ! भय मत करो । वत्स ! मैं आ रहा हूँ । फिर सारथि से कहने लगा कि अरे सारथि ! दुःशासन के निकट रथ ले चल । परंतु जब उसे विदित हुआ कि दुःशासन का अंत हो चुका तब वह फिर मूर्च्छित

होकर गिर पड़ा और सचेत होने पर विलाप करने लगा। परंतु विलाप करते-करते वह फिर अचेत हो गया।

इस समय सुंदरक नाम का एक अहत् सैनिक, दुर्योधन को खोजता हुआ, वहाँ आ गया। सचेत होने पर दुर्योधन ने उसे देखकर कर्ण की कुशल पूछी।

सुंदरक—देव ! शरीर-मात्र से कुशल है। मनोरथ सहित उनका रथ टूट गया है।

दुर्योधन—व्यर्थ क्यों व्याकुल करते हो ? स्पष्ट कहो।

सुंदरक—कुमार वृषसेन की मृत्यु हो गई।

यह सुनकर दुर्योधन फिर मूर्च्छित हो गया। सचेत होने पर उसने पूछा—कर्ण का क्या समाचार है ?

सुंदरक—अधिक समय तक रो-धोकर कर्ण फिर युद्ध के लिए डट गए हैं। वस्त्र का एक टुकड़ा फाड़कर, अपने शरीर से निकल रहे रक्त से, उन्होंने यह पत्र आपको लिखा है।

अब सुंदरक ने दुर्योधन को पत्र दे दिया।

दुर्योधन ने पत्र पढ़ा। उसमें लिखा था—स्वस्ति ! महाराज दुर्योधन को गले लगाकर युद्धभूमि से कर्ण निवेदन करता है कि आप इस प्रकार मेरा सत्कार करते थे कि 'अस्त्रों के प्रयोग में यह निपुण है, इसके समान युद्ध में और कोई पुरुष नहीं है, यह मुझे भाइयों से भी अधिक प्रिय है, इससे पृथा के पुत्र पराजित होंगे'। किंतु दुःशासन के शत्रु भीम को मैं मार नहीं सका। अब आप दुःख का प्रतिकार या तो अपने भुज-बल से करें अथवा आँसुओं से।

यह पत्र पढ़कर दुर्योधन और भी दुःखी हुआ। उसने व्याकुल होकर सुंदरक से पूछा—अब कर्ण क्या कर रहे हैं ?

सुंदरक—अपना कवच उतारकर, मरने के लिए तैयार होकर अर्जुन के साथ युद्ध की इच्छा कर रहे हैं।

यह सुनकर दुर्योधन सहसा ^{व्याकुल} चतुर्धन हो उठा। रथ में बैठकर वह कर्ण के पास जाने को उठा। सुन्दरक को भी वहाँ भेज दिया। अभी वह जाने ही लगा था कि गांधारी और धृतराष्ट्र वहाँ आते दिखाई पड़े। साथ में सारथि संजय था। दुर्योधन बड़े असमंजस में पड़ा। वह सोचने लगा कि प्रातःकाल हम दोनों भाई—
दुःशासन और मैं—माता-पिता को प्रणाम कर युद्धभूमि को गये थे। अब बिना दुःशासन के मैं उनसे किस प्रकार मिलूँ? बड़ी लज्जा आती है।

—* * *

वट-वृक्ष के नीचे लज्जा से सिर झुकाए बैठे दुर्योधन को संजय ने देख लिया। वह धृतराष्ट्र और गांधारी को वहीं ले आया। पास पहुँचकर धृतराष्ट्र और गांधारी ने दुर्योधन को गले लगा लिया। उसे युद्ध रोक देने के लिए गांधारी ने समझाते हुए कहा कि हम अंधों के तुम्हीं आश्रय हो। तुम चिरंजीव रहो। राज्य अथवा विजय से हमें क्या काम ?

परंतु दुर्योधन इस विचार पर सहमत न हुआ। उसने कहा—
माताजी ! आप जैसी क्षत्रियाणी को ये वचन नहीं सोहते। अवश्य पुत्र-शोक ने ही आपकी यह दशा कर दी है। सौ पुत्रों के मारे जाने पर तो आपने चिंता नहीं की और अब मुझ अभाग की रक्षा करना चाहती हैं ?

संजय—महाराज ! क्या यह कहावत असत्य है कि कुर्र में घड़ा गिर जाय तो उसमें रस्सी न फँक देनी चाहिए ?

दुर्योधन—“जब कार्य ही नहीं तब उसको सामग्री से क्या काम ? जब भाई ही नहीं रहे तब मेरी प्राण-रक्षा से क्या लाभ ?”
इतना कहकर दुर्योधन रोने लगा।

Rover

अब धृतराष्ट्र ने भी दुर्योधन को युद्ध से मना करते हुए कहा—
बेटा ! इस समय जो युधिष्ठिर माँगे वह देकर संधि कर ले ।

परंतु दुर्योधन न माना । कहने लगा—पिताजी ! पुत्र-नाश के कारण मेरी माता अथवा मूढ़ संजय भले ही यह कहे परंतु आपको भी यह मोह ! अथवा पुत्र-नाश से हार्दिक पीड़ा बढ़ गई है । पिताजी ! जब मेरे सौ भाई जीवित थे तब तो मैंने संधि का प्रस्ताव स्वीकार ही नहीं किया; अब, सबका नाश कराकर, अपनी रक्षा के लिए पांडवों से कैसे संधि कर सकता हूँ ? आत्मा-भिमानी के लिए यह लज्जा की बात है । एक बात और भी है । संजय, सुनो; शत्रु से हीन-दीन किये जाने पर राजा लोग उसके साथ संधि करते हैं । जब दुःशासन का देहांत हो गया और पांडव वैसे ही हैं तब वे संधि क्यों करेंगे ?

धृतराष्ट्र—वत्स ! यद्यपि ऐसा ही ठीक है तथापि युधिष्ठिर, मेरी प्रार्थना से, सब कुछ मान लेंगे । उन्होंने यह प्रतिज्ञा की है कि यदि मेरा एक भी भाई मारा जायगा तो मैं जीवित न रहूँगा । और युद्ध तो छल-कपट से भरा होता है, अतः वे अपने भाइयों की मृत्यु के लिए शंकित होंगे । वे तो चाहे जब संधि का प्रस्ताव स्वीकार करने के लिए तैयार हो जायेंगे । २०६

संजय और गांधारी ने भी इस विचार का समर्थन किया । परंतु दुर्योधन का हठ कौन हटा सकता था ?

दुर्योधन—जब युधिष्ठिर ने केवल एक भाई के लिए ऐसी प्रतिज्ञा की है तब मैं सौ भाइयों के मारे जाने पर भी जीवित रहूँ ! दुःशासन का रक्त पीनेवाले भीम को मैं, गदा द्वारा, टुकड़े-टुकड़े कर क्यों न फेंक दूँ ?

दुःशासन की मृत्यु का स्मरण आने पर गांधारी शोक व्याकुल हो गईं । वे कहने लगीं—हा अभागिन गांधारी ! सौ

वीरों की जननी ! तूने सौ दुःख उत्पन्न किये हैं न कि सौ पुत्र ।

धृतराष्ट्र ने भी कहा—वत्स ! भाग्य हमारे प्रतिकूल है । तुम स्वाभिमान छोड़ते नहीं । गांधारी और मैं किसका आश्रय लें ? यदि तुम्हारा ऐसा ही निश्चय है तो गुप्त रूप से शत्रु के मारने का उपाय करो ।

यह सुनकर दुर्योधन विस्मित होकर, बोला—मेरे भाई तो रण में प्रत्यक्ष मारे गये हैं । निःसंदेह शत्रु गुप्त रूप से मारने योग्य नहीं ।

इस समय भारी कोलाहल सुन पड़ा । सारथि शल्य, कर्ण का खाली रथ लेकर, जाता हुआ दिखाई दिया । वृत्तांत जानने के लिए दुर्योधन ने अपना सारथि शल्य के पास भेजा । सारथि ने आकर सूचना दी कि कर्ण मारे गये । यह सुनकर दुर्योधन मूर्च्छित हो गया । दुःखिया गांधारी और धृतराष्ट्र ने पुत्र को धीरज दिया । दुर्योधन सचेत होकर कहने लगा—“जब मेरे प्राणों से प्रिय मित्र कर्ण ही मारे गये तब मुझे साँस लेते भी लज्जा आती है । दुःशासन आदि सब से प्रिय कर्ण को जिसने मारा है उसके कुल का नाश मैं युद्ध में अवश्य करूँगा ।”

इतना कहते हुए दुर्योधन रोने लगा ।

गांधारी—बेटा ! इन आँसुओं को तनिक रोको ।

धृतराष्ट्र—वत्स ! आँसुओं को पोंछ ।

परंतु दुर्योधन बोला—मेरे लिए प्राण न्योछावर करते हुए कर्ण को तो आप लोगों ने नहीं रोका, अब उसके लिए आँसू गिराने से भी मुझ नीच को रोकते हैं ।

धृतराष्ट्र—सारथि ! हमारे कुल का अंत करने का यह असंभव कार्य किसने किया ?

संजय—सुना है कि जब कर्ण का रथ-चक्र कीचड़ में धँस

गया तब अर्जुन ने, कृष्ण की प्रेरणा से, उनके प्राण हर लिये।

यह सुनकर दुर्योधन का शोक और क्रोध दोनों बढ़ गये। शोक से उत्पन्न हुई दुःसह अग्नि उसको जलाने लगी। उसने कहा कि जब मरना निश्चित ही है तब युद्ध में प्राण छोड़ना अच्छा है।

यह विचार सुनकर धृतराष्ट्र रो पड़े; दुर्योधन को गले लगाकर बोले—वत्स ! इन पांडवों के साहस भरे कामों से संशय होता है। भीम का ध्यान आने पर मेरा हृदय दहल जाता है। हे अभिमानी पुत्र ! तुम्हारा युद्ध निष्कपट है और पांडवों का छल-युक्त। हाय ! मैं मरा।

गांधारी—तुम क्या उसी भीम के साथ युद्ध करना चाहते हो जिसने मेरे सौ पुत्रों का नाश किया है ?

“अच्छा, तो कर्ण के चातक अर्जुन के ही साथ सही।” इतना कहकर दुर्योधन ने सारथि को रथ लाने की आज्ञा दी। दुर्योधन ने अपने आँसुओं से ही अपने आपको सेनापति-पद पर अभिषिक्त कर लिया।

इस समय सहसा कोलाहल हुआ। रथ पर बैठे हुए दो पुरुष, दुर्योधन की खोज में, इधर ही आ निकले। वे भीम और अर्जुन थे। उन्हें यहाँ आते जानकर गांधारी और धृतराष्ट्र डर गये। कुछ पास आकर भीम ने ललकारकर कहा—अरे दुर्योधन के अनुचरो ! तुम्हारा राजा दुर्योधन कहाँ है ? वह कर्ण का मित्र और सौ भाइयों में बड़ा भाई कहाँ है ? वह द्यूत-छल का कर्त्ता, लाक्षा-गृह का जलानेवाला, द्रौपदी के केश और वस्त्र खींचनेवाला अभिमानी, जिनके पांडव दास हैं, कहाँ है ? हम यहाँ क्रुद्ध भाव से नहीं आये, हम तो उससे मिलने आये हैं—

इन वचनों से धृतराष्ट्र डर गये। दुर्योधन ने अपने सारथि से उन्हें कहलवा दिया कि मैं यहीं हूँ।

सूयथि ने जाकर अर्जुन और भीम से कह दिया—महाराज यहाँ माता-पिता के साथ वट-वृक्ष के नीचे बैठे हैं।

यह सुनकर भीम और अर्जुन दोनों, गुरुजनों को प्रणाम करने के लिए, आगे बढ़े। अन्यथा यह शिष्टाचार के विरुद्ध होता। अर्जुन ने पास आकर कहा—जिस पर आपके पुत्रों ने विजय की आशा बाँध रखी थी और जिसके बल पर गर्वित होकर उन्होंने सारे संसार को तृणवत् समझ लिया था, उसी कर्ण को मारनेवाला अर्जुन आप दोनों माता-पिता को प्रणाम करता है।

भीम ने भी कहा—जिसने सारे कौरवों को पीस डाला, जो दुःशासन के रक्त से मतवाला हो रहा है और जिसने दुर्योधन की जंघाएँ तोड़ने की प्रतिज्ञा की है वह भीम सिर झुकाकर प्रणाम करता है।

ये वचन धृतराष्ट्र को अखरे। वे बोले—अरे दुरात्मा वृकोदर ! यह सब तूने अकेले नहीं किया ! क्षत्रिय होकर भी तू क्यों अपनी प्रशंसा करता है ! प्रशंसासूचक इन वचनों से तू क्यों मुझे दुःखी करता है ?

दुर्योधन को भी क्रोध आ गया। वह बोला—अरे वायु के पुत्र ! वृद्ध राजा के सामने तू अपने जघन्य कर्म की इस प्रकार प्रशंसा क्यों करता है ? द्रौपदी के केश मेरी आज्ञा से खींचे गये थे। दूसरे राजाओं के वध से क्या प्रयोजन ? मुझे बिना जीते तुझे घमंड करना उचित नहीं।

अब दुर्योधन भीमसेन पर झपट पड़ा। धृतराष्ट्र ने हाथ फुड़कर उसे बैठा लिया। भीम को भी क्रोध आ गया। वे दुर्योधन को भला-बुरा कहने लगे। दुर्योधन भी उनकी बातों का वैसे ही कड़वे और तेज उत्तर देता गया। यदि सूर्यास्त के समय युधिष्ठिर

की युद्ध बंद करने की आज्ञा न होती तो दोनों का युद्ध न रुकता । युद्ध बंद करने की आज्ञा सुनकर भीम और अर्जुन अपने विश्राम-स्थान को लौट गये ।

इतने में कर्ण की मृत्यु का संवाद पाकर अश्वत्थामा दुर्योधन के पास जाकर बोला—‘कर्ण ने सुखद वचन कहकर युद्ध-क्षेत्र में जैसा यश प्राप्त किया उसे आपने सुना ही होगा । अब द्रोण-पुत्र अपना धनुष लिये हुए, शत्रु-संहार के लिए उद्यत होकर, आता है । प्रतिकार के लिए आप दुःख न करें ।’

अश्वत्थामा से दुर्योधन ने अनादर के भाव से, कहा—कर्ण के मरने के पश्चात् युद्ध करने का तुम्हारा निश्चय था । सो अब मेरा भी अंत देख लो । मुझमें और कर्ण में क्या अंतर है ?

इस उत्तर से अश्वत्थामा को दुर्योधन का, कर्ण के प्रति, पक्षपात प्रत्यक्ष हो गया । वह उठकर चला गया ।

धृतराष्ट्र ने कहा भी कि अश्वत्थामा को साथ ले लो, परंतु दुर्योधन ने उनकी एक न सुनी । धृतराष्ट्र ने अश्वत्थामा का क्रोध शांत करने के लिए संजय को भेजा । रथ लेकर दुर्योधन युद्धभूमि में चला गया । धृतराष्ट्र और गांधारी मद्राज शल्य के विश्राम-स्थान को चले गये ।

—* ६ *

द्रौपदी और युधिष्ठिर चिंतित बैठे थे । भीष्म पितामह, द्रोण, कर्ण, शल्य आदि की मृत्यु से युधिष्ठिर ने अपना कार्य प्रायः समाप्त ही समझा था । परंतु भीम की नई प्रतिज्ञा ने सबके प्राणों को संकट में डाल दिया । भीम की नई प्रतिज्ञा सुनकर दुर्योधन कहीं छिप गया था । उसका पता न चलता था । युधिष्ठिर निर्विवश होकर उसे खोजने के लिए सब कहीं दूत भेजने की आज्ञा दी-

ही थी कि पांचालक वहाँ आ गया उसने सूचना दी—दुर्योधन मिल गया है। भीम के साथ उसका युद्ध रहा है। युधिष्ठिर और द्रौपदी ने उसके मिलने

चाहा। पांचालक कहने लगा—महाराज ! जब अश्वत्थामा वृत्तांत सुनना का नाश कर दिया, सहदेव ने गांधार-कुल को अपहरण कर शल्य जला दिया, धृष्टद्युम्न ने शेष सेना को तितर-ताड़ित में दिया और कृपाचार्य, कृतवर्मा तथा अश्वत्थामा युद्धक्षेत्र पर गए तब भीम की भयानक प्रतिज्ञा के भय से दुष्ट दुर्योधन, किराज्ज्ञात स्थान में, कल तक के लिए छिप गया। तब भीम और अर्जुन कृष्ण द्वारा संचालित रथ पर चढ़कर उसे ढूँढ़ने लगे। परंतु सब प्रयत्न निष्फल रहा। भीम और अर्जुन—वरंच श्रीकृष्ण तक—निराश हो गए और भाग्य की चिंता करने लगे।

सौभाग्य से, भीम के परिचित एक आखेटक ने आकर सूचना दी—कुमार ! इस बड़े सरोवर के तट पर, उसमें घुसनेवाले, दो पुरुषों के पद-चिह्न हैं। उनमें से एक तो स्थल पर लौट आया है, किंतु दूसरा नहीं लौटा। अब कुमार इस पर स्वयं विचार कर लें।

यह सुनकर हम सब तुरंत वहाँ पर गए। तट पर पहुँचकर वासुदेव ने, पद-चिह्न देखकर, कहा कि ये दुर्योधन के ही पद-चिह्न हैं। वह जल-स्तंभिनी विद्या जानता है, जिसके प्रभाव से वह जल में ही रह सकता है। सो वह अवश्य तुम्हारे भय से सरोवर में छिपा हुआ है।

श्रीकृष्ण का यह कथन सुनकर भीम ने सरोवर का जल मथ डाला और गरजकर कहा—अरे वृथा बकवादी, मिथ्या पौरुषाभिमानी, पांचाल-पुत्री के केश खींचनेवाले महापातकी ! नीच धार्तराष्ट्र ! तू समझता है कि निर्मल चंद्रवंश में तेरा जन्म हुआ है। तूने अभी तक गदा पकड़ रखी है। दुःशासन का सुरा के समान उष्ण रक्त

पीनेवाले मुझको तू शत्रु समझता है। दर्पांध ! तू कृष्ण के प्रति भी उद्धत चेष्टा करता है। अब मेरे भय से कीचड़ में जा छिपा दे।

अब दुर्योधन सरोवर से ऊपर निकलकर बोला—रे भीम ! तू क्या यह सोचता है कि दुर्योधन तुझसे डरकर छिप रहा है ? मूढ़ ! बिना पांडुओं का वध किए खुले स्थान में विश्राम करने में लज्जा आने के कारण मैं सरोवर में आ गया था।

दुर्योधन अब जल से बाहर निकलकर पृथ्वी पर, गदा फेंककर, बैठ गया। आसपास अपने दल के वीरों के शवों को गोधों, कौओं और शृगालों आदि द्वारा घिरे हुए देखकर वह गहरी साँस लेने लगा। बंधुओं और मित्रों के नष्ट हो जाने पर, और एक भी कौरव न दीख पड़ने पर, दुर्योधन का कलेजा दहल गया।

दुर्योधन की यह दशा देखकर भीम ने कहा—अब तेरा, बंधुओं के नाश का, शोक करना वृथा है। यह चिंता मत कर कि तू अकेला है और हम पाँच भाई हैं। हम पाँचों में से जिसको तू अपने योग्य समझता हो, उससे युद्ध कर।

यह सुनकर दुर्योधन ने भीम के साथ युद्ध करना स्वीकार किया। अब भीम और दुर्योधन युद्ध करने लगे।

मुझे भगवान् कृष्ण ने आपके पास यह संदेश देकर भेजा है कि भीम और दुर्योधन का युद्ध हो रहा है। आप निश्चय जानें कि आपके मार्ग के कंटक अब दूर हो गये। सो शुभ उत्सव की तैयारी कीजिए। अब आपके राज्याभिषेक में कुछ संदेह नहीं।

द्रौपदी—त्रिलोकी के स्वामी का कथन अन्यथा कैसे हो सकता है !

युधिष्ठिर ने भी यही सोचकर जयंधर को बुलाया और भीम की विजय-कामना के लिए उत्सव मनाने की आज्ञा दी। फिर पांचालक को, प्रिय सूचना लाने के कारण, पारितोषिक देने को कहा !

पांचालक को साथ लेकर जयंधर चला गया।

स्व द्रौपदी ने युधिष्ठिर से प्रश्न किया । उसने पूछा—महाराज ! स्वामी भीम ने उद्दृष्टात्मा से यह क्यों कहा कि हम पाँचों में से किसी एक के साथ युद्ध करो । यदि उसने नकुल या सहदेव के साथ युद्ध करने को कहा होता तो घोर विपत्ति आ पड़ती ।

युधिष्ठिर—कृष्ण ! जरासंध का घातक जानता है कि ग्यारह अक्षौहिणी सेना तथा बंधु-बांधव नष्ट हो जाने पर, शरीर-मात्र बचने से, कहीं निरभिमान शास्त्र-त्यागी होकर, सुयोधन तपोवन में न चला जाय या पिता से कहकर संधि की प्रार्थना न कर बैठे । क्योंकि वैसा होने पर सब शत्रुओं के संहार की प्रतिज्ञा कैसे पूरी होती ? और युद्ध में सुयोधन किसी भी पांडव का सामना नहीं कर सकता । भीम के साथ इसके गदायुद्ध की ही संभावना देखता हूँ । यह ठीक है कि रण में क्रोध से गदा घुमाते हुए भीम के सदृश कोई नहीं है; पर दुर्योधन गदा-युद्ध में वैसा ही निपुण है जैसे दिव्य बलराम । मेरे भाई का कल्याण हो, मुझे दुर्योधन के साथ उसके युद्ध की संभावना है, न कि औरों के साथ ।

इस समय एक ओर से शब्द आया कि मैं प्यासा हूँ, कोई जल और छाया दे । यह सुनकर युधिष्ठिर ने उस पुरुष को बुलवा भेजा । वह सामने आकर खड़ा हो गया और मन में कहने लगा कि मैं मुनि के वेष में चार्वाक राक्षस हूँ । दुर्योधन का मित्र हूँ । अब पांडवों को छलने के लिए घूम रहा हूँ ।

युधिष्ठिर ने मुनि को प्रणाम किया और उसके लिए जल मँगवा दिया । जल-पान करके मुनि जब शांत हो गया तब युधिष्ठिर ने उससे, इतने थक जाने का कारण पूछा ।

चार्वाक—मुनियों को कौतुक देखने की इच्छा स्वाभाविक ही

है। इसी कारण मैं कौरव-जड़ों का युद्ध देखने के लिए कुरुक्षेत्र में घूम रहा था। आज शत्रु-सैन्य का तीव्र ताप था। इसलिए अर्जुन और दुर्योधन का युद्ध बिना पूरा देखे ही चला आया हूँ।

यह सुनकर जयंधर ने कहा—मुनि ! ऐसा नहीं; भीम और सुयोधन का युद्ध कहो। परंतु चार्वाक ने कहा कि बिना वृत्त जाने ऐसा क्यों कहते हो ?

अब युधिष्ठिर ने भी पूछा—आपने भीम और दुर्योधन का युद्ध क्यों नहीं कहा ?

चार्वाक—वह तो हो चुका।

यह सुनकर युधिष्ठिर और द्रौपदी दोनों मूर्च्छित हो गये। जयंधर ने जल के छींटे दिये। सचेत होकर युधिष्ठिर और द्रौपदी ने फिर पूछा—मुनि ! क्या कहते हो ? भीम और सुयोधन का युद्ध हो चुका ?

चार्वाक ने अब जयंधर से पूछा—ये दोनों कौन हैं ?

जयंधर ने बताया कि ये महाराज युधिष्ठिर हैं और वह पांचाल-राजपुत्री। यह जानकर राजस कहने लगा कि अब तो मुझ क्रूर ने दारुण वृत्तांत आरंभ कर दिया है।

यह वचन सुनकर द्रौपदी फिर मूर्च्छित हो गई। युधिष्ठिर ने आँखों में आँसू भरकर पूरा वृत्तांत पूछा।

चार्वाक—सुनिए, जिस समय भीम और दुर्योधन का भयानक युद्ध हो रहा था.....।

द्रौपदी सचेत होकर सहसा उठकर बोली—हाँ, फिर ?

चार्वाक—तब बलराम वहाँ आ पहुँचे। उनके सामने युद्ध देर तक होता रहा। अपने शिष्य के लिए प्रेम से प्रेरित होकर बलराम ने सुयोधन को कुछ संकेत कर दिया। उस संकेत से कुरु-श्रेष्ठ ने दुःशासन का बदला ले लिया।

यूद्ध सुनकर द्रौपदी और युधिष्ठिर ने मूर्च्छित हो गये । फिर उचैत होकर उन्होंने शेष वृत्तांत पूछा ।

चार्वाक—तब भीम के वीरगति पाने पर भाई के शोक से गांडीब धनुष फेंककर, अर्जुन को पोंछ-करनेवाले कृष्ण के रोकने पर भी भाई के हाथ युधि की हुई गदा ले ली और सुयोधन के ललकारने पर उसको मार कर दिया । फिर गदा-प्रहार से अर्जुन की मृत्यु अवश्यंभूत कर बलराम, अर्जुन के चिर-पक्षपाती कृष्ण को प्रयत्न से रथ बैठाकर द्वारका चले गये । तब मैं..... ।

युधिष्ठिर और द्रौपदी से अब आगे का वृत्तांत न सुना गया । भीम के लिए प्रेम से उनका हृदय उमड़ आया । उनके वोर-कार्यों का स्मरण करके वे रोने लगे । द्रौपदी भीमसेन को, वेणी के बाँध देने की, प्रतिज्ञा का स्मरण कराने लगीं और अनेक विलाप करती हुई उनके साथ जलने को उद्यत हुई । उन्होंने युधिष्ठिर से चिता बनाने के लिए कहा और निवेदन किया कि आप, शत्रु के प्रति, क्षत्रिय-कुल के उचित कर्त्तव्य का पालन करें अथवा जो चाहें सो करें ।

युधिष्ठिर ने उत्तेजित होकर कहा—गदा-युद्ध करके अर्जुन का अनुकरण करूँगा । विजय से अब क्या लाभ ?

यह सुनकर राक्षस ने विचित्र चाल चली । वह कहने लगा—राजन् ! यदि विजय की इच्छा नहीं है तो कहीं प्राण त्याग दे । वहाँ जाना व्यर्थ है ।

यह सुनकर जयंधर से बिना कुछ कहे न रहा गया । वह कहने लगा—तुम्हें धिक्कार है, तुम्हारा हृदय तो पिशाच का-सा है ।

राक्षस को संदेह हुआ कि कहीं इसने मुझे पहचान तो नहीं लिया । परंतु प्रकट रूप से बोला—जयंधर ! अर्जुन और सुयोधन

का गदा-युद्ध आरंभ हो गया है और मैं दोनों के गदा चलाने के कौशल को जानता हूँ। शोक-विह्वल राजर्षि और कुछ अप्रिय न सुनने पावें, इस कारण मैंने ऐसा कहा है।

मैं यही उचित समझा। उन्होंने भीम और अर्जुन युधिष्ठिर करने के लिए चिता में भस्म होकर प्राणन्यास का स्वनिश्चय कर लिया। किसी सेवक में इतना साहस न करने आज्ञा देने पर भी इंधन इकट्ठा करे। युधिष्ठिर ने स्वयं चिता में आरंभ को।

अपना मनोरथ पूरा हुआ जानकर राक्षस चला गया।

इसी समय एक ओर से कोलाहल हुआ और शंखध्वनि सुनाई पड़ी। कुछ और अनिष्ट-संवाद सुनने से पहले ही ये दोनों चिता की ओर चल पड़े।

युधिष्ठिर ने बुद्धिमत्तिका से कहा—माता से कह देना कि लाक्षागृह से बचानेवाला पांडव अब संसार में नहीं है। यह कहकर वे जयंधर से बोले—तुम सहदेव के पास जाओ और सहदेव तथा नकुल से कहो कि वे दोनों, हमारे कुल को पिंड और जल देने के लिए, जीवित बने रहें। और यदि अर्जुन लौट आवें तो उनसे कहना कि बलराम यद्यपि तुम्हारे भाई की मृत्यु के कारण बने हैं तो भी वे श्रीकृष्ण के भाई हैं, इसलिए तुम उन पर क्रोध न करना। यदि तुम जीवित रहो तो वन में जाकर निवास करना, न कि क्षत्रिय-रीति का अनुकरण।

चलते समय द्रौपदी ने बुद्धिमत्तिका दासी द्वारा माता को यह संदेश भेजा—जो बक, हिंडिवा, किर्मीर, जटासुर, जरासंध आदि के विजेता हैं, वे भीम मेरा पक्षपात लेने के कारण परलोक सिंघार गये।

मरने से पहले द्रौपदी ने दासी बुद्धिमत्तिका द्वारा अपनी सास को यह संदेश भेजा कि उत्तरा गर्भवती है। उसकी सावधानी से

रक्षा कीजिएगा। इसके द्वारा परलोक धारे ससुर आदि को जल-तर्पण प्राप्त होगा।

इस समय आग जलने लगी। युधिष्ठिर लिए जलांजलि दी; फिर भीम के लिए। द्रौपदी ने पहले पूर्वजों के जलांजलि भेंट की। इस समय युधिष्ठिर की दाहिनी पैर के लिए करने लगी। उन्हें संदेह हुआ कि कदाचित् भीम शीघ्र तो फड़-

इसी समय एक ओर से कोलाहल सुनाई दिया। जय आकर निवेदन किया कि रक्त से रंगे हुए वस्त्र पहने यह न. कुरु, द्रौपदी की खोज में, इधर-उधर देखता हुआ आ रहा है।

युधिष्ठिर अब अर्जुन और सुयोधन के गदा-युद्ध का परिणाम समझ गये। वे अर्जुन के शोक से मूर्च्छित हो गये। द्रौपदी भी, स्वयंवर में जीतनेवाले अर्जुन का नाश जानकर मूर्च्छित हो गई। युधिष्ठिर सचेत होकर अर्जुन के लिए विलाप करने लगे।

उधर रक्त से रंगे हुए वस्त्रोंवाले उस व्यक्ति को पास आते देख जयंधर ने द्रौपदी को चिता पर पहुँचाकर अपना भी प्राण त्याग देने का विचार किया। परंतु इसी समय कोलाहल अधिक बढ़ गया। कोई द्रौपदी को पुकार-पुकारकर खोज रहा था। जयंधर भयभीत हो गया। परंतु युधिष्ठिर में बल का फिर संचार हुआ। वे उस व्यक्ति को ललकारकर कहने लगे—अरे कुरु-कुल-कलंक! इधर आ, मैं तेरा दर्प चूर करूँ। घेठ के कर कर १७

यह सुनकर हाथ में गदा लिये, रुधिर से लथपथ, वह व्यक्ति वहाँ पहुँचा। युधिष्ठिर, द्रौपदी तथा जयंधर में से कोई भी उसे न पहचान सका। युधिष्ठिर ने तो रक्षा के लिए धनुर्बाण माँगा। द्रौपदी चिता पर चढ़ने लगीं। उस व्यक्ति ने द्रौपदी के पकड़ने की इच्छा का। युधिष्ठिर उत्तेजित होकर उसको डाँटने लगे। परंतु इस समय जयंधर ने, उस व्यक्ति को पहचानकर, कहा कि महा-

राज ! धोखा हो गया था । जो चिरंजीव भीमसेन हैं जो सुयोधन के रुधिर से रंगे वस्त्रों का कारण पहचाने नहीं जाते । दासी ने भी द्रौपदी से कहा कि आपके स्वामी भीमसेन अपनी प्रतिज्ञा पूर करने के लिए आका जाती रही । युधिष्ठिर ने आँसू पोंछकर भीम

अब सन्ध्या । वे भी आकर युधिष्ठिर के चरणों पर गिर पड़े । को पहचाने—वत्स ! आँखों के डबडबा जाने से मैं तुम्हें पहचान नहीं था । अब बताओ कि अर्जुन जीवित है न !

नाम—समस्त रिपु-पक्ष का संहार करके भीम और अर्जुन जीवित हैं ।

अब तो युधिष्ठिर और द्रौपदी को असीम हर्ष हुआ ।

भीम ने रुधिर से रंगे हाथों से द्रौपदी की वेणी गूँथ दी ।

इतने में श्रीकृष्ण और अर्जुन भी वहाँ आ गये । श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर का अभिनन्दन किया । अर्जुन ने बड़े भाई को प्रणाम किया ।

युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की ।

श्रीकृष्ण—इस समय व्यास, वाल्मीकि, परशुराम आदि महा

धृष्टद्युम्न आदि सेनापति, नकुल-सहदेव सहित मागध, मत्स्य, यादव—पवित्र जल के कलशों को कंधों पर उठाये हुए—युधिष्ठिर के राज्याभिषेक के लिए उपस्थित हैं । मैं भी, यह जानकर कि आपको दुष्ट चार्वाक राजस ने ठग लिया है, अर्जुन सहित यहाँ शीघ्र आया हूँ । नकुल ने चार्वाक को दंड दे दिया है ।

अब भगवान् कृष्ण के सामने युधिष्ठिर का राज्याभिषेक समारोह के साथ किया गया । पांडवों ने जो-जो प्रतिज्ञायें की थीं वे सब पूरी हो गईं ।





१५
होती मोहन चारी

नो १५ ११२० के
सूचना

